आरण्यक

(बगला भाषा का उत्कृष्टतम उपन्यास)

लेखक

विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय

अनुवादक

श्री हसकुमार तिवारी

भूमिका

डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी

साहित्य अकादेमी की ओर से

भारती-भण्डार, प्रयाग

साहित्य अकादमी, नई दिल्ली
की ओर से
भारती-भंडार, प्रयाग द्वारा प्रकाशित

प्रथम हिन्दी संस्करण
१९५७
मूल्य चार रुपये (४०० नये पैसे)

श्री बिन्दाप्रसाद ठाकुर द्वारा
लीडर प्रेस, प्रयाग में मुद्रित

परिचय

विभूतिभूषण वद्योपाध्याय का 'आरण्यक' बँगला और भारतीय माहित्य के उन नन्हे ग्रथो मे है, जो महान् है । और इनमे ही क्यो, किसी भी साहित्य मे इसकी मर्यादा यही होगी । यह गद्य प्रगीत है, वन की गीति का काव्य । मानव-पुत्रो के वर्धमान कुल-परिवार को जगह देने के लिए अहल्या वनराजि का उच्छेद होता जा रहा है । इसी उच्छेद की पटभूमि पर लेखक ने सहानुभूति के साथ, तथा बरबस लोहा मनवा लेने वाली सचाई के साथ वन एव आदिम ग्राम के प्रतिवेश मे मानव का चित्र अकित किया है । इस तरह 'आरण्यक' एक ऐसी कविता है, जिसका विषय प्रकृति भी है और मनुष्य भी, और जो दोनो की ही परम मनोहर छवि उपस्थित करती है । इस छवि का आधार ज्ञान एव सह-सवेदन, दोनो है ।

बँगला साहित्य मे विभूतिभूषण वद्योपाध्याय निचले बगाल की सदा दूधो-पूतो हरी-भरी एव सदा-बहुरगी प्रकृति की गोद में फुदकते ग्राम-जीवन को अभिव्यक्ति देने वाले के रूप मे भली भाति प्रख्यात है । आजकल प्रकृति के प्रेमियो का कोई अभाव नही है । विशेष करके ऐसी अवस्था मे जब सभ्यता के क्रम-क्रम से अग्रसर हो रहे चरण हर कही प्रकृति माता के पुण्य प्रकोष्ठो पर चढते चले जा रहे है, जब वन्य परिवेश मे नग-जडे से पेड-पौधो, जगल-झाडो, खुले मैदानो, डूँगरो-पहाडो, सोतो-झरनो और नद-नदियो के साथ हमारे मार्मिक और घनिष्ठ सपर्क टूटते जा रहे है । प्रकृति के प्रति आकर्षण का अनुभव हम इसलिए करते है कि वडे-वडे नगरो के दमघोट वातावरण मे हम छुटकारा पाना चाहते है, दम भर की राहत चाहते है ।

पर विभूतिभूषण वद्योपाध्याय की रचनाओं मे केवल इतना ही नही है । कुछ और है । और वह कुछ-और ऐसा कुछ है जो हमारे मानस

की गहराइयो मे उतरकर हमे जगा देता है तथा अपने ही अन्तर मे प्रकृति की आत्मा की एक झिलमिल-झिलमिल-सी अनुभूति करा देता है। वह पेडो-पौधो के, फलो-फूलो के, जडी-बूटियो के तथा वन्य जीवन के प्रेमी तो है ही, उनके पारखी भी है। पर उनकी निरख-परख कैंची और खुर्दबीन वाले वनस्पति-शास्त्री की नही बल्कि उस व्यावहारिक मानव की है, जिसके लिए पत्तो और टहनियो मे, फूलो और फलो मे, पेडो और पौधो मे भी कोई सदेश है, उनका अपना-अपना कोई व्यक्तित्व भी है, कोई नाम-धाम भी है। जगल और जगल के वृक्षो के लिए उनका उत्साह सक्रामक है तथा उनकी लिखी इस महान् पुस्तक को पढने के बाद पाठक के प्राण इनकी असभवानुकृति प्राकृतिक पृष्ठभूमि और परिवेश मे उच्छल हो-हो उठते है।

कथा या वर्णन तो इस पुस्तक मे नाम-मात्र को ही है। कथानक के नाम पर एक अत्यन्त सुसस्कृत बगाली युवक स्नातक के अनुभव मात्र है। युवक किसी शिक्षणालय मे शिक्षक था। रोजी गँवाकर कलकत्ता जैसे बेआसरा शहर मे चारो ओर से निरस्त-परास्त होकर मारा-मारा फिर रहा था। सौभाग्य-सयोग से उसे छात्र-जीवन के एक ऐसे साथी से भेट हो गई, जो उसकी साहित्यिक सूझ-बूझ का प्रशसक था। इस भेट के फलस्वरूप उसे किसी जमीदार के कारिदे का पद मिल गया। काम उस जमीदार के एक जगल को साफ करवाकर खेती और चराई के लिए किसानो के हाथो जमीन की बदोबस्ती करने का था। कथानायक अपनी कहानी आप ही कहता है। इस काम के सिलसिले मे वह बगाल की सीमा से सटे उत्तर बिहार की एक अहल्या वनभूमि के छोर पर आ रहता है। जगल को काट या जलाकर नौतोड खेती करने या दूर-दूर के शहरो में भेजने को वन्-जात पैदावारें निकालने या तराई के जगलो मे छाँह-तले उपज-उपज पडी अबोह घास में ढोर चराने के लिए रैयतो को जमीन उठाने की प्रक्रिया मे उसे स्वय ही जगल के एक बडे खित्ते को उजाडना पड जाता है। जिसे उसने प्यार करना सीखा था, उसे उजाडने का दायित्व उसी पर आ पडता है।

बडे विशाल पैमाने पर हो रहे इस वनघात की कहानी के तलदेश में गहरी करुण विषाद-भावना की एक फल्गुधारा निरन्तर बहती रहती है। लेखक इस दुखात अनुभूति मे हमे भी अपना सहभागी बनाये चलता है। पर अपनी पुस्तक के इन २८७ पृष्ठो मे उसने एक अहल्या अरण्यानी की समस्त गरिमा, समस्त शोभा और कोमलता के, तथा साथ ही उसकी वीरानगी और आतक-वितक के अत्यन्त ही अद्भुत शब्दचित्र दिए हैं। वह दूर कलकत्ता मे रहने वाले बडे जमीदार का प्रतिनिधि है, और इस हैसियत से उसके पास जमीन के भूखे लोगो के जो दल आते रहते हैं, वे नितान्त दरिद्र और नितान्त विनीत है। पर इस दयनीय दरिद्रता मे उन्होने एक ऐसे जीवन-दर्शन की उपलब्धि कर ली है, जो उन्हे ऊपर से हताश-हताश्वास लगने वाली आर्थिक स्थिति से भी अधिकाधिक सुख-सभावनाएँ निचोड लेने की योग्यता प्रदान करती है तथा इस तरह दरिद्रता और दुखभोग और असाध्य भुखमरी तक के डक को निर्विष कर देती है। नये खेतिहरो के हाथ जमीन की बदोबस्ती करने मे उसकी सहायता करने के लिए जमीदार द्वारा भेजे गए कर्मचारी हो, या स्वय वे भावी खेतिहर हो जिन्हे जमीन लेनी है, या फिर अपेक्षाकृत निम्नतर वर्गों के वे लोग ही क्यो न हो, जो वनभूमि के बडे-बडे टुकडे काट-काट कर खेत बनाने अथवा गाँव बसाने के काम मे लगी उस फूलती-फैलती बस्ती के लाव-लश्कर के अनिवार्य अग बने, मतलब यह कि इतनी विविध भाँति के जो भी चरित्र उसके चौगिर्द आ जुडे, सबको उसने कुछ ऐसी अन्तर्दृष्टि के साथ चित्रित किया है कि दाद दिए बिना रहा नही जा सकता। चित्रण मे चरित्र की पैनी परख तो है ही, मनुष्य को मनुष्य के रूप में प्यार करने की एक ऐसी भावना भी है जो निष्कपट और दृढविश्वासी है।

कहानी के दौरान मे जिन विविध चरित्रो से हमारी खासी जान पहचान हो जाती है, वे सब-के-सब जीवत व्यक्तित्व है। शहरो से दूर होने के कारण उन सभी के अन्दर सामान्यत एक ऐसी सादगी और ईमानदारी है, जो आदिम मानव मे ही पाई जाती है। देहातो मे, जगल के

किनारे या बीच जगल मे रहने वाले भारतवासी नर-नारियो के छायापथ मे इन विविध चरित्रो मे से प्रत्येक चरित्र एक-एक नये सितारे की वृद्धि करता है । राजू पाडे एक सीधा-सादा वृद्ध ब्राह्मण है । उसके जीवन का एकमात्र आनन्द तुलसीदास की रामायण पढना है । धतुरिया लडका है, नाचने की कला का सच्चा कलाकार । विधवा कुता अपने दीन-हीन दयनीय परिवेश मे भी अद्भुत साहस और सेवाभाव का परिचय देती है । युगलप्रसाद एक सच्चा वनस्पति-शास्त्री है, जो सुन्दर फूलो और विलक्षण पौधो को प्यार करता है । बिहार के उस देहात के बगाली डाक्टर की यतीम लडकी अपने परिवेश के कारण लगभग किसान-कन्या ही बन चुकी है । गरीबी और परिस्थितियो के दबाव ने उसे खट-खट कर खप मरने के अभिशप्त जीवन मे बाध रखा है । पूर्णतर जीवन की एक धुँधली-धुँधली-सी समझ तो उसे है , पर उसकी कोई आशा नही है । स्कूल-मास्टर गनौरी तिवारी एक प्रारभिक पाठशाला खोलने के चक्कर मे बस्ती-बस्ती भटकता रहता है । बिहारी देहात का कवि शुद्ध व्याकरण-सम्मत हिन्दी मे कविता लिखता है, और इसके लिए स्थानीय हिन्दी-पत्रिका के संपादक की प्रशसा प्राप्त कर चुका है । उसके रग-ढग कितने सीधे-सादे है ! उसकी हृदयहारिणी पत्नी भी उस-जैसी ही सरल और सुधी है । गाव का सूदखोर महाजन धौस, धुप्पस और भभकी के बल पर काम चलाता है और बर्बर मालदारी की एक ऐसी जिन्दगी बिताता है, जिसमे कही कोई रस नही है, कही कोई आकर्पण नही है । यह चरित्र ही ऐसा है जो कभी किसी का भी प्यार नही पा सकता । मुनेश्वरसिंह पूरा सिपाही है । मटुकनाथ पडित दिन-रात इसी चिन्ता मे घुलता रहता है कि किसी तरह एक सस्कृत पाठशाला खुल जाय तो कुछेक लडके देववाणी मे दीक्षित किये जा सके । बूढे आदिवासी सरदार दोबरू पन्ना मे असली राजसी आन-बान और शान झलकती है । उसकी परपोती भानुमती का चित्रण लेखक ने ऐसी चरम सहानुभूति और भावभीनी पैठ के साथ किया है कि कोई भी पाठक इस आदिवासी युवती के चौगिर्द फैली रोमास-भावना से

प्रभावित हुए बिना नही रह सकता। उसकी याद आते ही हर पाठक के दिल मे एक मीठी-मीठी सी टीस उठने लगेगी।—इन सभी चरित्रो का समुदाय मानो जीती-जागती छवियो की कोई चित्रशाला हो! ये सब भी सचाई की ठीक वैसी ही प्रतिकृतियाँ है, जैसी कि उन पेड-पौधो, फूल-पत्तियो, पहाडी झरनो, ऊची-ऊँची उपजी अबोह घासो और नीले आसमानो के चित्र, जिनके बीच कि ये लोग रहते है।

भारतीय साहित्य मे परम्परा युगो पुरानी है। वेद-काल से अब तक भारतीय विश्व-दर्शन—व्हेल्तेनशाउउग—का क्रम कभी टूटा नही है। विभूतिभूषण के 'आरण्यक' का मेल ऋग्वेद के दसवे अध्याय मे इरम्मद-पुत्र देवमुनि रचित उन ऋचाओ—१४६ वे सूक्त—से खूब बैठता है, जो वनो की आत्मा—अरण्यानी—की विरुदावली के रूप मे निवेदित की गई है। यह सूक्त वेदकाल के उस आदिम ग्राम का चित्र उपस्थित करता है, जो किसी आदिकालीन जगल के किनारे बसा है। इन ऋचाओ मे चिड़ियो की चहकारो, पेडो की छाँहो, पेडो पर पडती कुल्हाडियो की ठकाठक चोटो तथा वनदेश की रहस्यमयता और रोमास आदि जिन विषयो की चर्चा है, उन सब की गूँज विभूतिभूषण बद्योपाध्याय के 'आरण्यक' मे सुनाई पडती है। वेद के ऋषि ने अपना सूक्त इस प्रार्थना के साथ समाप्त किया है ·

अजनगधिं सुरभिम् बह्वन्नाम् अकृषीवलाम्।
प्र अहम् मृगाणाम् मातरम् अरण्यानी अशसिषम्॥

(अजन सी गधवाली, सौरभ से भरी, बिना जोते-बोये ही प्रचुर अन्न देनेवाली, और वन्य जतुओ की माता अरण्यानी की मै प्रशसा करता हूँ।)

भारतीय मानव ने अपने को जिस परिवेश मे पाया, उस—आदिकालीन भारतीय वनो के परिवेश-प्रतिवेश—से उसे प्यार हो गया। वेदो मे इसकी प्रचुर चर्चा है। अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त वनभूमि और कृषिभूमि की अपनी पैदावारो के द्वारा सभी का भरण करने वाली विश्व-

भरा पृथ्वी के प्रति प्रेम की व्यजनाओ से ओतप्रोत है। महाभारत के बहुलाश की पृष्ठभूमि वन-प्रदेश ही है। रामायण का भी यही हाल है। यह उन पुराचीन दिनो के वीर पुरुष तथा शाश्वत अहल्या वनभूमि, दोनो का ही एक महान् महाकाव्य है। बाणभट्ट के उस अत्युच्च आभिजात्य-पूर्ण सस्कृत रोमास 'हर्पचरित' मे सातवे अध्याय के अन्त की ओर भारतीय साहित्य का यह महान् शब्द-चित्रकार केन्द्रीय भारत के विन्ध्याचल पहाडो की जगली बस्ती का परम प्रोज्ज्वल वर्णन उपस्थित करता है। सातवी शती के उस उत्तर-भारतीय सस्कृत लेखक की रचना के इस मनोहर प्रकरण के अनुशीलन के बाद बीसवी शती के बगाल के आधुनिक लेखक की कृति 'आरण्यक' को पढने मे और भी अधिक रस मिलता है तथा उसका समझना और भी सरलतर हो उठता है।

धरती माता का सान्निध्य ही मानव का प्राकृतिक परिवेश है। इसी परिवेश मे मानव का अध्ययन करने मे आनन्द पाने वालो को भारतीय साहित्य मे प्रकृति के स्थान का विषय बहुत ही रोचक प्रतीत होगा। जान पडता है कि भारतीय मानव ने सदा ही अपने आपको विश्व के अन्य भागो के वासियो की अपेक्षा प्रकृति के निकटतर माना है। प्रारम्भिक दिनो की भारतीय कला मे तथा युगो-युगो के भारतीय साहित्य मे इसका निदर्शन प्रचुर परिमाण मे मिलता है। भारत के व्यतिरेक मे उसके पडोसी चीन ने बहुत प्रारम्भिक काल मे ही प्रकृति के प्रति एक निर्लेप-भावना-सी विकसित कर ली थी। तभी से प्रकृति के सबध मे चीन की दृष्टिभगी आभिजात्य रीतिग्रस्तता से कृत्रिम रही है। साथ ही, यह भी मानना पडेगा कि यह दृष्टिभगी अत्यन्त ही सुसस्कृत रही है। बहुत-कुछ वैसी ही, जैसी सुसस्कृतता कि आधुनिक मानव की विशिष्टता मानी जाती है। अन्तर्मुखीनता के विकास तथा नगरो मे सिमटे मानव के आवासो के वन से विच्छिन्न हो उठने के कारण यह दृष्टिभगी आजकल के नर-नारी के लिए नितात प्रसम हो चली है। विभूतिभूषण बद्योपाध्याय का 'आरण्यक इन दोनो ही प्रवृत्तियो के समन्वय का प्रतीक है। वह प्रकृति की परि

सीमा मे सर्वात्मना जमे है। सच पूछिए तो लगभग उसके अग ही बन गये है। पर साथ ही, वह अपने आपको प्रकृति से निर्लिप्त कर लेने मे भी समर्थ है, तटस्थ होकर उसकी रमणीकता, उसके ऐश्वर्य तथा उसके सर्वाच्छिन्नकारी पहलुओ पर मनन करने मे तथा फिर भी उससे अप्रभावित रह सकने मे समर्थ है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि प्रकृति के प्रति उनकी दृष्टिभगी मानव की सर्वग्रासी आवश्यकताओ के आगे प्रकृति और उसके अगभूत जगलो के पराभूत किये जाने पर गहन विषाद की दृष्टिभगी है। जहाँ कभी आदिकालीन जगल का ही एकछत्र राज्य था वहाँ मानव की फूलती-फैलती बस्तियो की स्थापना करके धरती का मुखडा ही बदल डालने वाले अपने श्रमकृत्यो की उस लीलास्थली से विदा होते समय वह मन-ही-मन इन चिन्तनो मे पड जाते है

"नाढा बैहार पार हो गया, तो पालकी से गर्दन निकाल कर एक बार उलट कर देखा।

बहुतेरी बस्तियाँ, लोगो की बातचीत, बच्चो की हँसी-किलकारी चीख-पुकार, गाय-भैस, फसल के गोले। छै-सात साल मे घने जगल को काटकर यह हँसता हुआ, हरा-भरा जनपद मैने ही बसाया है। सब कल यही कह रहे थे—'आपके काम को देखकर हम लोग भी दग हो गए है बाबूजी, नाढा और लवटोलिया क्या था और क्या हो गया।'

मै भी यही सोचता चला—'नाढा लवटोलिया क्या था और क्या हो गया।'

दिगत मे खोए हुए महालिखारूप पहाड और मोहनपुरा जगल को मैने दूर से नमस्कार किया—

'हे वन के आदिम देवताओ, मुझे क्षमा करना। विदा!'"

वन एव देहाती बस्तियो की आत्मा को यह कृति हमारे आगे साक्षात ला खडा करती है और हमे प्रकृति तथा मानव दोनो को प्यार करना सिखलाती है। इस दृष्टि से बडी ही उच्च कोटि के सृजनात्मक साहित्य के रूप

मे इसका जो मूल्य है, सो तो है ही, उसके अतिरिक्त इसका एक और भी महत्त्व है। प्रकृति को अपनी सेवा मे लगानेवाला तथा अपनी आवश्यकताओ के अनुरूप बनाने के लिए धरती का दृश्यमान स्वरूप बदल डालनेवाला मनुष्य मानव की सबसे विशिष्ट स्थितियो का प्रतिनिधित्व करता है। अपनी इन विशिष्टतम स्थितियो के बीच मानव के बहुरूपदर्शी चल-शोभापट का यह कृति एक सच्चा लेख्य भी है। बिहार के बगाल से सटे एक कोने मे प्रकृति मानव के अनिवार्य आक्रमण के फलस्वरूप धीरे-धीरे पीछे हटती जा रही है। उस कोने के जीवन की एक अवस्था-विशेष के ताजा और सच्चे चित्र के रूप मे, जन-मानस को प्रसन्न एव भावाकुल करने वाले अमूल्य अभिलेख के रूप मे, यह पुस्तक सदा अद्वितीय बनी रहेगी।

आशा है, साहित्य अकादेमी द्वारा आयोजित अनुवादो के माध्यम से भारत की विविध भाषाओ के पाठक इस महान् साहित्यिक सृष्टि का आस्वादन कर सकेगे। इन पक्तियो के लेखक की तरह वे भी इसे एक बार पढ लेने पर फिर इससे नाता तोड लेने मे कदापि समर्थ न होगे।

त्रिचूर, केरल
२० फरवरी १९५७

सुनीतिकुमार चटर्जी

जहाँ मनुष्यो की आबादी है, उसके पास कहीं घना जगल नही है। जगल है बहुत दूर; जहाँ गिरे हुए पके जंबुफल की गंध से गोदावरी-तट की हवा भाराक्रात हो उठती है। 'आरण्यक' उसी कल्पना-लोक का विवरण है। यह भ्रमण-वृत्तात नहीं है, न ही डायरी है—यह उपन्यास है। अभिधान में लिखा है—उपन्यास के मानी है गढ़ी हुई कहानी। हम अभिधानकार की बात को मान लेने को विवश हैं, लेकिन 'आरण्यक' की पृष्ठभूमि बिलकुल कपोल-कल्पित नहीं है। कोसी नदी के उस पार ऐसे दिगंत-विस्तृत प्रांतर पहले थे, आज भी हैं। और, दक्खिन भागलपुर तथा गया के जंगल-पहाड़ तो प्रसिद्ध ही है।

प्रस्तावना

सारे दिन दफ्तर की जीतोड़ मेहनत के बाद शाम को मैं गढ के मैदान में किले से सटकर बैठा था।

पास ही था बादाम का एक पेड। चुपचाप जरा देर उस पेड के सामने किले के पास की लहरो के समान आँकी-बाँकी जमीन को जरा देखा। अचानक ऐसा लगा, जैसे मै लवटोलिया के उत्तरी सरस्वती-कुंड के किनारे शाम को बैठा हूँ। दूसरे ही क्षण पलासी गेट की राह में मोटर का भोंपू बज उठा।

बात बहुत दिनो की है ; पर ऐसा लगता है, जैसे कल की ही हो।

कलकत्ता के इस कर्म-कोलाहल में डूबे रहकर जब लवटोलिया बैहार या आजमाबाद के उस जंगली भूभाग, उस चाँदनी, स्तब्ध अँधेरी रात, धू-धू करते हुए कसाल और झाऊ के जंगलो, क्षितिज मे खोई पर्वत-पक्तियो गहरी रात में दौडती हुई नीलगायों के पैरो की आवाजों, तपी दोपहरी में सरस्वती-कुंड के किनारे प्यासे जंगली भैसों, उस अपूर्व और अनोखे शिला-खड वाले प्रांतर मे रंग-बिरंगे वनफूलो की शोभा और रक्तपलाश के खिले जंगलों की बात आज सोचता हूँ, तो ऐसा लगता है कि जैसे किसी छुट्टी के दिन साँझ को निंदियारी हालत में मानो एक सौंदर्य-भरे जगत् का सपना देखा था, वैसा जगत् इस संसार में कहीं नही है।

और केवल वन-जंगल ही नही, कितने ही प्रकार के मनुष्य देखे थे।

कुंता . . . मुसम्मात कुंता की बात याद हो आती है। मानो आज भी वह गरीबिन सुंगठिया बैहार के बेर-वन से अपने बच्चो के लिए बेर बीन-बीनकर घर-गिरस्ती चलाने में व्यस्त है। अथवा जाडे की चाँदनी रातो में मेरी जूठन के आसरे आजमाबाद की कचहरी के अहाते में एक-तरफ, कुएँ के पास खड़ी है।

धतुरिया की याद आती—नर्तक-बालक धतुरिया · · !

दक्खिन मे अकाल पडा था, सो नाच-गाकर अपनी रोटी कमाने के लिए धतुरिया आया था लवटोलिया के उन जन-विरल जगली गाँवों में · · माढ़ा और गुड मिलने पर उसके होठों पर खुशी की हँसी कैसी निखरती! घुँघराले बाल, बड़ी-बड़ी आँखे, कुछ-कुछ औरतो-जैसी भाव-भंगी—तेरह-चौदह साल का खूबसूरत-सा लडका। उसके न बाप था, न माँ थी—दुनिया मे अपना कहने को कोई नहीं था—इसीलिए उस छोटी उम्र में उसे आप अपनी रोटी की फिक्र करनी पड़ती थी . . समय के बहाव में कहाँ बह गया वह! और, महाजन धौताल साहू याद आता . . .जैसे मेरे फूँस वाले बँगले के कोने में बैठा सरौते से सुपारियाँ काट रहा है। घने जंगल में अपने झोंपड़े के पास बैठा बेचारा राजू पाँडे अपनी तीन भैंसो को चराता हुआ गा रहा है—

'दया होईजी .

महालिखारूप पहाड़ की तराई में वसंत उतर आया है। लवटोलिया बैहार में जहाँ देखो, पीले फूलों का मेला-सा लग गया है। धूप से जला दुपहरिया का ताँबे-जैसा आसमान बालू के तूफान से धुँधला हो गया है। रात को महालिखारूप में जगमग अग्निमालिका—सखुए के जंगल में लोगों ने आग लगा दी है। कितने ही गरीब बच्चों, नर-नारियों, न जाने कैसे-कैसे खूँखार महाजनों, गवैयों, लकड़हारों और भिखमंगों की अजीब जीवन-यात्रा से परिचय हुआ! अपने बंगले में बैठा-बैठा रात को शिकारियों के अजीबो-गरीब किस्से सुनता—जिन्होंने मोहनपुरा रिजर्व फारेस्ट में जंगली भैंसों को फँसाने की ताक में भैंसों के देवता, विराट्काय देवता को देखा था।

इन्हीं की बातें मुझे कहनी है। संसार में जिस रास्ते पर सभ्य मनुष्यों का आवागमन कम है, उस रास्ते से न जाने कितनी ही अद्भुत जीवन-धाराएँ अजाने चट्टान-कगारो के बीच से चुपचाप बहती है, उनकी स्मृतियाँ आज भी नहीं भूल सका।

५

मगर अपनी यह स्मृति आनंद की नहीं, दुःख की है। स्वच्छद प्रकृति की वह लीला-भूमि मेरे ही हाथों विनष्ट हुई। मैं जानता हूँ कि इसके लिए वन-देवता मुझे कभी माफ न करेंगे। सुना है, अपने से अपने अपराध की बात कहने से उसका भार थोड़ा हल्का होता है।

इस कहानी की अवतारणा इसीलिए हुई है।

पहला परिच्छेद

[एक]

बात पन्द्रह-सोलह साल पहले की है। बी० ए० पास करके कलकत्ता मे बेकार बैठा था। खाक तो बहुत जगहो की छानी, फिर भी कोई नौकरी नही नसीब हुई।

सरस्वती-पूजा का दिन। मेस में चूँकि बहुत दिनो से रह रहा था, इसलिए वे निकाल तो नही सकते थे, मगर मारे तकाजो के मैनेजर ने नाक मे दम कर रखा था। मेस मे सरस्वती की प्रतिमा बिठाई गई थी। धूम-धाम भी कुछ बुरी नही हो रही थी। सुबह उठकर मै सोचने लगा, आज तो सब जगह छुट्टी है। एकाध जगह कुछ उम्मीद भी थी, तो आज तो कही भी कुछ होने-हवाने से रहा। उससे तो यही बेहतर है कि घूम-घूम-कर मूर्तियाँ देखता फिरूँ।

इतने मे मेस का नौकर जगन्नाथ कागज की एक चिट थमा गया। पढकर देखा, मैनेजर ने तकाजा लिख भेजा था। सरस्वती-पूजा के उपलक्ष मे आज मेस मे खान-पान की खास तैयारी की गई है। मेरे जिम्मे दो माह के रुपए बाकी पडे है। सो नौकर के हाथ कम-से-कम दस रुपए तो जरूर ही भिजवा दूँ। यदि यह न बन पडे, तो कल से अपने खाने का कही और ठिकाना करूँ।

बात तो बडी वाजिब थी , पर अपनी कुल पूँजी महज दो रुपए और कुछ आने पैसो की ही थी। कोई जवाब दिए बिना ही मै मेस से बाहर निकल पडा। मुहल्ले मे कई जगह पूजा के बाजे बज रहे थे, गली के मोड़ पर जमा होकर बच्चे शोर मचा रहे थे। अभय हलवाई की दूकान मे तरह-तरह की ताज़ी मिठाइयाँ थालियो मे सजी रखी थी। मुख्य मार्ग में कालेज-होस्टल

के फाटक पर नौबत बज रही थी। फूलो की माला तथा पूजा का और बहुत-सा सामान लिये लोग-बाग बाजार से लौट रहे थे।

सोचा, आखिर कहाँ जाऊँ ? साल-भर से ज्यादा हो गया कि जोडासाँको स्कूल की नौकरी छोडकर बैठा हूँ—बैठा तो वास्तव मे नही हूँ, नौकरी की तलाश मे ऐसा कोई व्यापारी-दफ्तर नही, ऐसा कोई स्कूल नही, ऐसा कोई अखबार का कार्यालय, ऐसा किसी बडे आदमी का घर नही, जिसकी कम-से-कम दस बार खाक न छानी हो। मगर सब ओर से वही एक जवाब—'जगह खाली नही है।'

अचानक रास्ते मे सतीश से भेंट हो गई। हिंदू होस्टल मे हम दोनो साथ रहते थे। फिलहाल वह अलीपुर मे वकालत करता है। ऐसा नही लगा कि वकालत से खास कुछ पल्ले पडता है। बालीगज की तरफ कही कोई ट्यूशन है, ऐसी स्थिति मे वही इस ससार-सागर मे उसके लिए डोंगी है। डोंगी की बात तो दूर रही, अपने को तो टूटे मस्तूल का कोई टुकडा भी नसीब नही। जहाँ तक गोते खाना बदा है, खा रहा हूँ। सतीश को देखकर यह बात थोडी देर के लिए भूल गया। भूलने का यह भी कारण हो गया कि छूटते ही सतीश ने पूछा—"अरे, सत्यचरण ! कहाँ चले ? चलो, जरा हिन्दू होस्टल की पूजा देख आएँ—अपनी पुरानी जगह है। शाम को वहाँ महफिल भी है—जरूर आना। वार्ड छ के उस अविनाश की याद है ? अरे वही अविनाश, मैमनसिंह के किसी जमीदार का लड़का ! अब तो वह नामी गवैया है। शाम को उसका गाना है, मेरे नाम भी कार्ड भेजा है। मैं कभी-कभी उसकी जमीदारी का काम-धाम देखा करता हूँ न ! जरूर आना, तुम्हे देखकर बहुत खुश होगा वह।"

कालेज मे पढते समय—पाँच-छ साल पहले—आनन्द मिल जाने पर और किसी के लिए मन नही चाहता था। देखा, अभी भी मन का वह भाव गया नही है। होस्टल मे पूजा देखने गया, तो वहाँ दोपहर के भोजन का न्योता मिल गया। अपनी तरफ के जाने-पहचाने बहुत-से लडके वहाँ थे—नही ही आने दिया उन लोगो ने। लाख कहता रह गया—"भई

महफिल तो शाम को है, अभी से क्या करना। मेस से खा-पीकर वक्त पर आ जाऊँगा।" मगर उन्होने मेरी एक न सुनी।

कही उन्होने मेरी सुनी होती, तो त्योहार का वह दिन मुझे फाके पर ही गुजारना पडता। मैनेजर की उस कडी चिट्ठी के बाद मेस मे खीर-पूडी की दावत मुझसे तो नही खाई जाती—और जबकि मुझसे एक रुपया भी देते नही बना। यह अच्छा ही हुआ। भरपेट, खा-पीकर महफिल मे जा बैठा। तीन साल पहले के छात्र-जीवन की बेताब उमग फिर लौट आई। फिर कौन तो यह याद रखता है कि नौकरी मिली कि नही मिली, मेस का मैनेजर मुँह लटकाये बैठा है कि नही बैठा है। ठुमरी और कीर्तन के उमडते हुए सागर मे इस कदर डूब गया कि यह भी भूल बैठा—यदि बकाया न चुका पाया, तो कल से हवा पीकर जीने की नौबत आयगी। महफिल टूटी, तो रात के ग्यारह बज रहे थे। अविनाश से बाते हुईं। होस्टल मे हम दोनो डिबेटिंग क्लब के दीवाने थे। एक बार हम लोगो ने सर गुरुदास वद्योपाध्याय को सभापति बनाया था। विषय था—'स्कूल-कालेजो मे बाध्यतामूलक धर्मशिक्षा का प्रवर्त्तन उचित है।' अविनाश था प्रश्न पूछने वाला और मै था प्रतिवादी पक्ष का नेता। दोनो ओर के तुमुल तर्क के बाद आखिर सभापतिजी ने अपनी राय हमारी तरफ दी। तब से अविनाश से अपनी गाढी मित्रता हो गई, यद्यपि कालेज से निकलने के बाद उससे फिर यही पहली मुलाकात है।

अविनाश ने कहा—"मेरी गाडी है। चलो, तुम्हे छोड दूँ। रहते कहाँ हो?"

मेस के दरवाजे पर मुझे गाडी से उतारकर वह बोला—"सुनो, कल चार बजे शाम को हैरिग्टन स्ट्रीट मे मेरे घर चाय पीना। भूल मत जाना। तैंतीस बटे दो—लिख लो!"

दूसरे दिन हैरिग्टन स्ट्रीट का पता लगाया और अविनाश का मकान भी ढूँढ निकाला। मकान खास बडा तो नही था; पर आगे-पीछे बाग लगा था। फाटक पर विस्टारिया की लत्तड, नेपाली दरबान और पीतल

की नेम-प्लेट लगी थी। लाल सुरखी की सडक बनी थी, सडक के एक तरफ सब्ज लॉन और दूसरी तरफ चपा और आम के बडे-बडे पेड। ऐसी भूल कर सकने की कही से कोई गुजाइश ही नही थी कि मकान किसी बडे आदमी का नही है। जीने के ऊपर पहुँचते ही बैठक थी। अविनाश ने आकर मुझे आदर से बिठाया। फिर हम दोनो बीते दिनो की बातो मे मशगूल हो गए। अविनाश के पिता मैमनसिह के एक बडे जमीदार है, मगर आजकल कलकत्ता के मकान मे वे लोग है नही। पिछले अगहन मे अविनाश की बहन की शादी थी। उसी सिलसिले मे जो गाँव गये है, सो अभी तक लौटे नही।

इधर-उधर की बातो के बाद अविनाश ने पूछा—"तो इन दिनो कर क्या रहे हो?"

मैने कहा—"जोडासाँको स्कूल मे मास्टरी करता था। आजकल बेकार ही हूँ। मास्टरी करने का अब इरादा नही है। शायद कोई और जुगत लग जाय—एकाध जगह से कुछ उम्मीद बँधी है।"

वास्तव मे कही से भी कोई उम्मीद नही थी; परन्तु अविनाश ठहरा बडे आदमी का लाडला। बहुत बडी जमीदारी का मालिक था वह। कही वह ऐसा न समझे कि मै वहाँ किसी जगह का उम्मीदवार हूँ, इसीलिए ऐसा कह दिया।

कुछ सोचकर अविनाश बोला—"तुम-जैसे योग्य आदमी को नौकरी मिलने मे बेशक देर नही होगी। मुझे तुमसे कुछ कहना है। तुमने तो कानून भी पढा था—है न?"

मैने कहा—"पास भी कर लिया था, लेकिन वकालत करने का मन नही है।"

अविनाश बोला—"पूर्णियाँ जिले मे अपना एक जगल—महाल पडता है—कोई पच्चीस-तीस हजार बीघे का। वहाँ हमने एक नायब जरूर रख छोडा है, मगर इतनी अधिक जमीन के बदोबस्त का उस पर भरोसा नही

किया जा सकता। हमे एक योग्य व्यक्ति की तलाश है। वहाँ तुम जाना पसद करोगे क्या ?"

मुझे पता था कि अपने कान बहुत बार लोगो को धोखा देते है। अविनाश यह कह क्या रहा है। जिस नौकरी के लिए मै पूरे साल-भर से कलकत्ता की गलियो की धूल फाँकता फिर रहा हूँ, उसी नौकरी का प्रस्ताव चाय के न्योते पर इतनी आसानी से बिनमाँगे आ पहुँचा !

जो भी हो, अपना मान तो बचाना ही था। बड़े सयम से आवेश को पीकर अनमना-सा मै बोला—"अच्छा, सोच-समझकर फिर बताऊँगा। कल तो हो तुम ?"

अविनाश खुले दिल का आदमी है। बोला—"यह सोचने-समझने की बात तो रहने दो। मै आज ही पिताजी को लिखे देता हूँ। हमे एक विश्वासी आदमी चाहिए। जमीदारी के काइयाँ कर्मचारियो से अपना काम नही चलने का। ऐसे लोग ज्यादातर चोर ही हुआ करते है। वहाँ तुम-जैसे पढे-लिखे और बुद्धिमान आदमी की जरूरत है। वह सारा इलाका हमे नये रैयतो के हाथ बदोबस्त करना है। तीस हजार बीघे का जगल है—इतनी बडी जिम्मेदारी भला जिस-तिस पर कैसे छोडी जा सकती है ? तुमसे कुछ आज का परिचय नही, तुम्हारा एक-एक रग-रेशा मुझे मालूम है। तुम हामी भर दो और मै पिताजी से नियुक्ति-पत्र मँगवाए लेता हूँ।"

[दो]

नौकरी मिल कैसे गई, विस्तार से यह बताना बेकार है, क्योकि इस कहानी का उद्देश्य बिलकुल अलग है। थोडे मे कह दूँ, चाय की उस दावत के दो हफ्ते बाद एक दिन मै अपने सरो-सामान के साथ बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे के एक छोटे-से स्टेशन पर उतरा।

सर्दियो की साँझ। दूर तक फैले हुए प्रातर मे घनी छाया उतर आई थी—सुदूर वन-पक्ति के माथे पर थोडा-थोडा कुहरा जमने लगा था।

रेलवे लाइन के दोनो ओर मटर के लहलहाते खेत---साँझ की मर्द हवा मे मटर के ताजे साग की भीनी खुशबू उडकर जो आई, तो ऐसा लगा कि जो जिदगी मै शुरू करने जा रहा हूँ, वह बेहद सूनी होगी, वैसी ही सूनी, जैसी कि यह जाडे की साँझ है, जैसा सूना कि यह उदास प्रातर और दूर की वह नीली वनश्रेणी है।

बैलगाडी पर पद्रह-सोलह कोस चलना पडा—रात-भर चलता रहा। कबल वगैरह ओढने का जो सामान साथ लाया था, टप्पर के अदर सर्दी के मारे पानी हो गया। यह खबर किसे थी कि इधर इतनी करारी सर्दी पडती है! सुबह धूप निकलने तक चलता ही रहा। झाँककर देखा, जमीन की शक्ल बदल गई है, प्राकृतिक दृश्यो ने और ही रूप अपनाया है—कही खेत-खलिहान नही, गाँव-घर भी शायद ही कही है। जिधर देखिए जंगल और जगल—कही कुछ घने, कही कुछ छिछले, बीच-बीच मे खुला मैदान, मगर फसल का नाम तक नही।

दस बजे के करीब जमीदारी कचहरी मे पहुँचा। जगल मे दस-पद्रह बीघे का रकबा साफ-सुथरा कर लिया गया था, जिसमे जगल के बाँस-फूँस के बने हुए कई घर खडे थे। सूखी घास और झाऊ की बनी टट्टियाँ—उन पर मिट्टी की पुताई।

घर नये बने थे। अदर दाखिल होते ही ताजे कटे खर, अधकच्ची घास और बाँस की बू आई। पूछने से पता चला, कचहरी पहले जगल के उस ओर कही और थी, मगर चूँकि वहाँ जाडे मे पानी की बेहद तकलीफ हो जाती थी, इसलिए हाल मे यहाँ बनवाई गई है। पास ही एक झरना बहता है, जिससे पानी की कमी नही पडती।

[तीन]

जिदगी के ज्यादा दिन कलकत्ता मे बिताए। बंधु-बाधवो का सग-साथ, पुस्तकालय, सिनेमा-थियेटर, यह सोच भी नही सकता था कि इनके सिवाय और भी जिदगी हो सकती है। ऐसे मे नौकरी की गिनी-गिनाई कुछ

रुपल्लियो की खातिर ऐसी जगह आ निकला हूँ, ऐसी सूनी जगह की कभी कल्पना भी नही की थी। दिन बीत रहे थे। दूर के पहाड और जगलो पर पूरब-नभ मे सूरज का उगना देखा करता। फिर साँझ आए झाऊ और लबी घास के जगल को सिदूर से रँगकर सूरज का डूबना देखता—इस उदय-अस्त के बीच जाडे के ग्यारह घटे का लबा और उदास दिन मानो काटने दौडता हो। इन दिनो को किस तरह पार करूँगा, शुरू-शुरू मे मेरे लिए यही बहुत बडी समस्या हो उठी। करने को काम तो बहुत सारे किये जा सकते थे, मगर मै नितात नया था। लोगो की बोली भी अभी अच्छी तरह नही समझ सकता था, काम का बँटवारा भी करते नही बन रहा था। सो अपने साथ जो थोडी-सी किताबे ले आया था, उन्हीमे उलझकर किसी तरह दिन काटने लगा। कचहरी मे जो नौकर-चाकर थे, निरे जगली से। न मेरी बात वे समझें, न उनकी मै समझूँ। शुरू के दस दिन बड़ी तकलीफ से गुजरे। कितनी ही बार जी मे आया, ऐसी नौकरी से बाज आया मैं। यहाँ घुट-घुट कर मरने से तो कलकत्ता मे भूखा रहना कही बेहतर है। अविनाश के आग्रह पर इस जन-हीन जगल मे आकर बडी भूल की है मैंने। यह जिंदगी अपने लिए नही है।

रात को कमरे मे बैठा यही सब सोच रहा था कि किवाड खोलकर बूढे मुहर्रिर गोष्ठ बाबू अदर आए। यहाँ यही एक ऐसे आदमी थे, जिनसे अपनी जुबान में बाते करके जी जुडाता था। कुछ नही तो सत्रह-अठारह साल से यह यहाँ है। बर्दवान जिले के वनपाश स्टेशन के पास किसी गाँव मे इनका घर है। मैंने कहा—"गोष्ठ बाबू, आइए, बैठिए.. !"

दूसरी एक कुर्सी पर वे बैठ गए। बोले—"आपको अकेले मे एक बात कहने आया हूँ कि यहाँ के किसी आदमी पर एतबार मत कीजिए। यह अपना मुल्क नही है। यहाँ के लोग-बाग बडे बुरे है..."

मैं बोला—"लेकिन गोष्ठ बाबू, अपनी तरफ के सब लोग, अच्छे ही है, ऐसा तो नही है।"

"वह मै जानता हूँ मैनेजर बाबू! उसी दु:ख से और मलेरिया के

सताये ही तो यहाँ भाग आया था। शुरू-शुरू मे बेहद तकलीफ हुई—इस जगल मे दम मानो फूलता रहता—मगर अब तो यह हाल है कि देश की बात तो दूर रही, काम से कभी पूर्णियाँ या पटना भी जाता हूँ, तो दो से तीन दिन रहना मुहाल हो जाता है।"

मैंने कौतूहल से उनकी तरफ देखा—"भलामानस कह क्या रहा है यह!"

पूछा—"आखिर और कही रह क्यो नही सकते? जगल के लिए जी तडप उठता है क्या?"

मेरी ओर देखकर वे जरा हँसे। बोले—"तडप ही उठता है कहिए। आप पर भी गुजरेगा। आप अभी-अभी कलकत्ता मे आए है, वहाँ के लिए मन उडता रहता है, फिर आपकी उम्र भी क्या है अभी! कुछ रोज यहाँ रह लीजिए, फिर देखिएगा।"

—"देखना क्या है?"

—"यही कि जगल की माया आपको दबोच बैठेगी। भीड-भाड और शोरो-गुल नही सुहायगा। मुझ पर यही बीत रहा है। यही पिछले महीने का किस्सा है, मुकदमे के सिलसिले मे मुगेर गया था—बस यही लग रहा था कि कब यहाँ से निकल भागूँ।"

मैंने मन-ही-मन सोचा था—'इस मुसीबत से मुझे भगवान् बचाएँ। मै ऐसी नौबत आने से पहले ही नौकरी को नमस्कार करके कलकत्ता मे जा रहूँगा!"

गोष्ठ बाबू बोले—"इलाका यह अच्छा नहीं है—रात-बिरात बदूक को सिरहाने रखकर सोया कीजिए। कचहरी मे इसके पहले एक बार डाका पड भी चुका है। गनीमत है कि अब यहाँ रुपए नही रक्खे जाते।"

कौतूहल से मैंने पूछा—"डकैती? कितने दिन पहले हुई?"

—"यही कोई सात-आठ साल पहले। कुछ दिन यहाँ रह लीजिए, सारी बाते आप ही समझ मे आ जायेंगी। बेहद बुरी जगह है। फिर कोई मारकर ही डाल दे, तो देखने वाला कौन है यहाँ?"

गोष्ठ बाबू लौट गए। मैं खिडकी पर जा खडा हुआ। दूर जगल के ऊपर चाँद उगता आ रहा था और उगते हुए चाँद की पृष्ठभूमि मे झाऊ का एक आडी-टेढी शाख आ अटकी थी—मानो जापानी शिल्पी हकुसाई की कोई तस्वीर हो!

"अपनी किस्मत, नौकरी की और कोई जगह ढूढे नही मिली! इतनी खतरनाक है यह जगह, पहले से जानता होता, तो अविनाश को हर्गिज वचन नही देता।"

मगर दुर्भावना के बावजूद उगते हुए चाँद की शोभा ने मुझे मोह लिया।

[चार]

कचहरी से कुछ ही दूर पर पत्थर का एक टीला था—टीले पर एक बडा ही पुराना और बहुत बडा बरगद का पेड था। पेड का नाम था—ग्राटसाहब का बरगद। क्यो जो पेड का नाम ऐसा पडा, छान-बीन करके भी नही जान सका। एक दिन शाम को सूर्यास्त की छटा देखने के लिए मैं घूमता-घामता उस टीले पर जा निकला।

बरगद के नीचे आसन्न सध्या की घनी छाया मे खडा-खडा लहमे भर मे जाने मैं कहाँ का कहाँ पहुँच गया—कोलूटोला का मेस, कपाली टोला का वह ब्रिज का अड्डा, गोलदिग्घी में मेरी वह प्यारी बेंच—जिस पर बैठकर मैं कालेज स्ट्रीट के विरामहीन जन-प्रवाह और बस-मोटरो का ताँता देखा करता था। अचानक लगा, जाने कितनी दूर छूट गए वे। मन रो उठा—'यह मैं कहाँ आ गया। मामूली नौकरी के लिए यह किस वीरान जगल में फूस की झोपडी मे रह रहा हूँ! यहा भी कोई आदमी रह सकता है। निरा अकेला—ऐसा भी कोई नही कि दो बाते कर सकूँ। यहाँ के इन निहायत मूर्ख और जगली लोगो के साथ ही दिन बिताने पडेगे, जो कि बात तक नही समझ सकते? उस सुदूरप्रसारी दिगत व्यापी सूनी साँझ मे खडा-खडा जी उदास हो आया, कुछ डर भी लगा। सो मैंने सकल्प कर लिया, इस महीने के तो खैर और कुछ ही दिन रह गये हैं, किसी तरह से आनेवाला

महीना भी काट दूंगा और फिर अविनाश को लिखकर नौकरी से जवाब देकर कलकत्ता के बंधु-बांधवो के स्नेह-स्वागत के बीच, सभ्यो का खाना खाते हुए, सभ्य सुर के गीत सुनते हुए अनगिनती लोगो के आनद-उल्लास भरे कंठस्वर मे नई जिदगी बिताऊँगा।'

यह पता पहले थोडे ही था कि मनुष्यो के बीच रहना इतना पसद है मुझे ! मनुष्य को इतना प्यार करता हूँ ! लोगो के लिए जो कुछ मुझे करना चाहिए, हर समय वह करते तो नही बनता शायद , पर प्यार उन्हे जरूर करता हूँ। वरना उनसे दूर रहने से यह तकलीफ क्यो होती ?

प्रेसिडेसी कालेज की रेलिंग पर वह जो बूढा मुसलमान किताबे बेचा करता है, जाने कितनी बार वहाँ खडा-खडा पुरानी किताबो और मासिक-पत्रो के पन्ने पलटता रहा हूँ, कुछ खरीदना तो जरूर वाजिब था ; पर खरीद नही पाया—वह भी मानो नितांत अपना-सा लगा—उसे जाने कितने दिनो से नही देख पाया हूँ।

कचहरी लौट आया। अपने कमरे की मेज पर बत्ती जलाई और एक किताब खोलकर बैठा कि प्यादा मुनेश्वरसिह सलाम बजाकर सामने खडा हो गया। पूछा—"क्या है मुनेश्वर ?"

इस बीच मै वहाँ की टूटी-फूटी बोली बोलने लगा था। उसने कहा—"मेरे लिए एक कडाही खरीद देने का हुक्म मुहर्रिर बाबू को दे देते, तो बडी दया होती हुजूर ! "

—"कडाही का क्या होगा ? "

पाने की उम्मीद से मुनेश्वर का चेहरा दमक उठा। उसने झुके हुए स्वर मे कहा—"लोहे की कडाही से सहूलियत कितनी होती है हुजूर। जी चाहे जहाँ साथ ले जाओ। उसमे चावल पकाया भी जा सकता है, खाया भी जा सकता है और सामान भी रक्खा जा सकता है। टूटने-फूटने का डर नही। मेरे पास कडाही नही है। न जाने कब से एक कडाही खरीदने की सोच तो रहा हूँ, मगर गरीब आदमी ठहरा। एक कडाही छै आने की आती है। इतने पैसे मै कहाँ से लाऊँ ? इसी से हुजूर के पास आया हूँ।

हुजूर मालिक हैं। कडाही खरीदने की इच्छा मेरी बहुत दिनो की है। अगर हुजूर की मजूरी मिल जाय।"

'लोहे की मामूली कडाही जो इतने काम की होती है और उसके लिए लोग रात को सपने भी देखा करते हैं—' अपने जीवन में ऐसी बात मैंने पहली बार सुनी। इतने भी गरीब लोग इस दुनिया मे हैं, जो सिर्फ छै आने की एक कडाही पाकर समझते है कि मुट्ठी मे स्वर्ग आ गया! सुना जरूर था कि इधर के लोग बडे गरीब है। मगर इतने गरीब है, यह नहीं जानता था। बडी ममता हो आई।

मेरे हस्ताक्षर वाले कागज के एक टुकडे को देकर दूसरे ही दिन मुनेश्वर सिंह नौगछिया बाजार से पाँच नबर की एक कडाही ले आया और मेरे कमरे की जमीन पर उसे रखकर मुझे सलाम करके खडा हो गया—"हुजूर की किरपा से कडाही हो गई!" खुशी से खिले उसके मुखडे की तरफ ताककर इतने दिनो के बाद आज पहली बार मुझे लगा—"बडे भोले है ये लोग। बडी तकलीफ है तो बिचारो को!"

दूसरा परिच्छेद

[एक]

लाख कोशिश करने पर भी मै यहाँ की इस जिदगी से अपना मेल नही मिला पा रहा था। हाल ही मे बगाल से आया, सारी जिदगी कलकत्ता मे गुजारी, ऐसा लग रहा था कि इस अरण्य भूमि का सूनापन चट्टान की तरह मेरे कलेजे पर सवार हो गया है।

किसी-किसी दिन तीसरे पहर मै बडी दूर तक घूमने निकल जाता। कचहरी के पास तो फिर भी आदमी का कठस्वर सुनाई पडता था—दो-एक रस्सी आगे निकला नही कि जगली झाऊ और कसाल की भीड मे कचहरी गुम जाती और लगता, इस इतनी बडी दुनिया मे बस मैं ही एक हूँ—अकेला। उसके बाद जितना ही आगे जाता—चोडे मैदान के दोनो ओर घनी वन-पक्ति दूर तक चली गई है—जगल और झाडियाँ, गजारी और बबूल के पेड, कंटीले बाँस ओर बेतो की झुरमुटे है। जगल-झाडो के माथे-माथे डूबता हुआ सूरज सिदूर छिडक देता, वनफूलो और तृण गुल्मो की भीनी खुशबू से लदी साँझ की बयार, झाडी-झाडी चिडियो की चहक से मुखरित, जिनमे हिमालय के तोते भी होते। खुला, घास से ढँका सुदूर-प्रसारी प्रातर ओर श्यामल वन-भूमि का मेला। ऐसे मे कभी-कभी यह भी जी मे आता कि प्रकृति का जो रूप यहाँ देख रहा हूँ, वह और कही भी देखने को नही मिला। जहाँ तक आँखे जाती, वह सारा कुछ मानो मेरा ही है—मै ही यहाँ एकमात्र आदमी हूं—मेरी निर्जनता भग करनेवाला कोई नही—और, उस खुले आसमान के नीचे सूनी सध्या मे दूर दिगत की सीमा-रेखा तक मै अपने मन और कल्पना को फैला देता।

कचहरी से कोई कोस भर हटकर एक ढलवा जगह थी। वहाँ पर कई छोटे-छोटे पहाडी झरने झिर-झिर कर बहते थे। दोनो तरफ जलज

लिली की भीड। कलकत्ता के बागो मे इसी लिली को 'स्पाइडर लिली' कहते है। मुझे जगली स्पाइडर लिली देखना कभी नसीब नही हुआ था, जानता भी नही था, ऐसे एकात झरनो के पथरीले किनारो पर खिली लिली की इतनी शोभा होती है, हवा मे ये इतनी भीनी और मीठी खुशबू बिखेरा करती है! कितनी ही बार यहाँ चुप-चाप बैठकर मैने आसमान, साँझ और सूनेपन का उपभोग किया है।

बीच-बीच मे घोडे पर घूमा करता। शुरू-शुरू मे घोडा चढना ठीक से आता नही था, बाद मे अच्छी तरह आ गया। चढना आ जाने पर मैने जाना, इतना आनद और किसी बात मे नही। ऐसे निर्जन आकाश-तले दिगत-व्यापी वन-प्रातर मे जिसने कभी घोडे की पीठ पर सैर नही की हो, उसे यह समझा सकना मुश्किल है कि वह आनद क्या है! कचहरी से दस-पद्रह मील के फासले पर सर्वेपार्टी की नाप-जोख चल रही थी। आज-कल प्राय रोज सबेरे एक प्याला चाय पीकर जो घोडे की पीठ पर बैठता, सो कभी तीसरे पहर लौटता, तो कभी लौटते-लौटते जगल के माथे पर तारे निकल आते, आसमान मे वृहस्पति झलमला उठता। चाँदनी रात मे वन-फूलो की महक चाँदनी मे घुल जाती, स्यारो का 'हुक्का-हुआ' शब्द रात के पहर की सूचना देता, झीगुरो का दल एक स्वर मे झी-झी करता रहता।

[दो]

जिस काम के लिए यहाँ आया था, उसकी कोशिशे चल रही थी। हजारों बीघे जमीन की नाप-जोख करना कोई आसान बात तो थी नही। फिर यहाँ आकर एक और बात मेरी समझ मे आई। आज से तीस साल पहले ये सारी जमीने नदी के पेट मे समा गई थी। बीस साल हुए फिर से बाहर निकली है; लेकिन यहाँ के जो लोग उस समय अपने बाप-दादो की जमीन छोडकर लाचार होकर और कही जा बसे थे, जमीदार उन पुराने रैयतो को इस पर दखल नही देना चाह रहे थे। मोटी सलामी और ज्यादा मालगुजारी के लोभ से वे नई रैयतो को बसाना चाहते थे और उस घर-

बार विहीन गरीब रिआया को, जो अपने वाजिब हक से वंचित की गई थी, लाख आरजू-मिन्नत करने और रोने-धोने के बावजूद भी जमीन नहीं दी जा रही थी।

बहुत-सी रैयत मेरे पास भी पैरवी करने पहुँची थी। उसकी हालत देखकर सचमुच ही तकलीफ होती थी, मगर पुरानी रैयतो के हाथ जमीन बन्दोबस्ती का हुक्म ही नही था, इसलिए कि कही यदि एक बार उन्हे उस पर बैठने की गुजाइश हो गई, तो वे कानूनन अपने हक का दावा भी कर सकते है। जमीदार को लाठी का जोर ज्यादा था, बेचारी रैयत के पास न जमीन थी, न घर, आज बीस साल से वह जीविका के लिए भटकती घूम रही थी, कोई मजूरी पर पेट चला रहा था, किसी-किसी के पास मामूली सी जोत जमीन थी, बहुतेरे इस ससार से कूच भी कर चुके थे, जिनके बाल-बच्चे नाबालिग और निरीह थे—ऐसे मे बलवान जमीदार के खिलाफ वे खडे भी होते, तो धार मे अडने वाले तिनके-से बह जाते।

लेकिन नई रैयत लाई जाय, तो कहाँ से? मुगेर, पूर्णियाँ, भागलपुर, छपरा—पास-पडोस के जिलो से जो लोग आते थे, सलामी और माल-गुजारी की दर सुनते ही भडक जाते। कोई-कोई दो-चार बीघे ले भी रहे थे। अगर यही मद्धिम गति बन्दोबस्ती की रही, तो दस-दस हजार बीघे जमीन को रैयतो के बीच बाँटने मे बीस-पच्चीस साल का अरसा लग जायगा।

यहाँ से उन्नीस मील पर अपनी एक कचहरी और थी—वह भी घने जगल का इलाका था। उस जगह का नाम था नवटोलिया। जगल जैसा यहाँ था, वैसा ही वहाँ भी। मगर वहाँ कचहरी रखने का मतलब यह था कि वह जगल गाय-भैंस चराने के लिए हर साल ग्वालो को मालगुजारी पर उठा दिया जाता था। इसके सिवा वहाँ कोई दो-तीन सौ बीघे का बेर का जगल था। लोग लाह की खेती के लिए उसे लगान पर लिया करते थे। इन रुपयो की वसूली के लिए वहाँ दस रुपये माहवार पर एक पटवारी और छोटी-सी कचहरी रक्खी गई थी।

बेर के वन को इजारा देने का समय आ रहा था। घोडे की पीठ पर

सवार होकर एक दिन मै नवटोलिया के लिए रवाना हुआ। बीच मे कोई सात-आठ मील लम्बा लाल मिट्टी का एक ऊँचा मैदान पडता था, जिसे 'फुलकिया बैहार' कहते थे। जाने कितनी तरह के पेड-पौधे और झाडी-झुरमुटो से भरा था यह बैहार! कही-कही जगल इतना घना था कि पेडो के डाल-पते घोडे को लगते थे। जहाँ यह बैहार समतल पर जा उतरा था, वही पथरीली जमीन पर एक छोटी-सी पहाडी नदी बहती थी—चानन। बरसात मे उसमे काफी पानी रहता। अभी सर्दी के दिनो मे उतना पानी नही था।

नवटोलिया मै पहली बार गया था। मामूली-सा घर था कचहरी का—रबड की छौनी, कसाल और झाऊ के डाल-पत्तो से तैयार की गई थी घेरे की टट्टियाँ। साँझ से कुछ पहले पहुँचा। जहाँ मैं रहता था, वहाँ ऐसी करारी सर्दी नही थी, यहा बेर डूबने के पहले ही सर्दी से मानो जम जाने की नौबत आ गई।

प्यादो ने सूखी लकडियाँ बटोर कर आग जलाई, उसी के पास कैंप-चेयर पर मै बैठ गया—और-और लोग आग के चारो ओर गोल बना कर बैठे।

पटवारी जाने कहाँ से एक पाँच सेर की रोहू मछली जुगाड कर लाया था। अब समस्या यह सामने आई कि उसे पकाए कौन? मेरे साथ रसोइया नही था। मै अपने आप भी रसोई बनाना नही जानता था। सात-आठ आदमी वहाँ मुझसे मिलने आए थे। मेरे इन्तजार मे वे वहाँ पहले से ही बैठे थे। उन्ही मे से कट्टू मिश्र नाम के एक मैथिल ब्राह्मण को पटवारी ने रसोई के काम मे लगा दिया।

मैंने पटवारी से पूछा—"यही लोग इजारे के लिए आए है?"

उसने कहा—"जी नही हुजूर, ये तो आए है खाने के लिए। आपके यहाँ आने की खबर जो हुई, सो ये आज दो दिन से यही पडे है। इधर ऐसा ही होता है। कल शायद और भी लोग आएँ।"

ऐसी बात मैने पहले कभी नही सुनी। कहा—"मगर मैने तो इन्हे न्योता नही दिया है ?"

—"हुजूर, ये बेचारे बेहद गरीब है। भात खाना इन्हे कभी नसीब ही नही होता। बारहो महीने ये उडद और मकई का सत्तू खाकर ही गुजारा करते है। सो भात इनके लिए बहुत बडी बात है। आपका आना सुना, समझा यहाँ दो मुट्ठी भात मिलेगा। इसी लोभ से आ धमके। कल तक देखिए, और न जाने कितने लोग आते है!"

मुझे लगा, इनके मुकाबले अपनी तरफ के लोग बहुत सभ्य हो गए हैं? कह नही सकता क्यो, उस रात मुझे भात के लोभी ये सीधे-सादे लोग बडे भले लगे! आग के चारो तरफ बैठे वे आपस मे बाते करते रहे, मै बैठा-बैठा उनकी बाते सुनता रहा। पहले तो वे मेरे पास की आग के समीप बैठना ही नही चाह रहे थे—सम्मान की दूरी रखने के लिहाज से। मै खुद उन्हे बुला लाया। पास ही कटू मिश्र आसन की लकडियाँ झोक कर मछली पका रहा था—धुएँ के साथ धूप-जैसी गन्ध उड रही थी। आग के पास से हटने पर ऐसा लग रहा था, कि मानो बर्फ की बारिश हो रही हो। इतनी सर्दी!

खाते-पीते रात बहुत बीत गई। कचहरी मे जितने भी लोग थे, सबने खाया। खा-पीकर फिर सब आग को घेर कर गोल होकर बैठे। सर्दी के मारे नसो का खून तक जैसे जमता आ रहा था। शायद खुली जगह होने से ऐसी कडाके की सर्दी थी, या हो सकता है, हिमालय पास पडता है इसलिए।

आग के पास हम सात-आठ आदमी बैठे थे। घर दो ही थे छोटे-छोटे, खड के। एक मे मुझे रहना था, दूसरे मे बाकी सबको। हमारे चारो तरफ फैला था अँधेरा जगल और मैदान, ऊपर तारो से भरा दूर-व्यापी अधकार से आच्छादित आकाश। मुझे बडा अजीब-सा लगा, मानो अपनी सदा की जानी-पहचानी दुनिया से दूर महाशून्य की किसी गुहा मे एक अजानी और रहस्यमयी जीवन-धारा में मै जा पडा हूँ।

इतनी बडी भीड मे से तीस-बत्तीस की उम्र के एक आदमी ने मुझे सबसे ज्यादा आकर्षित किया। नाम था उसका गनौरी तिवारी, साँवला रग, दोहरा बदन, बडे-बडे बाल, कपाल पर टीका। इस कडाके की सर्दी मे भी उसके बदन पर मोटिया की एक चादर के सिवाय और कुछ नही था। इधर मिरजई पहनने का आम रवाज है, उसके बदन पर वह भी न थी। बडी देर से मै यह गौर से देख रहा था कि वह सबकी तरफ कैसे कुठित भाव से ताक रहा है। वह किसी के भी कहने का कोई प्रतिवाद नही करता था, गो कि वह बात किसी कद्र कम नही कर रहा था।

मै जो भी कहूँ, उसी पर वह कह उठता—"हुजूर!"

इधर के लोग जब किसी बडे या आधिकारी की बात माने लेते, तो महज आगे की तरफ को जरा सिर झुकाकर कहते—"हुजूर!"

गनौरी से पूछा—"तिवारीजी, तुम रहते कहाँ हो?" उसने मुझे कुछ इस तरह ताका, मानो मुझसे उसे इतना सम्मान पाने की उम्मीद न थी, वह सोचता ही न हो कि मै सीधे उससे कुछ पूछ भी सकता हूँ! बोला—"भीमदास टोला, हुजूर!"

उसके बाद उसने अपनी राम-कहानी कह सुनाई। एक साँस मे जरूर नही सुनाई। मैने जैसे-जैसे पूछा, वैसे-वैसे, रुक ठहर कर।

जब वह बारह साल का था, उसका बाप उसे छोड गया। बूढी फूफी उसे पालने लगी। पाँच-छ साल के बाद फूफी भी चल बमी। तब गनौरी भाग्य की खोज मे दुनिया मे निकल पडा। दुनिया भी उसकी बहुत ही महदूद थी—पूरब मे पूर्णियाँ शहर, पच्छिम मे भागलपुर जिले की सरहद, दक्खिन, यह फुलकिया बैहार और उत्तर मे कोसी नदी, बस। यही थी उसकी दुनिया की हद। इसी चौहद्दी के अन्दर इस-उस गाँव मे कभी किसी के यहाँ पूजा करके, तो कभी किसी पठशाला मे गुरुअई करके बडी मुश्किल से उडद के सत्तू और मडए की रोटी जुटा कर वह अपना पेट पालता था। बहरहाल वह अब दो महीने से बेकार है। परबत्ता गाँव की पाठशाला उठ गई। दस हजार बीघे का यह फुलकिया बैहार जगल-झाड से भरा, न कही

गाँव, न कोई बस्ती। इन जगलो मे जो भैसवाले भैस चराने आए थे, उन्ही के बथानो पर माँग-माँग कर जीविका चला रहा था। उसे आज खबर मिली कि मैं आ रहा हूं, सो औरो के सग वह भी आ पहुचा।

क्यो आ पहुंचा वह, यह बात और भी मजे की थी।

—"ये इतने लोग यहाँ क्यो आए है तिवारीजी ?"

—"हुजूर, लोगो ने बताया कि कचहरी मे मैनेजर बाबू आए है यहाँ भात की जुगत बैठेगी। लोग-बाग इसीलिए आए है और मै भी उनके साथ आ गया ह।'

—"यहाँ के लोगो को क्या भात नही मिलता ?"

—"भात कहाँ नसीब होता है हुजूर ! नौगछिया के मारवाडी लोग रोज भात खाया करते है। यही समझिए कि मुझे आज कोई तीन महीने मे भात के दर्शन हुए है। पिछले भादो की सकरात के दिन रासबिहारी-सिह राजपूत के यहाँ न्योता था। वही भात खाया था—बस।"

जितने भी लोग आए थे, कपडा उनमे से किसी के भी बदन पर न था। रात को आग ताप कर ही वे लोग रह लेते थे। रात की आखिरी घडियो मे जब सर्दी ज्यादा बढ जाती, किसी भी कदर नीद नही आती, तो वे आग के पास और सिमट जाते और जाग कर सबेरा करते।

जाने ये सब लोग अचानक मुझे इतने भले क्यो लगे ! इनकी यह गरीबी, यह भोलापन और जीवन के इस कठोर-सग्राम मे जूझते रहने की ऐसी क्षमता। इस अँधेरी वन-भूमि और बर्फ बरसाने वाले आसमान ने इन्हे विलासिता की फूल बिछी राह पर नही जाने दिया—इन्हे वास्तविक मर्द बना दिया। दो मुट्ठी भात खाने की खुशी मे जो बेबुलाए नौ-दस मील की मजिल मार कर भीमदास टोला और परबत्ता से यहा आ गए—उनके आनन्द ग्रहण की शक्ति कितनी पैनी है—मैं यह सोच कर दग रह गया।

बहुत रात बीते किसी की आवाज से नीद उचट गई। मारे सर्दी के मुह निकालना भी मुहाल था। चूँकि यह पता नही था कि यहाँ इस क़दर

सर्दी पडती है, इसलिए जितने चाहिए थे, गरम कपडे और तोशक-लिहाफ साथ नही लाया था। कलकत्ता मे जो कबल बराबर ओढा करता था, उसी को लाया था। रात के चोथे पहर मे वह कन्कन् पानी-सा हो जाता। जिस करवट सोता, शरीर की गरमी से, उधर फिर भी किसी तरह का रहता, मगर जहाँ करवट बलदना, लगता पूस की रात मे किसी पोखर मे उतर पडा हूँ। पास ही जगल से पैरो की आहट आ रही थी—कुछ तो दौडते जा रहे थे, मानो—पेड-पौत्रो, सूखे झाऊ के पौधो को पटापट तोडते हुए दौडे जा रहे थे।

समझ नही सका कि आखिर माजरा क्या है। मैंने प्यादा विष्णु पाडेय और गुरुजी गनौरी तिवारी को आवाज दी। वे निदियाई आँखो से ौडे आए। जो आग रात जलाई गई थी, उसकी आखिरी आभा मे उनके चेहरे का आलस, सभ्रम और नोद का भाव झलक उठा। जरा कान लगा कर गनौरी तिवारी बोल उठा—"वह कुछ नही हुजूर, नीलगायो का झुड जगल मे दौड रहा है।"

कहना खत्म करके वह फिर सो जाना चाहता था कि मैंने पूछा—"इतनी रात गए ये नीलगायें आखिर दौड क्यो रही है?"

मुझे ढाढम देते हुए प्यादे ने कहा—"किसी जानवर ने पीछा किया होगा, और क्या?"

—"किस जानवर ने?"

—"जानवर और क्या, जगली जानवर, शेर होगा या भालू—"

एकाएक मेरी नजर अपने कमरे के दरवाजे पर जा टिकी। कसाल की बनी महज एक टट्टी। इतनी हल्की कि बाहर से कोई कुत्ता भी मुँह मारे तो दूसरे दम अन्दर आ गिरे। ऐसे मे यह कहना फिजूल है कि बगल के जगल मे बाघ-भालू नीलगायो पर टूटे हैं, इस खबर से मैं निश्चिन्त नही हो सका।

कुछ ही देर में सबेरा हो गया।

[तीन]

दिन जाने लगे और जगल की माया मुझे कसकर जकडती चली गई। इसके इस सूनेपन और साँझ के सिन्दूर बिखरे झाऊ-वन मे ऐसा कौन-सा जादू है, नही जानता। धीरे-धीरे मुझे ऐसा लगने लगा कि इस सुदूर प्रसारी वन-प्रातर को छोडकर, यहाँ की धूप से जली माटी की ताजी खुशब, वन-फूलो की महक, यह आजादी और यह उन्मुक्तता छोड कर अब कलकत्ता की हलचल मे लोट सकना सभव नही।

ऐसा नही कि यह खयाल एक ही दिन मे हुआ हो। कितने रूप और बाने से मेरी मुग्ध ओर अनभ्यस्त दृष्टि के आगे आ-आकर जो इस वन्य प्रकृति ने मुझे लुभाया!—कितनी साँझ तो वह आई माथे पर अनुपम रक्तमेघ का मुकुट पहने, चिलचिलाती दोपहरियो मे आई उन्मादिनी भैरवी के वेश मे, कभी गहरी रात मे ज्योत्स्नावरणी सुर-सुन्दरी का रूप लिये हिमस्निग्ध वन-फूलो की गध मले—गले मे आकाश भरे तारो की माला—अँधेरी रात मे कालपुरुष का अग्निखड्ग हाथ मे लिये विराट् कालीमूर्ति के रूप मे!

[चार]

एक दिन की बात तो मै आजीवन न भूल सकूँगा। याद है, उस दिन होली थी। प्यादो ने छुट्टी ली थी ओर तमाम दिन ढोलक-झाँझ बजाकर होली खेलते रहे थे। शाम तक भी उनका नाच-गान खत्म नही हुआ था। यह देख कर मैने कमरे की बत्ती जलाई। और बडी रात तक अपने कार्यालय के पत्रादि लिखे। घडी देखी। एक बज रहा था। मारे ठड के मानो जम रहा था। मैने एक सिगरेट सुलगाई और खिडकी से बाहर झाँका। बाहर जो झाँका, तो मुग्ध ओर विस्मित होकर खडा ही रह गया! जिस चीज ने मुझे इस कदर मोह लिया, वह थी पूनो की चाँदनी। ऐसी चाँदनी कि बयान नही किया जा सकता।

जब से आया, जाडो के दिन होने की वजह से शायद काफी रात गए

कभी बाहर नही निकला, या दूसरे जिस किसी कारण से भी हो, फुलकिया बैहार मे परिपूर्ण चॉदनी रात का रूप मैने आज ही पहली बार देखा था।

दरवाजा खोल कर मै बाहर जा खडा हुआ। कही कोई नही था। प्यादे सारे दिन के मौज-मजे के बाद थक कर सो गए थे। घनघोर सन्नाटा, निस्तब्ध और सूनी रात। उस चॉदनी रात का वर्णन नही हो सकता। वैसी छायाविहीन चॉदनी मैने जिन्दगी मे कभी नही देखी, कभी नही। बडे-बडे पेड इधर कम ही है, झाऊ के छोटे-छोटे पौधे और कसाल। इनमे कुछ खास छाया नही होती। चकमकाती बालू मिली यहाँ की माटी और अधसूखे कास-वन पर उतर कर चॉदनी ने एक ऐसे अपार्थिव सौन्दर्य की सृष्टि की थी कि देख कर भय-सा हो गया। एक कैसा उदास, बधनहीन भाव मन मे जाग पडा, मन हाहाकार कर उठा। चारो ओर निगाह फैलाकर उस मौन निशीथ मे , चॉदनी से धुले आसमान के नीचे खडे-खडे ऐसा लगा कि जैसे मै किसी अजाने परी-देश मे जा निकला हूँ—यहाँ मनुष्य का कोई नियम-कानून नही लग सकता। ये जन-विहीन एकान्त कोने गहरी रात हुए चॉदनी के आलोक से परियो की क्रीडा-भूमि बन जाते है। मैने यहाँ अनधिकार प्रवेश करके अच्छा नही किया।

इसके बाद तो फुलकिया बैहार की चॉदनी रात कितनी ही बार देखी—फागुन के बीचोबीच जब दुधली फूल खिल कर सारे मैदान मे रगीन गलीचा बिछा देते, तब वैसी कितनी ही चॉदनी से नहाई शुभ्र रातो मे मै जी भर कर हवा से दुधली फूलो की मीठी सुवास लेता रहा हूँ। हर बार जी मे यही आया किया कि चॉदनी भी ऐसी अपूर्व हो सकती है, यह ऐसा भी भय-मिश्रित उदासी का भाव मन मे जगा सकती है, अपनी तरफ रहते हुए कभी ऐसा सोच भी तो नही सका। उस चॉदनी की रूप-रेखा रखने की कोशिश भी न करूँगा, वैसे सौन्दर्य लोक का जब तक प्रत्यक्ष परिचय नही होता, तब तक कानो से सुन कर या पढ कर उसकी हर्गिज उपलब्धि नही हो सकती—होना मुमकिन नही। केवल वैसा ही मुक्त आकाश, वैसी ही निस्तब्धता, वैसा ही सूनापन, वैसी ही दिगत विसर्पित वन-पक्ति के बीच

वैसा रूप-लोक रूपायित हो सकता है। जिदगी मे एक बार भी वैसी चॉदनी रात देखनी चाहिए, जिसने वह रात नही देखी, ईश्वर की सृष्टि का एक अपूरब रूप उसके लिए सदा-सदा को अनचीन्हा ही रह गया समझिए !

[पाँच]

एक दिन डोह आजमाबाद के सर्वे-कैंप से लौट रहा था। साँझ का समय था। जगल मे राह भुला बैठा। जगली जमीन हर जगह समतल नही थी। कही झाडी-झुरमुटो से ढके बलुआही टीले, फिर दो टीलो के बीचो-बीच छोटी-सी उपत्यका। मगर जगल तमाम एक-सा। टीले पर चढ कर मैंने चारो तरफ निगाह दौडाई, किसी तरह कचहरी के महावीरी झडे की रोशनी दिखाई पड जाय, लेकिन रोशनी का कही नाम-निशान तक नही—सिर्फ ऊँचे-नीचे टीले और झाऊ-कसाल के जगल—बीच-बीच मे सखुए और आसान के पेड। दो-ढाई घटे तक चक्कर काट कर भी जब कोई कूल-किनारा न मिल सका, तो याद आया, तारो से ही क्यो न मदद ली जाय ? गरमी के दिन, कालपुरुष ठीक माथे पर उगा था। समझ नही सका, आखिर वह किधर से माथे की सीध मे आया ! सतभैया को भी खोज कर न निकाल सका। लाचार, ग्रहो से दिशा-निर्णय की उम्मीद छोड कर घोडे को उसी की मर्जी पर छोड दिया। कोई दो मील चलने पर जगल मे एक जगह रोशनी दिखाई दी। उसी रोशनी को देख कर चलते-चलते वहाँ पहुँचा। लगभग बीस वर्गहाथ जमीन साफ-सुथरी कर ली गई थी। उसी मे खडी थी घास-फूस की एक झुकी-झुकी-सी झोपडी। गरमी के दिन थे, फिर भी सामने आग जल रही थी। आग से थोडा हटकर एक आदमी बैठा-बैठा कुछ कर रहा था।

घोडे के पैरो की आहट से चौक कर उसने झट से पूछा—"कौन ?" और तुरन्त मुझे पहचान कर वह पास आया। बडी खातिर से मुझे घोड़े पर से उतारा।

थक गया था। लगभग छै घटे से घोड़े की पीठ पर ही था। सर्वे-कैम्प

मे भी अमीन के पीछे-पीछे काफी चक्कर काटना पडा था। उसने घास की जो चटाई डाल दी, उसी पर बैठ गया। उसका नाम पूछा। बोला—"मेरा नाम गोनू महतो है—जात का गगोता हूँ।" इतने दिन इस इलाके मे रहा, मुझे पता था कि इधर के गगोतो की जीविका खेती और पशुपालन है। मगर इस घने जगल के बीच यह शख्स अकेला क्या करता है?

पूछा—"तुम यहाँ क्या करते हो? घर कहाँ है तुम्हारा?"

—"भैसे चराता हूँ सरकार। घर यहाँ से दस कोस पडता है, उत्तर। धरमपुर-लछमिनियाँ टोला।"

—"भैसे तुम्हारी अपनी है? कितनी होगी?"

बडे गर्व से वह बोला—"पाच है हुजूर!"

"पाँच भैसे?" मै तो दग रह गया। महज पाँच भैसे लेकर यह आदमी दस कोस की दूरी से आकर इस घने जगल मे झोपडा बाँध कर रह रहा है, चरी की मालगुजारी दे रहा है! इस छोटी-सी झोपडी मे इसका समय गुजर कैसे जाता है? मै ठहरा कलकत्ता का नौजवान, थियेटर-बायस्कोप के वातावरण मे पला। यह बात मेरी समझ मे न आ सकी।

मगर इस इलाके मे जब और दिन बीते, जानकारी की पूँजी और बढी, तो बात समझ मे आई कि गोनू महतो आखिर वैसे क्यो रहता है। असल मे उसके जीवन की धारणा ही ऐसी थी, इसके सिवाय इसका और कोई कारण नही। पाँच भैसे है, तो उन्हे चराना ही पडेगा और जब चराना पडेगा, तब जगल मे झोपडा बाँध कर अकेला रहना ही पडेगा। निहायत मामूली-सी बात, इसमे ताज्जुब है भी क्या?

सखुए के पत्ते की एक चुट्टी (चुरुट) बना कर मुझे देते हुए गोनू ने मेरा स्वागत किया। आग की आभा मे मैने उसका चेहरा देखा। खासा चौडा कपाल, ऊँची नाक, काला रग—चेहरे पर सरलता, निगाह शात। उमर साठ से ज्यादा होगी। सिर का एक भी बाल काला नही रह गया था। मगर बदन इतना गठा हुआ कि उस उमर मे भी एक-एक नस गिन लीजिए।

आग मे उसने और कुछ लकडियाँ डाल दी। खुद भी एक चुट्टी सुल-

गाई। आग की आभा से झोपडे के अन्दर कभी-कभी पीतल का एकाध बर्त्तन झकमका उठता था। आग के चारो ओर गाढे अँधेरे का घेरा, घना जगल। मैंने कहा—"क्यो गोनू, इस घने जगल मे अकेले रहते हो, जीव-जन्तु का डर नही लगता ?" वह बोला—"डरने से क्या हम गरीबो का गुजारा है हुजूर, यही रोजी ठहरी। उस दिन रात को झोपडे के पीछे बाघ आ निकला। भैस के दो बच्चे है। उन्ही पर उसकी नजर है। आहट पाते ही जग पडा। कनस्तर पीटता रहा, मशाल जलाई, चीख-पुकार मचाई, फिर तमाम रात सो नही सका हुजूर। जाडो मे तो ऐसा होना ही रहता है।"

—"खाते आखिर क्या हो यहाँ ? दूकान तो है नही—चीजे कहाँ मिलती है ? चावल, दाल—"

—"चीजे खरीदने को अपने पल्ले पैसे कहाँ है हुजूर और हमे क्या बगाली बाबुओ की तरह खाने को रोज भात नसीब होता है ? पास ही जगल के पिछवाडे दो बीघा जमीन है। खेडी उपजती है। जगल मे बथुआ मिल जाता है। खेडी और बथुआ उबाल लेता हूँ, थोडा-सा नमक ऊपर से। यही अपना खाना है। फागुन मे जगल में गुरमी होती है, नमक से कच्ची गुरमी मजे की लगती है। लत्तड होती है उसकी-छोटा-छोटा फल। इधर के गरीब लोग महीना भर तो गुरमी खाकर ही काट देते है। गुरमी के लिए दुनिया-भर के लोग यहाँ आते रहते है।"

पूछा—"आखिर रोज-रोज खेडी और बथुआ उबाल कर खाना अच्छा लगता है ?"

—"और दूसरा उपाय ही क्या है हुजूर ? दोनो जून भात कहाँ से नसीब हो ? इलाके-भर मे केवल दो ही आदमी दोनो जून भात खाते है—रासबिहारीसिंह और नन्दलाल पाडेय। तमाम दिन भैसो के पीछे दौडता हूँ, शाम को लौटते-लौटते इतनी तेज भूख लग जाती है कि जो भी मिल जाता है, वही अच्छा लगता है।"

मैने पूछा—"तुमने कलकत्ता शहर देखा है गोनू ?"

—"जी नही हुजूर, सुना है। भागलपुर एक बार गया हूँ—बडा भारी शहर है। हवागाडी देखी। अचरज की चीज है हुजूर। न घोडा, न कुछ और मजे मे चलती है।"

इस उम्र मे उसकी ऐसी तन्दुरुस्ती देख कर ताज्जुब हुआ। उसमे हिम्मत भी है, यह भी मानना पडा।

गिनी-चुनी ये भैसे ही गोनू के गुजारे का एकमात्र सहारा थी। जगल मे दूध तो खैर कहाँ बिकता, वह मक्खन निकाल कर घी गलाता। तीन महीने का घी जमा करके यहा से नौ मील दूर धरमपुर बाजार मे मारवाडियो के हाथ बेच आता। इसके सिवाय खेडी का दो बीघा खेत था। खेडी तो इधर के लगभग सभी गरीबो का प्रधान खाद्य ही ठहरा। गोनू मुझे कचहरी तक पहुँचा गया। मुझे वह इतना अच्छा लगा कि कितनी ही बार साँझ को मै वहाँ गया। झोपडे के सामने आग तापते हुए उससे बाते की। गोनू से उधर की जितनी खोज-खबर मिली, उतनी कोई नही दे सकता।

कितने ही अजीबो-गरीब किस्से गोनू से मैने सुने। उडने वाले साँप की कहानी, जीते पत्थर की कहानी, तुरन्त पैदा होकर चलने वाले लडके की कहानी, और भी न जाने क्या-क्या। जगल के उस निर्जन पारिपार्श्विक मे वे कहानियाँ बडी उपयोगी और रहस्यमय मालूम होती—यो मै जानता हूँ कि अगर कलकत्ता मे उन्हे सुनता, तो वे अनोखी और झूठी लगती। जो भी कहानी जहाँ-कही भी नही रुचती, कहानी का माधुर्य उसकी पृष्ठभूमि और पारिपार्श्वक पर कितना ज्यादा निर्भर करता है, यह कहानी-प्रिय प्रत्येक व्यक्ति जानता है। गोनू के सभी अनुभवो मे से जगली भैसो के देवता टॉडबारो का किस्सा मुझे बडा आश्चर्यजनक लगा।

लेकिन चूँकि उस किस्से का एक अद्भुत उपसहार है, इसलिए उसे यथास्थान कहूँगा। एक बात बताए देता हूँ कि गोनू की ये कहानियाँ रूप-

कथा नही, उसकी अपनी अभिज्ञता थी। गोनू ने जिन्दगी को देखा है, मगर दूसरे ढग से। सारी जिन्दगी जगल मे बिता कर वह जगली प्रकृति का विशेषज्ञ बन गया था। उसकी बाते यो ही उडा देने लायक नही। मुझे यह भी नही लगा कि इतनी बाते गढ कर कहने-जैसी कल्पना-शक्ति उसमे है।

तीसरा परिच्छेद

[एक]

गरमी के दिन आते ही पीरपैंती की तरफ से उडकर बगलो की जमात ने ग्राट साहब के बरगद पर अड्डा जमा दिया। दूर से ऐसा लगता था कि पेड की चोटी सफेद फूलो से लद गई है।

एक रोज मै अधसूखे कास के वन के किनारे मेज लगाकर काम कर रहा था कि मुनेश्वरसिह प्यादे ने आकर कहा—"हुजूर, नन्दलाल ओझा गोलावाला आपसे मिलने आए है।"

जरा ही देर मे, प्राय पचास साल का एक बूढा आदमी मेरे सामने आया और सलाम करके खडा हो गया। मेरे इशारे से वह पास की तिपाई पर बैठ गया। बैठते ही उसने एक रेशमी बटुआ निकाला, फिर बटुए मे से एक बहुत ही छोटा सरौता और दो सुपारियाँ निकाल कर काटने लगा। दोनो हाथो मे कटी सुपारी रखकर आदर से मेरी ओर बढाता हुआ वह बोला—"लीजिए हुजूर।"

इस तरह से सुपारी खाने की मेरी आदत तो नही थी, पर भद्रता के नाते ले ली। पूछा—"आप कहाँ से आ रहे है। क्या काम है?"

उसने जवाब मे बताया—उसका नाम नन्दलाल ओझा है, मैथिल ब्राह्मण। यहाँ से ग्यारह मील दूर जगल के उत्तर-पूरब कोने मे सुगठिया दीयरा मे उसका घर है। काश्तकारी है, कुछ महाजनी भी। अगली पूर्णिमा के दिन मुझे अपने घर भोजन करने का न्योता देने आया है। उसने पूछा—"क्या आप मेरे घर अपने चरणो की धूल देने की कृपा करेगे? यह सौभाग्य पा सकूगा मै?"

ग्यारह मील चल कर न्योता खाने की अपनी इच्छा नही थी, लेकिन

ओझा बुरी तरह पीछे पड गया। लाचार होकर मैंने हामी भर दी। इधर के लोगो के बारे मे कुछ जानकारी पाने का लोभ भी छोडते न बना।

पूर्णिमा के दिन भरी दोपहरी मे कास की झुरमुटो से किसी का हाथी आता हुआ दिखाई पडा। हाथी मेरी कचहरी में आकर रुका। महावत से मालूम हुआ, वह नन्दलाल ओझा का अपना हाथी है। मुझे लिवा लाने के लिए भेजा है।—"इसकी कोई जरूरत तो नहीं थी। अपने घोडे मे मै इससे कम ही समय मे पहुंच सकता था। खैर।"

हाथी से ही रवाना हुआ। हरे-भरे वन का सारा मेरे पैरो तले और आकाश मानो मेरे माथे से आ लगा। दूर-दूर तक फली गिरिमाला ने इस वनभूमि को घेर कर जैसे किसी मायालोक की रचना की हो ओर मैं उसी मायालोक का अधिवासी होऊँ—स्वर्ग का देवता। कितनी ही मेघमालाओ के नीचे के श्यामल भूमि-खडो पर के नील वायु-मडल का पार करता हुआ मेरा यह अदृश्य आवागमन!

रास्ते मे चमटा की खाई मिली। सर्दियो का अन्त हो रहा था, फिर भी सिल्ली ओर बत्तखो के झुडो से खाई भरी थी। जरा और गरमी पडी नही कि ये उड भागे। जगह-जगह गरीब बस्तिया। कॉटो से घिरे तम्बाकू के खेत और झोपडे।

हाथी आखिर मुगठिया मे पहुँचा। मैंने देखा—मेरे स्वागत में रास्ते के दोनो ओर कतार बाँधे लोग खडे है। गाव मे घुसते ही थोडी दूर पर नन्दलाल का घर था।

आठ-दस घर अलग-अलग एक बहुत बडे ऑगन से सम्बद्ध। मै घर मे दाखिल हुआ कि अचानक बन्दूक की दो आवाजे हुई। मै चौक-सा गया। इतने मे सामने आकर नन्दलाल ने मेरा स्वागत किया। अन्दर ले जाकर एक बरामदे मे कुर्सी पर मुझे बिठाया। कुर्सी सीसम की लकडी और गॉव के ही कारीगर के हाथ की बनी थी। इसके बाद दस-ग्यारह साल की एक लडकी हाथ मे थाली लिए मेरे सामने आ खडी हुई—थाली मे कई तो थे पान के पत्ते, कई समूची सुपारियाँ, मधुपर्क के-से एक छोटे कटोरे मे जरा-

सा इत्र, दो-चार सूखे खजूर , इनका क्या करना होता है, यह मुझे मालूम न था। मै अनाडी जैसा हँसा और अँगुली की कोर डुबा कर केवल जरा-सा इत्र-भर लेकर रह गया। उस बच्ची से दो मीठी बाते की। वह थाली वही रखकर चली गई।

उसके बाद आई खाने की बारी। मैने यह सोचा भी नही था कि नन्द-लाल ने खाने का ऐसा जम कर इन्तजाम किया है। बैठने के लिए लकडी का एक बहुत बडा पीढा। उसके सामने आई एक इतनी बडी पीतल की थाली, जैसी कि हमारी तरफ पूजा का प्रसाद बाँटने के लिए होती है। थाली मे परसी गई हाथी के कान जितनी बडी पूरी, बथुआ का साग, खीरे का रायता, कच्ची इमली की तरकारी, भैस के दूध का दही, पेडे। खाने की चीजो का ऐसा अनोखा मेल मैने और कही नही देखा था। आँगन मे मुझे देखने वालो की भीड लग गई। सब मुझे कुछ इस तरह से ताकने लगे, मानो मै कोई अनोखा जीव हूँ। पता चला, ये सब लोग नन्दलाल की रैयत है।

साँझ से पहले जब मै चलने लगा, तो नन्दलाल ने एक छोटी-सी थैली मुझे थमाकर कहा—"हुजूर का नजराना।" मै हैरत मे आ गया। थैली मे काफी रुपए थे। पचास से कम न होगे। नजराने मे कोई किसी को इतने रुपये क्यो दे भला, फिर नन्दलाल तो अपनी रैयत भी न था। भेट लौटा देना भी शायद अपमान समझा जाता हो। सो मैने थैली मे से एक रुपया निकाल लिया और थैली उसे देते हुए बोला—"इन रुपयो के बच्चो को पेडे ला देना।"

नन्दलाल थैली लेने को किसी भी तरह राजी नही था। मैने उसकी सारी अनसुनी कर दी और बाहर आकर हाथी पर सवार हो गया।

दूसरे ही दिन नदलाल मेरी कचहरी मे हाजिर ! साथ मे पहुँचा उसका बडा लडका। मैने उनकी बहुत आव-भगत की , लेकिन वे खाने को हर्गिज राजी न हुए। पता चला कि दूसरे ब्राह्मण की बनाई रसोई मैथिल ब्राह्मण नही खाते। इधर-उधर की बहुतेरी बाते हुई। अत मे नदलाल ने अपनी सुनाई कि उसका यह लडका फुलकिया बैहार की तहसीलदारी

का उम्मीदवार है। कृपा करके इसकी बहाली करनी पडेगी। मैंने अचरज से कहा—"यहाँ का तहसीलदार तो पहले ही से है। वह जगह खाली कहाँ है ?" जवाब मे नदलाल ने कनखी मारकर कहा—"मालिक तो आप है हुजूर, आप चाहे तो क्या नही हो सकता ?"

मुझे और भी अचरज हुआ—"कहते क्या है आप ? बेचारा तहसील-दार अच्छा ही काम कर रहा है, उसे आखिर अलग किस कसूर पर करूँ।"

नदलाल बोला—"हुक्म फरमाएँ, हुजूर को पान खाने के लिए कितने रुपए पेश करूँ। आज ही साँझ को रुपए हाजिर हो जायँगे। मगर यह तहसील-दारी हुजूर मेरे बेटे को देनी ही पडेगी। कितने रुपए हाजिर करे—पाँच सौ ?"

अब मेरी समझ मे आया कि नदलाल के न्योते का वास्तव मे मतलब क्या था। अगर मै यह जानता होता कि इधर के लोग ऐसे फरेबी है, तो हरगिज भी न जाता। यह तो अच्छी मुसीबत मोल ली मैंने !

मैंने नदलाल को साफ-साफ ही कहकर रुखसत किया। मगर यह भी मै समझ गया कि वह अभी ना-उम्मीद नही हुआ है।

और एक दिन देखा कि जगल के किनारे खडा हुआ नन्दलाल मेरी राह देख रहा है।

किस बुरी साइत मे इस कबख्त का न्योता खाने गया था। अगर मालूम होता कि दो पूरियाँ खिलाकर यह इस कदर मेरी नाक मे दम कर देगा, तो उसकी छाया भी न छूता !

मीठा हँसकर वह बोला—"नमस्ते हुजूर !"

—"हुँ। क्या खबर है ?"

—"खबर क्या हुजूर से छिपी है। मै हुजूर को बारह सौ रुपए नकद देने को तैयार हूँ। मे बेटे को उस जगह पर बिठा दे।"

—"पागल हुए हो नदलाल। अरे, बहाल करने का मालिक मै थोडे ही हूँ। जिनकी जमीदारी है, उनके पास दरखास्त भेज सकते हो। फिर

बात यह भी है कि बहरहाल उस जगह पर जो काम कर रहा है, उसे किस कसूर पर छुडाया जाय ? "

मैने और ज्यादा कुछ न कहा—" घोडे को एड लगाई। अपने ऐसे रूखे व्यवहार से आखिर नदलाल को मैने अपना और जमीदारी का कट्टर दुश्मन बना लिया। तब भी मै नही जान सका था कि वह कितना खौफनाक आदमी है। मुझे अच्छी तरह इसका फल भोगना पडा।

[दो]

उन्नीस मील दूर डाकघर से डाक लाना यहाँ की एक निहायत जरूरी घटना थी। इतनी दूर रोज-रोज आदमी भेज सकना तो सभव नही था, सो हफ्ते मे दो बार डाक के लिए आदमी जाता था। मध्य एशिया की अपार और भयावनी मरुभूमि के तबू मे बैठे मशहूर पर्यटक सेवेन हेडिन भी शायद ऐसी ही बेसब्री से डाक का इतजार करते होगे। यहाँ आए आठ-नौ महीने हो गए। इस सूने वनप्रातर मे सूर्यास्त, चद्रोदय, चाँदनी और नीलगायो की दौड को देखते हुए जिस बाहरी दुनिया से अपना सारा सबध ही चुक गया था, डाक से आनेवाली कुछेक चिट्ठियो से कुछ हद तक वह सयोग स्थापित होता था।

जवाहरसिह डाक लाने गया था। आज दोपहर को उसे डाक लेकर लौटना था। मै बार-बार अदर-बाहर कर रहा था। मेरी और उस बगाली मुहर्रिर बाबू की निगाह दूर जगल की ओर अटकी हुई थी। यहाँ से कोई डेढ मील पर एक टेकरी थी। राह उसी पर से गई थी। उस पर पहुचते ही जवाहरसिह साफ दिखाई पडता था।

दोपहर हो गई, मगर उसका कही भी पता नही। मै कभी अदर जाता, कभी बाहर चहलकदमी करता। यहाँ काम कुछ कम था नही। अलग-अलग अमीनो का विवरण पढना, रोज के ोकड पर हस्ताक्षर करना, सदर से आई हुई चिट्ठियो का जवाब देना, पटवारी और तहसीलदार की वसूली का हिसाब, आई हुई दरखास्तो पर कार्रवाइयाँ, मुँगेर, पूर्णियाँ, भागलपुर

मे जो मामले लगे थे, उनके बारे मे वकील और कारिदो के ब्योरे देखना और जवाब देना—और भी बहुत-से बडे-छोटे काम। रोज का काम रोज निबटा न लिया जाता, तो इतने काम जमा हो जाते कि जान पर आ बनती। और डाक के साथ तो ढेरो नई जिम्मेदारियाँ आ जाती—तरह-तरह के खत, तरह-तरह के हुक्म—यहाँ जाइए, उनसे मिलकर अमुक जगह बदो-वस्त कीजिए इत्यादि-इत्यादि।

दिन के कोई तीन बजे दूर पर जवाहरसिह की सफेद पगडी चमकती दिखाई पडी। बगाली मुहर्रिर बाबू ने आवाज दी—"मैनेजर साहब, आइए, डाक-प्यादा आ रहा है। वह, वहाँ—"

मै दफ्तर से बाहर निकला। इतने मे जवाहरसिह टेकरी से उतर कर फिर जगल मे धँस पडा था। मैने ऑपेरा-ग्लास मंगवाकर गौर से देखा, जगल की आड-ओट मे वह आता दिखाई दिया। दफ्तर मे फिर जी नही लगा। उफ, कैसा बेसब्र इतजार है! जो चीज जितनी ही मुश्किल से मिलनेवाली होती है, मनुष्य के लिए वह उतनी ही ज्यादा कीमती होती है। यह जरूर है कि वह कीमत मनुष्य की अपनी ऑकी हुई, कृत्रिम होती है, जिस चीज को हम चाहते है, उसकी अच्छाई-बुराई से हकीकत मे उसका कोई लगाव नही होता। मगर दुनिया की ज्यादा-से-ज्यादा चीजो पर हम एक नकली कीमत थोपकर उसे बडी-छोटी समझने के आदी है।

कचहरी के सामने ही बलुआही जमीन के उस पार आ धमका जवाहर-सिह। मै कुर्सी पर से उठ गया। मुहर्रिर साहब आगे बढ गए। जवाहर ने उन्हे सलाम किया और जेब मे से चिट्ठियाँ निकालकर उन्हे दी।

दो-एक पत्र मेरे अपने भी थे—बहुत ही जाने-पहचाने अक्षर। उन्हें पढते-पढते अपने चारो ओर के जगल को ताक कर मै अवाक् रह गया। यह मै हूँ कहाँ! जिदगी मे कभी स्वप्न में भी नही सोचा था कि मै कभी ऐसी जगह भी रहूँगा, दिन-पर-दिन, महीने-पर-महीने गुजारूँगा। एक विदेशी पत्र का ग्राहक बन गया था। वह पत्र आज की डाक मे आया था। ऊपर ही लिखा था—'हवाई डाक से'। जहाँ मारे आदमी के तिल धरने

की जगह नही, ऐसे कलकत्ता शहर मे बैठकर क्या समझा जा सकता है कि बीसवी सदी के इस वैज्ञानिक आविष्कार की सहूलियत क्या है! यहाँ, इस सुनसान बियाबान मे बहुत कुछ सोचने और सोचकर दग रह जाने की गुजाइश है—यहाँ की पारिपार्श्विक अवस्था वैसी अनुभूति ला देती है।

अगर सच कहूँ, तो कहूँगा कि जिदगी मे सोचने का सबक यही आकर पढा है। मन मे जाने कितनी ही बाते जगती, कितनी पुरानी बाते याद आती—अपने मन को इस तरह से उपभोग करने का मौका और कभी नही मिला। यहाँ हर असुविधा के बावजूद यह आनद नशे की तरह दिन-दिन मुझ पर सवार होता जा रहा था।

और सच पूछिए तो मै प्रशात महासागर के किसी जन-हीन टापू मे निर्वासित तो नही था! शायद बत्तीस मील पर रेल का स्टेशन था। चाहता तो महज घटे भर मे पूर्णिया और तीन घटे मे मुँगेर पहुँच सकता था, लेकिन एक तो स्टेशन तक जाना ही एक कठिन काम था, फिर वह कठिनाई झेली भी जा सकती, बशर्ते कि पूर्णियाँ या मुगेर जाकर कोई फायदा होता। जाकर लाभ भी क्या था, न वहाँ कोई मुझे पहचानता था, न मै किसी को जानता था। जाकर भी क्या होगा?

कलकत्ता से आने के बाद किताबो और साथियो की कमी बेतरह खटकती रही। कितनी ही बार सोचा कि नही, यहाँ रहना अपने बस की बात नही। अपने लिए तो सर्वस्व कलकत्ता ही है। मुगेर और पूर्णियाँ मे अपना पुरसाँहाल ही कौन है, जिसके पास जाऊँ? लेकिन सदर दफ्तर की इजाजत के बिना कलकत्ता जा नही सकता था, फिर खर्च इतना ज्यादा था कि सिर्फ दो-चार दिन के लिए जाना पुसाता नही था।

[तीन]

दुख-सुख से कई महीने गुजर जाने के बाद चैत खत्म होते-होते एक ऐसी घटना का सूत्रपात हुआ, जो मेरी अभिज्ञता मे कभी थी ही नही।

पूस मे नाम-मात्र की बारिश हुई थी। उसके बाद ही से अनावृष्टि के आसार। माघ मे पानी नही पडा, फागुन मे नही, चैत मे नही, वैशाख मे नही। ज्येष्ठ ही जैसी पडी शिद्दत की गरमी, वैसा ही आया घोर जल-कष्ट।

केवल गरमी और जलकष्ट कहने से उस विभीषिका के प्राकृतिक विपर्यय का स्वरूप नही समझाया जा सकता। उत्तर मे आजमाबाद से दक्खिन मे किसनपुर तक, पूरब मे फुलकिया बैहार और नवटोलिया से लेकर पश्चिम मे मुगेर जिले की सरहद तक—सारे जगल मे जहाँ-जहाँ भी खाई, खदक, कुड थे, सब सूख गए। कुआँ खोदने से भी पानी नही मिलता था। बालू मे चुँआडी खोदने पर थोडा-बहुत पानी मिलता भी था , पर एक डोल पानी जमने मे घटा भर से ज्यादा लग जाता। चारो ओर हाहाकार मच गया। पूरब मे कोसी ही एकमात्र भरोसा थी. वह भी हमारे इलाके की पूरबी हद से सात-आठ मील पर थी—मशहूर मोहनपुरा रिजर्व फॉरेस्ट के उस पार। अपनी जमीदारी और मोहनपुरा होकर नेपाल की तराई से एक पहाडी नदी बहती थी, लेकिन इस समय बालू और चट्टानो मे उसके चरणचिह्न ही ढँके पडे थे। बालू खोदकर जो थोडा-सा पानी मिलता, उसी के लोभ से कितनी दूर-दूर के गाँवो से घडा लिये औरते जाती और तमाम दोपहर बालू-कीचड से माथा कूटकर आधा घडा कदोड पानी लिये घर लौटती।

किंतु यह पहाडी नदी, मिद्दी, हमारे किसी काम नही आती। बहुत दूर पडती थी। कचहरी मे पक्का बँधा कोई बडा कुआँ नही था। जो छोटा-सा कुआँ था भी, उससे पीने भर का पानी जुटा सकना एक समस्या हो उठी। महज तीन डोल पानी इकट्ठा होते-होते सबेरे से दोपहर हो जाती।

दोपहर मे बाहर खडे होकर ताँबे से तपे और आग उगलनेवाले आसमान तथा अधसूखे झाऊ और घास के जगल की ओर देखने मे डर लगता। दिशाएँ जैसे धू-धू कर जल रही हो, बीच-बीच मे लहकती आग की लपटो से गरम हवा के झोके बदन को झुलसा देते। सूरज की ऐसी शकल, दोपहर

की धूप का ऐसा भयानक रुद्र-रूप न तो मैंने कभी देखा था और न इसकी कल्पना ही की थी। किसी-किसी रोज पश्चिम से बालू की आँधी उठती। इन इलाको मे चैत-वैशाख पछुवा हवा का समय है। कचहरी से सौ गज की दूरी की चीजे भी बालू और धूल के बादल से दिखाई नही पडती।

रामधनियाँ टहलू प्राय आकर बताता—"हुजूर, कुएँ मे पानी नही है। किसी-किसी दिन तो वह दिन मे घटाभर उपछ-उपछ कर मेरे स्नान करने के लिए आधी बालटी गला हुआ कीचड ही ला देता। उस भयानक गरमी मे उन दिनो वही अमूल्य था।

एक दिन दोपहर के बाद मै कचहरी के पिछवाडे एक बहेडे के पेड की छाया मे खडा था। सहसा चारो तरफ का नजारा देखकर मन मे आया, दोपहर की ऐसी शक्ल कभी देखी तो नही है, यहाँ से जाने के बाद कभी देख भी न पाऊँगा। बगाल की दोपहरी जनम-जनम से देखता रहा हूँ, जेठ की जलती हुई दोपहरी बहुत देखी, लेकिन उसकी ऐसी रुद्र-मूर्ति कहाँ! मुझे इस भीम-भैरव रूप ने मोह लिया। सूरज की तरफ ताका, जैसे एक विराट् आग का कुडा कैलसियम जल रहा है, हाइड्रोजन जल रहा है, निकेल और कोबाल्ट जल रहा है। जानी-अजानी सैकडो प्रकार की गैसे और धातु एक करोड योजन व्यास की उस भट्ठी मे एक साथ धधक रही है और उसी की धू-धू करती लपटे असीम शून्य के ईथर की परतो को पार करके फुलकिया बैहार और लोधई टोले की दूर तक फैली तृणभूमि को छू रही है। उन लपटो ने हरियाली के रेशे-रेशे से रस को सोख लिया है और दिगत को झुलसाकर नाश का ताडव नाचना शुरू कर दिया है। दूर तक आँखे दौडाई, प्रातर मे तमाम खेल रही थी तापतरगे और ताप से घिर आई थी। ऊपर-ऊपर धुधले कुहरे की परत। गरमी की दोपहरी मे यहाँ मैंने नीला आसमान क्यो नही देखा, देखा, ताम्राभ, मटमैला। एक भी गिद्ध या चील नही, चिडियाँ इलाके को छोडकर और कही चली गई है। इस दोपहर का कैसा अनोखा सौदर्य निखर आया है! तीखे उत्ताप की उपेक्षा करके मै बहेडे के नीचे कुछ देर तक खडा रहा। सहारा की मरुभूमि मैंने नही देखी सेवेन हेडिन का

टकला-मकान रेगिस्तान नही देखा, गोवि नही देखी, मगर यहाँ दोपहर के इस रुद्र-भैरव रूप मे उन सभी जगहो की धुंधली झाँकी अवश्य मिल गई।

कचहरी से तीन मील पर पेड-पौधो की सघनता से घिरे एक कुड मे कुछ पानी था। सुना था, पिछले साल बरसात मे उसमे मछलियाँ खूब हुई थी। कुड मे गहराई थी। इसीलिए इस सूखे मौसम मे भी वह एकबारगी सूखा नही था। लेकिन उस कुड का पानी किसी के काम नही आता था। एक तो वहाँ से बडी दूर तक कही आबादी नही थी, दूसरे पानी तक पहुँचने मे बडी दलदल थी, पाँव रखिए कि कमर तक धँस जाय। घडा-भर कर किनारे पर लौट आने की उम्मीद ही न थी। एक वजह और भी थी कि उसका पानी अच्छा नही था, नहाने-पीने के बिलकुल योग्य नही। पानी मे क्या कुछ मिला था, पता नही , पर उसमे मे एक अजीब-सी बू आती थी।

एक दिन जब पछुआ के हू-हू करनेवाले झोके धीमे पडे और ताप कम हो आया, तो मै घोडे पर उस कुड के पास पहुँचा। पीछे ग्राट साहब के उस बडे बरगद की ओट मे सूरज डूब रहा था। कचहरी का थोडा-सा पानी बच जायगा, यह सोचकर मैने घोडे को वहाँ पानी पिलाना चाहा। जितनी ही दलदल चाहे हो, पानी पीकर घोडा जरूर निकल आयगा। सो मै झाडियाँ पार करके कुड के करीब गया। कुड के किनारे एक अद्भुत दृश्य नजर आया। कुड के चारो-तरफ आठ-दस छोटे-बडे साँप और तीन बडे-बडे भैसे एक साथ पानी पी रहे थे। साँप सभी विषैले थे, करैत और शखचित्ते, जो आम तौर पर इधर पाए जाते है।

ऐसे भैसे मैने और कभी नही देखे। बडे-बडे सीग, बदन मे लबे रोएँ और प्रकाड शरीर। पास मे न कोई बस्ती थी, न बथाना। फिर ये भैसे आए कहाँ से, कुछ समझ नही सका। सोचा—हो सकता है चरी की मालगुजारी न देनी पडे, इस नीयत से चोरी-चोरी किसी ने कही आस-पास बथान रक्खा हो शायद! लौटकर कचहरी के पास पहुँचा कि मुनेश्वरसिंह से भेद हो

गई। उससे जब इस सम्बन्ध मे पूछा तो वह चौक उठा—"हनुमानजी की कृपा हुजूर कि सही सलामत लौट आए। वे पालनू नही, जगली भैंसे थे हुजूर, खूँखार जगली भैसे! मोहनपुरा के जगल से पानी की तलाश मे आ गए होगे। वहाँ कही पानी नही है।"

कचहरी मे तुरत ही यह बात फैल गई। एक स्वर मे सब ने यही कहा—"भाग्य था कि बच गए हुजूर! बाघ से तो फिर भी बच सकते है आप, मगर जगली भैसे के हाथो पडने से खैर नही। और ऐसी साँझ को उस सुनसान मे अगर भैसे टूट पडते, तो घोडे को भगाकर आप उनसे हर्गिज नही निकल सकते थे।"

उसके बाद से तो वह कुड जगली जानवरो के पानी पीने का एक प्रधान अड्डा बन गया। सूखा जितना ही बढता गया, धूप की बढती हुई प्रखरता से दावदाह जितनी ही प्रचड होती गई, क्रमश खबर मिलने लगी कि उस कुड मे लोगो ने बाघ को पानी पीते देखा, जगली भैसे को पानी पीते देखा, हिरनो के झुड को पानी पीते देखा—नीलगाय और जगली सूअरो की तो बात ही क्या, ये दोनो जानवर तो यहाँ बहुत ही ज्यादा थे। एक दिन मै खुद घोडे पर सवार होकर चाँदनी रात मे वहाँ शिकार को गया, साथ मे तीन-चार प्यादे, दो-तीन बदूके भी थी। उस रात को जो दृश्य मैने वहाँ देखा, वह जिदगी भर नही भुलाया जा सकता। उसे समझने के लिए कल्पना मे एक निर्जन चाँदनी रात और दूर तक फैले वन-प्रातर की तसवीर आँक लेने की जरूरत है! जरूरत है कल्पना करने की—सारी वन-भूमि पर थमकते हुए एक अजीब सन्नाटे की। यद्यपि बिना अनुभव के वैसे सन्नाटे की कल्पना ही असभव है!

अधसूखे कसाल की गध से सूखी बयार भर गई थी। बस्ती से बहुत दूर निकल आया था, दिशा का ज्ञान खो बैठा था।

कुड मे एक तरफ दो नीलगाये और एक तरफ दो हायना चुपचाप पानी पी रहे थे; कभी नीलगाये हायना को ताक लेती थी, कभी हायना नील-गायों को। दोनो के बीच नीलगाय का दो-तीन महीने का एक नन्हा-सा

बच्चा खडा था। ऐसा करुणाजनक दृश्य मैंने कभी नही देखा—देखकर मुझे उन प्यास से आकुल निरीह जानवरो पर गोली चलाने की इच्छा नही हुई।

वैशाख बीत गया। बूद भर पानी का ठिकाना नही। एक नई मुसीबत आई। इस इतने बडे वन-प्रातर मे अक्सर राही भटक जाया करते थे। अब वैसे भटके हुओ की जान जाने की नौबत आ गई, इसलिए कि आस-पास कही पानी न था। फुलकिया बैहार से ग्राट साहब के बरगद तक की विशाल वन-भूमि मे कही बूँद-भर भी पानी मिलने की गुजाइश नही। एकाध जगह सूखे कुड थे भी, तो राह-भूले पथिको के लिए उन्हे ढूँढ निकालना आसान न था। एक रोज की घटना सुनाऊँ।

[चार]

दिन के चार बजे थे। गरमी के मारे किसी काम मे जी नही लग रहा था। न जाने कौन-सी किताब लेकर पढ रहा था कि रामबिरिजसिह ने आकर इत्तला दी—"हुजूर, कचहरी के पश्चिम वाले उस टीले पर एक अजीब पागल-सा आदमी नज़र आ रहा है, वह हाथ-पाँव के इशारे से कुछ बता रहा है।" मै बाहर निकला तो देखा, सचमुच ही टीले पर कोई खडा था। ऐसा लगा, शराबी की तरह झूमता-झामता वह इसी तरफ आ रहा है। कचहरी के जितने भी लोग थे, सब मुँह बाए उसी तरफ देख रहे थे। मैंने उसे लिवा लाने के लिए दो प्यादो को भेज दिया।

प्यादे उसे ले आए। उसके बदन पर कोई कपडा नही था। सिर्फ एक साफ धोती पहने था, चेहरा अच्छा था, रँग गोरा, लेकिन उसकी शकल बडी भयानक हो गई थी, गाल के दोनो किनारो से फेन छूट रहा था, दोनो आँखे गुडहल के फूल-जैसी गहरी लाल थी, और निगाह पागल-जैसी थी। बरामदे पर एक डोल मे पानी था—नजर पडते ही वह पागल की तरह उस पर टूट पडा। मुनेश्वरसिह ने लपककर डोल को वहाँ से हटा लिया। उस आदमी को बिठाकर उसका मुँह खुलवाकर देखा, उसकी जीभ फूलकर

बडी घिनौनी-सी हो गई थी। बडे कष्ट से उसकी जीभ को एक तरफ हटाकर बूँद-बूँद पानी उसके मुँह मे टपकाया गया। आध घटे मे वह कुछ होश मे आया। नीबू का रस मिलाकर एक गिलास गरम पानी उसे पिलाया गया। धीरे-धीरे घटे भर मे वह चगा हो गया। पता चला, घर उसका पटना है। लाह की खेती करने के इरादे से वह बेर के जगल की खोज मे इधर आया। पूर्णियाँ से दो दिन पहले ही चला है। आज दोपहर के लगभग वह इस हलके मे आया और भटक गया। जगल का यहाँ एक-जैसा ही सिलसिला है, उसमे राह भूल जाना आसान बात है, खासकर किसी विदेशी के लिए। कल की उस खौफनाक लू-लपट मे वह तमाम दोपहर भटकता फिरा, न किसी आदमी से कही भेट हुई, न कही पानी की एक बूँद नसीब हुई। लाचार होकर रात मे एक पेड के नीचे पड रहा। आज सुबह से फिर उसने चक्कर काटना शुरू किया। ठढे दिमाग से जरा सूरज की तरफ देखकर सोचता तो दिशा का पता चल सकता था, कम-से-कम पूर्णियाँ तक तो लौट ही सकता था, लेकिन डर के मारे किकर्त्तव्यविमूढ होकर कभी इधर, तो कभी उधर टकराता फिरा। दोपहर को देर तक जोर-जोर से चीखता-चिल्लाता रहा कि कोई आदमी मदद को मिल जाय , मगर आदमी कहाँ ? फुलकिया बैहार मे बेर का जगल जिधर था, वहाँ से नवटोलिया, कोई दस-बारह वर्गमील के इलाके मे कही बस्ती नही—सारा वन-प्रातर जन-मानव-हीन और सुनसान। लिहाजा उसकी चीख-पुकार किसी ने नही सुनी, तो ताज्जुब क्या ! उसके इस बेतरह डर जाने की एक वजह और भी थी। उसे लगा कि वह जिन (भूत) के चगुल मे पड गया है। वह जान लिये बिना पिड नही छोडने का। बदन पर उसके कुरता था। आज दोपहर के बाद मारे प्यास के सारे बदन मे ऐसी जलन शुरू हुई कि जाने कहाँ उसे उतार कर फेक दिया। अगर इस कचहरी की महाबीरी ध्वजा अचानक उसे दिखाई नही पड जाती, तो आज शायद वह जिदा भी नही रह पाता।

ऐसी ही गरमी और जल-कष्ट के दिनो मे एक रोज दोपहर को खबर मिली कि मील भर दूर नैऋत कोने के जगल मे आग लग गई है। और

वह आग फैलती हुई इसी तरफ को बढती आ रही है। सुनते ही हम सब लपक कर बाहर निकल पडे। देखा, धुएँ के बादल के साथ आग की लौ लपटे लपलपाती हुई आसमान को उठ रही है! उस दिन पछुआ के झोके भी चल रहे थे। इस तीखी धूप से कसाल और घास तो अधसूखी होकर बारूद बन रही थीं! किसी चिनगी ने छुआ नही कि सारी झाडी लहक उठी। चारो तरफ धुएँ के नीले बादल और आग की लपटे और चट्-चट् की आवाज। हवा के झोको के साथ-साथ आग की आडी-टेढी लपटे डाक-गाडी की तेजी से अपने फूस के इन घरो की तरफ मानो दौडी आ रही हो। सबके चेहरे पर हवाइयाँ उडने लगी। यहाँ रहने मे तो झुलस कर मरना होगा—आग आ ही धमकी!

सोचने का भी समय नही। कचहरी के कागजात, तहवील के रुपए, दस्तावेज, नक्शे—बहुत-कुछ थे। इनके अलावा हमारी निजी चीजे। सर्वस्व जाने की नौबत! सूखे चेहरे लिये डरी हुई आवाज मे प्यादो ने कहा—"आग तो आ गइल हुज़ूर!" मैने कहा—"चीजे निकालना शुरू कर दो, सरकारी रुपए और कागजात सबसे पहले।"

कई आदमी उस जगल का सफाया करने मे जुट पडे, जो आग और कचहरी के बीच मे पडता था। जहाँ तक बन पडे, काटने की कोशिश की जाय। बथान वाले रैयतो ने आग को फैलते जो देखा, सो कचहरी को बचाने के लिए कुछ लोग दौड आए। पछुआ के झोको से ही उन्हे लगा कि कचहरी खतरे मे है।

एक अजीब नज्जारा था! पेड-पौधो को तोड-मरोडकर अपनी जान लिये नीलगाये बेतहाशा भागी जा रही है, सियार सरपट भाग रहे है, कान खडे किए खरगोश दौड रहे है, जगली सूअरो का एक जत्था तो बच्चे-कच्चे के साथ घबराकर कचहरी मे होकर ही निकल गया! बथानो की बँधी भैसे खोल दी गई। प्राण लिये उनकी वह दौड, तोतो का एक दल इकट्ठा होकर माथे के ऊपर से उड भागा, उसके पीछे-पीछे निकला लाल बतखो का जत्था। तोतो की फिर एक जमात, उसी के पीछे कुछ

बिल्ली। हैरत मे आकर रामबिरिजसिह ने कहा—"पानी त कही नै छै ई लाल बत्तख केरो जेरा कहाँ से ऐले हो भाइ रामलगन ?" मुर्हरिर साहब आजिज आ गए। बोले—"अरे बाबा छोड भी। यहाँ जान की पडी है और तुम्हे लाल बत्तख कहाँ से आए, इसकी कैफियत चाहिए!"

बीस-एक मिनट मे आग पास ही आ पहुंची। घटे भर तक दस-पद्रह लोग उससे इस कदर जूझते रहे कि बयान नही किया जा सकता! पानी का नाम नही, हरी डाले और बालू ही उससे लडने के औजार। धूप और आग के ताप से झुलस कर सबकी शक्ल राक्षस-जैसी खौफनाक हो उठी। सारे बदन मे राख और कालिख! हाथ की नसे फूल उठी, कितनो के शरीर मे फोले पड गए। इधर कचहरी के सारे असबाब—बक्से, खाट, आलमारी —निकाल-निकालकर बाहर फेके जा रहे थे। कौन-सी चीज कहाँ गई, यह खबर किसे? मैने मुर्हरिर साहब से कहा—"नकद और दस्तावेज आप अपने जिम्मे रक्खे।"

कोई लगाव न पाकर आग उत्तर दक्खिन होकर पूरब की तरफ दौड गई—किसी तरह से कचहरी तो बच गई। चीजे फिर से उठाकर अदर रक्खी गई। पूरब आसमान को रँग कर वह प्रलयकर आग की लपटे रात-भर धधकती रही और भोर होते-होते मोहनपुरा रिजर्व फॉरेस्ट की सीमा पर जा धमकी।

दो-तीन दिन के बाद खबर मिली कि कारो और कोसी के किनारे दलदल मे आठ-दस जगली भैसे, दो चीते और कई नीलगाये गडी हुई मरी पडी है। आग के भय से ये जान लेकर मोहनपुरा जगल से भागे और इस दुर्गत के शिकार हुए। वैसे कोसी-कारो से रिजर्व फॉरेस्ट आठ-नौ मील पर होगा।

———

चौथा परिच्छेद

[एक]

वैशाख-जेठ बीता, आया आसाढ। आसाढ मे कचहरी की तौजी। लोगो का मुँह इधर मुश्किल से ही देखने को मिलता, सो मेरी यह एक हार्दिक इच्छा थी कि तौजी के दिन न्योत कर काफी लोगो को खिलाऊँगा। आस-पास मे तो गाँव थे नही। मैंने गनौरी तिवारी को भेजकर दूर-दूर की बस्तियो मे न्योता भिजवाया। तौजी के एक दिन पहले से ही आसमान बादलो से घिर गया। टिपटाप पानी भी पडता रहा। तौजी के दिन तो मानो आसमान ही फट पडा। और इधर दोपहर से न्योता खानेवालो का ताँता बँधा। भोज खाने के लोभ से वे बारिश झेलकर भी आने लगे। उन्हे बैठने की जगह देना भी मुश्किल हो गया। बाल-बच्चो को लेकर बहुतेरी औरते भी आ पहुँची थी। औरतो के लिए दफ्तर मे बैठने का इन्तज़ाम कर दिया। मर्द लोग जहाँ-तहाँ बैठ गए।

इधर के लोगो को खिलाने मे कोई झमेला नही। कोई मुल्क इतना भी ग़रीब हो सकता है, मै यह नही जानता था। बगाल बडा ही गरीब है, फिर भी इधर के आम लोगो के मुकाबले मे वहाँ के गरीब-से-गरीब भी सपन्न है। इस मूसलाधार वर्षा मे भीगते हुए ये थोडा-सा माढा, खट्टा दही, गुड और लड्डू खाने को इतनी दूर आए थे। यही चीजे यहाँ आम तौर से भोज मे खिलाई जाती थी।

सुबह से ही आठ-दस साल का एक छोटा लडका बडी मिहनत कर रहा था। चीन्हता नही था। नाम था उसका बिशुआ। पास ही की किसी बस्ती से आया होगा। दस बजे के करीब उसने थोडा-सा जलपान माँगा। भडार का भार था नवटोलिया के पटवारी पर। उसने उसके अँचरे मे थोडा-सा माँढा और नमक दे दिया।

मै पास ही खडा था। वह छोरा जामुन-जैसे रग का था। मुखडा सुन्दर, जैसे काले पत्थर की कृष्णमूर्ति हो ! अपने मोटिया कपडे की कोर फैलाकर उसने जब वह मामूली जलपान लिया, तो उसके चेहरे पर खुशी की जो हँसी फूट उठी, कह नही सकता।

ब्राह्मणो का खिलाना तो किसी तरह निबट गया। तीसरे पहर मैने देखा, अविराम वर्षा मे तीन औरते आँगन मे पत्तल डाले काँप रही है। पत्तल मे माढा था, दही गुड के लिए वे ताक रही थी। मैंने पटवारी को बुलाकर पूछा—"इस तरफ परोस कौन रहा है ? और इन्हे बारिश मे नीचे किसने बैठाया ?"

पटवारी बोला—"हुजूर, ये जात की दुसाध है। इन्हे बरामदे मे बैठाऊँ, तो सारी चीजे फेंक देनी पडेगी, उन चीजो को फिर कोई भी ब्राह्मण, छत्री या गगोता नही खा सकते। और, दूसरी जगह भी कहाँ है ?"

मै खुद भीगता हुआ उन गरीबिन दुसाध औरतो के पास जा खडा हुआ। यह देखकर लोग जल्दी-जल्दी उन्हे परोसने लगे। वह माढा, गुड और पनछा दही एक-एक ने इस कदर खाया कि अपनी आँखो देखे बिना यकीन नही आ सकता। लोगो मे भोज खाने की ऐसी धुन देखकर मैने मन-ही-मन तै किया कि इन दुसाध औरतो को न्योता देकर और किसी दिन खूब अच्छी तरह अच्छा खाना खिला दूँगा। हफ्ते भर बाद दुसाधटोली की उन औरतो को बुलवाकर मैने पूरी, मछली, माँस, खीर, दही, चटनी खूब खिलाया। जिंदगी में ऐसा भोज खाने की उन्होने कल्पना भी न की होगी। उनके विस्मित और आनदित आँख-मुह की वह हँसी बहुत दिनो तक मुझे याद रही। वह छोकरा बिशुआ भी उस भोज मे था।

[दो]

उस दिन घोडे पर सर्वे-कैप से लौट रहा था। रास्ते के जगल मे कसाल की झाडी के पास बैठा एक आदमी उडद का सत्तू सानते हुए मिला। उसके पास कोई बर्त्तन नही था, इसलिए मैले कपडे के छोर मे ही वह उसे सान

रहा था। इतना-इतना सत्तू एक आदमी, चाहे वह कोई हो, कही का हो, कैसे खा सकता है, यह मेरी अकल मे आ सकने लायक बात नही थी। मुझे देखकर अदब से वह खडा हो गया और सलाम करके बोला—"माफ कीजिएगा मैनेजर साहब, जरा नाश्ता कर रहा हूँ हुजूर।"

मुझे यह भी समझ मे नही आया कि कोई एकात मे बैठकर नाश्ता कर रहा हो, तो उसमे माफ करने की बात क्या आती है? मैने कहा—"करो, अपना नाश्ता करो। उठने की कोई जरूरत नही। नाम क्या है तुम्हारा?"

वह बैठा नही। मेरा लिहाज करते हुए खडा-खडा ही बोला—"गरीब का नाम धौताल साहू है हुजूर।"

मुझे लगा, उमर उसकी साठ से ज्यादा ही होगी। दुबला लबा बदन, रग काला, पहनावे मे मैला लट्ठा और मिरजई। पॉव नगा।

उससे मेरा यही पहले-पहल परिचय हुआ।

कचहरी मे पहुँचकर मैने रामजोत पटवारी से पूछा—"धौताल साहू को पहचानते हो तुम?"

रामजोत बोला—"जी हुजूर! धौताल को इलाके मे कौन नही जानता? लखपती है हुजूर—बहुत बडा महाजन। इधर के सभी उसके कर्जदार है। नौगछिया मे घर है।"

पटवारी की बात सुनकर मै आश्चर्य-चकित होग या। लखपती आदमी और एक मैले कपडे मे सत्तू सानकर खाता है! मुझे लगा, पटवारी ने दून की हॉक दी। मगर कचहरी मे जिससे भी पूछा, उसीने यह उत्तर दिया—"धौताल साहू? उसके रुपयो का कोई लेखा-जोखा नही हुजूर।"

बाद मे अपने काम से धौताल साहू कई बार मेरे पास आया। धीरे-धीरे पता चला कि एक अजीब लोकोत्तर चरित्र के आदमी से परिचय हुआ है। देखे बिना यह यकीन ही नही हो सकता कि बीसवी सदी मे भी ऐसा आदमी है।

जैसा कि अदाज था, उसकी उम्र तिरसठ-चौसठ की होगी। क़चहरी

मे पूरब-दक्खिन कोई बारह-तेरह मील दूर नौगछिया मे उसका घर था। इलाके के क्या काश्तकार, जमीदार और क्या खेतिहर-व्यापारी सभी उसके खातक थे। मगर मजे की बात यह थी कि धौताल कर्ज देकर अदायगी के लिए कभी कडा तकाजा नही करता था। कितनो ने उसकी पूँजी डुबाई, यह नही कहा जा सकता। उसके जैसे निरीह और सज्जन आदमी को महाजनी करनी ही नही चाहिए थी, लेकिन वह भी क्या करे, लोगो की आरजू-मिन्नत उससे टालते नही बनती। खास तौर पर उसका यही कहना था कि लोग जब सूद का वायदा करते है, तब व्यवसाय के लिहाज से भी तो कर्ज देना लाजिमी है। एक दिन वह बहुत सारे दस्तावेज कपडे मे बाँध कर मुझसे मिलने आया। बोला—"हुजूर, मिहरबानी करके जरा इन दस्तावेजो को देख दे।"

मैंने छानबीन की। देखा, समय पर नालिश नही किये जाने से कोई आठ दस हजार के दस्तावेज बेकार हो गये थे।

कपडे के दूसरे छोर से उसने कुछ और भी पुराने कागज निकाले—"जरा इन्हे भी देख ले हुजूर। कभी-कभी जी मे आता है, शहर जाकर वकीलो को दिखा दूँ और नालिश कर दूँ। मगर मुकदमा कभी लडा नही, लडना बनता नही। तकाजा करता हूँ—आज दूँगा, कल दूँगा करते-करते बहुतेरे देते ही नही।"

देखा, सारे-के-सारे दस्तावेज बेकार हो गए थे। ये सब भी चार-पाँच हजार से कम के न होगे। भले को सभी धोखा देते है। कहा—"साहूजी, यह महाजनी आपके बस की बात नही। महाजनी तो इधर रासबिहारी-सिह राजपूत-जैसा आदमी ही कर सकता है, जिसके आठ-आठ लठैत है, खुद घोडे पर सवार होकर कर्जदारो के खेतो पर जाकर लठैतो को मुस्तैद कर आता है—जबर्दस्ती फसल पर कब्जा करके पूँजी और सूद अदा करके छोडता है। तुम जैसे भले को लोग बाकी रुपये नही दे सकते। आइन्दा किसी को देना ही नही।"

मगर धौताल को मै समझा ही न सका। वह बोला—"सभी धोखा

नही दिया करते हुजूर। अभी भी चाद-सूरज उगता है, सिर पर दीन-दुनिया का मालिक अभी भी है। और रुपये को सूद पर लगाए बिना गुजारा नहीं हुजूर। यही हमारा पेशा है।"

सूद के लोभ से पूँजी से भी हाथ धो बैठना किस किस्म का रोजगार है, नही जानता। उसने मेरी ही आँखो के आगे उन पन्द्रह-सोलह हजार रुपयो के दस्तावेजो को टुकडे-टुकडे करके फेक दिया। इस तरह से फाड फेका, गोया वे निहायत बेकार कागज हो—बेकार की कोटि मे अब वे आ जरूर गए थे। न तो इसमे उसके हाथ सहमे, न आवाज काँपी।

बोला—"सरसो और रेडी के बीए बेंच कर ये रुपए मैंने जोडे थे, वरना बाप-दादो की विरासत मे तो फूटी पाई भी नही मिली थी। मैंने ही पैसे पैदा किए, मै ही गँवा रहा हूँ। रोजगार मे नफा-नुकसान तो होता ही है।

नफा-नुकसान तो बेशक होता है, मगर ऐसे कितने लोग मिलेगे, जो चेहरे पर शिकन लाए बगैर इतने बडे नुकसान को सह ले, मै यही सोचने लगा। महज एक बात मे मैंने उसकी अमीरी देखी। लाल कपडे के एक बटुए से जब-तब वह एक सरौता और सुपारी निकालता और काटकर खा लेता। मेरी ओर हँसते हुए देखकर बोला—रोज एक छटाँक सुपारी मै खा जाता हूँ हुजूर, सुपारी का बडा लम्बा खर्च है। धन से उदासीनता और बहुत बडे नुकसान की परवाह न करना अगर दार्शनिकता है, तो धौताल साहू-जैसा दार्शनिक कम-से-कम मैंने तो नही देखा।

[तीन]

फुलकिया गाँव से होकर मै जब भी गुजरता, जयपालकुमार के जनेरे के पत्तो से बने घर के सामने से भी गुजरता। जयपाल जाति का भूमिहार ब्राह्मण था।

एक बडे और पुराने पाकर के पेड के नीचे उसका घर था। दुनिया मे वह निपट अकेला था , उमर वाला आदमी, दुबला बदन, माथे पर सफेद

लम्बे बाल। जब भी मै वहाँ से गुजरता, तब ही उसे अपने घर के दरवाजे पर बैठा पाता। तम्बाकू वह नही पीता था। उसे कभी कोई काम करते हुए भी देखा हो , ऐसा याद नही पडता। गीत भी गाते हुए नही सुना। कोई बिल्कुल निठल्ला-सा कैसे बैठा रह सकता है, नही कह सकता। उसे देखकर मुझे बडा ही अचरज और कुतूहल होता। हर बार वहाँ घोडे को रोक कर उससे दो बाते किए बिना मे आगे बढ ही नही सकता।

पूछा—"यो बैठे-बैठे तुम क्या करते हो ?"

—"बस, यो ही बैठा हूँ हुजूर।"

—"उम्र क्या होगी तुम्हारी ?"

—"उम्र का हिसाब तो रक्खा नही हुजूर। यो समझिए कि जिस साल कोसी पर पुल बना, मै भैस चराने लायक हुआ था।"

—"शादी की थी ? बाल-बच्चे हुए थे ?"

—"बीस-पच्चीस साल हुए, स्त्री चल बसी। दो बच्चियाँ थी। वे भी गुजर गई। उसको भी तेरह-चौदह साल हो गए। अब तो बस मै ही हूँ।"

—"अच्छा यह तो कहो, ऐसे जो अकेले बैठे रहते हो, न कही जाते-आते हो, न किसी से बोलते-बतियाते हो, न ही कोई काम करते हो, यह सब तुम्हे अच्छा लगता है ? ऊब नही आती इससे तुम्हे ?"

वह अचरज से मुझे देखकर बोला—"अच्छा क्यो न लगेगा हूजूर ? मजे मे रह लेता हूँ।"

उसकी बात मेरी समझ से परे थी। कलकत्ता के कालेज मे पढकर बडा हुआ, या तो कोई काम-धधा हो या दोस्त-अहबाबो के साथ गुलछर्रे, नही तो किताब, वह भी नही तो सिनेमा या सैर-सपाटे—इनके बिना आदमी रहता कैसे है, समझ नही सकता। दुनिया मे कितना कुछ रद्दो-बदल हो गया इन बीस वर्षों मे, अपने द्वार पर बैठने वाला जयपाल उसकी खबर भी क्या रखता है ? मै जब स्कूल मे पढ रहा था, जयपाल तब भी ऐसा ही बैठा रहता होगा और अब जब मैंने बी० ए० पास कर लिया, जय-

पाल उसी तरह बैठा रहता है। जो छोटी-बडी घटनाएँ अपने ही जीवन की अपने लिए खासे अचरज की चीज, थी उन्ही से मै जयपाल के इस वैचित्र्यहीन जीवन के बीते दिनो की बात मिलाकर सोचा करता।

जयपाल का मकान था तो गाव के बीच मे, पर पास मे काफी खाली जमीन थी, मकई के खेत थे, इसलिए घर मे सटी हुई कोई आबादी नही थी। यह फुलकिया निहायत छोटी-सी बस्ती थी। गिने-चुने दस-एक घर होगे। सभी भैस चराकर गुजर चलाते थे। दिन-भर सब-के-सब करारी मिहनत करते। शाम को उडद का भूसा जलाकर चारो ओर सब बैठ जाते—गप्प-सटाका करते, खैनी खाते या मखुए के पत्ते मे तम्बाखू लपेट कर चुट्टी पीते। नारियल पीने का रिवाज इधर बहुत ही कम था, लेकिन जयपाल के साथ कभी किसी को बोलते-बतियाते मैने नही देखा।

उस पुराने पाकड पर बहुतेरे बगुलो ने बसेरा बना रक्खा था। लगता, पेड पर सादे फूलो की बहार आई है। छाँह-भरी और निर्जन जगह थी वह, फिर वहाँ खडे होकर जिधर भी आँखे जाती, उसी तरफ दूर दिगत तक नन्हे बच्चे-बच्चियो-जैसी एक-दूसरे का हाथ पकड कर नील गिरिमाला मडलाकार खडी दिखती। मै पाकड की घनी छाया मे खडा-खडा जब जयपाल से बाते करता, तब उस प्रकाड पेड के नीचे की निविड शाति और मकान मालिक की अनुद्विग्न, निस्पृह और धीर जीवन-यात्रा धीरे-धीरे एक विचित्र प्रभाव मुझ पर डालती। आखिर यो मारा-मारा फिरने मे लाभ क्या है? कैसी मनोहर छाया है इस श्याम वशी-वट की, कैसी मधुरी चाल है यमुना की, अतीत की सैकडो सदियो को पार करके, समय के बहाव मे बह जाना कितना सुखकर है, कितना आरामदेह!

कुछ तो जयपाल की ऐसी जीवन-यात्रा का प्रभाव और कुछ आस-पास की उन्मुक्त प्रकृति मुझे भी धीरे-धीरे जयपालकुमार-जैसा ही निर्विकार और उदासीन बनाती जा रही थी। केवल इतना ही क्यो, मेरी जो आँखे खुली नही थी, अब खुल गई, जो मैने कभी नही सोचा, बरबस वही सोचने को विवश किया। फलस्वरूप इस खुले मैदान और हरे-भरे जगल

को मै इस हद तक प्यार कर बैठा कि यदि कभी काम से एक दिन को भी पूर्णिया या मुगेर जाता, तो मन भाग-भाग करता रहता, हर्गिज जी नही लगता। लगता, कब उस जगल को लौट जाऊँ, कब उस सुनसान मे, उस अनोखी चाँदनी मे, सूर्यास्त और दिगत व्यापी काल वैशाखी के मेघो मे, खचाखच तारो भरी निदाघ-निशीथ मे अपने को डुबा दूँ।

———

पाँचवाँ परिच्छेद

[एक]

खूब रह-रह चाँदनी और वैसी ही हड्डी हिलाने वाली करारी सर्दी। पूस बीत चला था। नवटोलिया कचहरी के निरीक्षण के लिए गया हुआ था। खाते-पीते रात के ग्यारह बज जाते। एक रात खा-पीकर मै रसोई से बाहर निकला। देखा, उतनी रात गए और वैसे हिमवर्षी आकाश के नीचे कोई औरत खिली चाँदनी मे कचहरी के अहाते मे खडी है। मैने पटवारी से पूछा—"वहा वह कौन खडी है ?"

पटवारी ने कहा—"वह कुता है हुजूर। कल मुझसे कह रही थी, मैनेजर बाबू आने वाले है। मैं उनका जूठन बटोर लाऊँगी। इन दिनो मेरे बच्चो को बडी तकलीफ है।"

मैने कह दिया था—"अच्छा।"

मै बाते ही कर रहा था कि नजर पडा, बलुआ टहलू ने मेरा सारा जूठन समेट कर उस औरत के एक ऊँची कोर के पीतल के बर्तन मे ले जाकर उँडेल दिया। वह चली गई।

उस बार आठ-दस दिनो तक नवटोलिया कचहरी मे रहा। रोज ही रात को वह औरत मेरी जूठन के लिए इतनी रात गए, उस कन-कन सर्दी मे महज अँचरा ओढे आकर कुएँ के पास खडी रहती। एक दिन मैने आखिर कौतूहलवश पटवारी से पूछा—"अच्छा, यह रोज भात जो ले जाती है, वह कुता है कौन ? इस जगल मे वह कहाँ रहती है ? दिन मे तो यह कभी भी नजर नही आती ?"

बटवारी बोला—"जी, बताता हूँ।"

शाम से कमरे मे गन्‌गन्‌ आग जलाई गई थी। उसी के पास कुर्सी पर बैठा देर से किश्तो की वसूली का लेखा देख रहा था। भोजन करके

लौटा तो सोचा, आज दिन-भर का काम बहुत हो चुका। कागज-पत्तर समेट कर रख दिए और पटवारी का किस्सा सुनने को तैयार हुआ।

—"तो सुनिए हुजूर। दसेक साल पहले इस इलाके मे देवीसिंह राजपूत का बडा दबदबा था। उसके डर के मारे यहाँ के सारे गगोते, सभी किसान और चरी वाले रैयत थरथर काँपते रहते थे। उसका रोजगार था काफी मोटे सूद पर रुपया उधार देना और फिर लाठी के जोर से सूद समेत रुपए वसूल करना। आठ-नौ तो उसके लठैत थे। आज-कल यहाँ का जैसा महाजन रासबिहारीसिंह है, तब देवीसिह था।

देवीसिह जौनपुर जिले से पूर्णियाँ मे आकर बस गया था। उसके बाद कर्ज दे-देकर और अपने जोर-जुल्म से इधर के सभी डरपोक गगोतो को उसने मुट्ठी मे कर लिया। यहाँ बसने के कुछेक साल बाद एक बार वह काशी गया। वहाँ किसी तवायफ के कोठे पर गाना सुनने गया और उसकी चौदह-पन्द्रह साल की बेटी से उसे मुहब्बत हो गई। देवीसिह उसे यहाँ भगा लाया। तब उसकी उमर सत्ताईस-अट्ठाईस वर्ष की होगी। देवीसिंह ने उससे ब्याह कर लिया। आखिर जब लोगों पर यह बात जाहिर हो गई कि वह किसी तवायफ की लडकी है, तब बिरादरी के,लोगो ने देवीसिंह को बिरादरी मे निकाल दिया। देवीसिह के पास पैसे की कमी तो थी नही। उसने इसकी परवाह न की। उसके बाद ऐश-मौज मे रुपए उडा कर और रासबिहारीसिह से मुकदमेबाजी मे वह कगाल हो गया। चार साल हुए कि वह चल बसा। उसकी वही विधवा है यह कुता। कभी यह भी समय था कि किमखाब की झालरवाली पालकी पर चढकर यह नवटोलिया से कोसी और कलबलिया नहाने जाया करती थी, बिकानी की मिसरी से पानी पीती थी—उसकी आज यह दुर्गत है। उस पर से मुसीबत यह कि सभी जानते है कि वह तवायफ की लडकी ह, सो क्या पति की अपनी बिरादरी राजपूतो में और क्या गगोतो मे, उसकी जात नहीं। गेहूँ की कटनी खत्म हो चुकने पर वह खेतो से गिरी-पडी बालियाँ चुन कर ले आती है। उसी से साल मे दो महीने बच्चो को अधपेट खिला कर रखती है, मगर

हुजूर, आज तक कभी किसी ने उसे कही हाथ फैलाते हुए नही देखा। आप जमीदार के मैनेजर है, राजा के बराबर है, आपके यहाँ प्रसाद लेने मे वह अपनी हेठी नही समझती।"

मैंने पूछा—"और उसकी माँ, उस तवायफ ने फिर इसकी कभी खोज नही ली?"

पटवारी बोला—"मैने कभी देखा तो नही हुजूर। कुता ने भी कभी अपनी माँ की पूछ-ताछ नही की। ऐसी ही दुख-तकलीफ से वह बच्चो को पालती आ रही है। और आज आप कुता को क्या देखते है हुजूर, कभी वह ऐसी खूबसूरत थी कि वैसी खूबसूरती इधर के इलाके मे कभी किसी ने देखी भी नही होगी। अब तो उम्र भी ढल गई, जिस पर विधवा होने के बाद से दुःख झेलते-झेलते उस रूप का रह ही क्या गया! बडी नेक और शात औरत है यह। मगर यहाँ कोई फूटी निगाहो भी उसे नही देखना चाहते, नाक-भौ सिकोडते है, नीचा देखते है, शायद इसीलिए कि वह एक तवायफ की लडकी है।"

मैंने कहा—"वह तो खैर है, मगर रात के बारह बजे वह घने जगल की राह अकेले नवटोलिया कैसे जायगी—नवटोलिया तो कोई तीन पाव जमीन होगी यहाँ से?"

—"हो, मगर डरे तो काम कैसे चले बेचारी का? उसे तो हरवक्त इस जगल मे अकेली ही घूमना पडता है। न घूमे, तो है कौन जो चलाए?"

पूस का महीना था। उस किश्त की अदायगी का तकाजा करके मैं लौट आया। एक छोटे-से चरी महाल के इजारे के लिए माघ ही के बीचो-बीच मुझे फिर वहाँ जाने की जरूरत पडी।

सर्दी तब भी कम नही हुई थी। ऊपर से तमाम दिन पछुआ जो चलती, सो शाम के बाद दुगनी हो जाती। एक दिन घूमने निकला। महाल के उत्तरी हिस्से मे बडी दूर तक निकल गया। उधर दूर-दूर तक केवल बेर का जगल फैला था। इन जगलो को बन्दोबस्त पर लेकर छपरा और मुजफ्फरपुर के कलवार-जातीय लोग लाह की खेती से काफी पैसा पैदा करते। बेर

के जगल मे मै राह भूल-सा पडा था कि किसी औरत का आर्त्त-चीत्कार, बच्चो का रोना-धोना और मर्द की डाट-डपट, गाली-गलौज मेरे कानो मे पडी। मै जरा आगे बढा, देखा, लाह के इजारेदारो के नौकर झोटा पकडे एक औरत को घसीटे ला रहे है। औरत मैला चीथरा पहने है, पीछे-पीछे दो-तीन छोटे-छोटे बच्चे रोते आ रहे है। जो दो छत्री नौकर थे, उनमे से एक के हाथ मे आधी टोकरी पके बेर। मुझे देखकर उन नौकरो ने जो कहा, थोडे मे उसका मतलब यह हुआ कि "यह गगोतिन हमारे जगल मे बेर तोड रही थी। हम इसे पकडकर पटवारी के पास फैसले के लिए ले जा रहे है। अच्छा ही हुआ कि हुजूर मिल गए।"

मैने डाट बताकर सब से पहले तो उनके चगुल से उस औरत को छुडाया। डर और लज्जा से सिमट कर वह एक बेर की झाडी की आड मे जा खडी हुई। बेचारी की दुर्गत देखकर मुझे बेहद तकलीफ हुई!

वे भला उसे सहज ही कैसे छोड देते? मैने समझाया—"देखो, एक गरीबिन ने बच्चो को खिलाने के लिए ये खट्टे बेर थोडे-से तोड ही लिये, तो तुम्हारी लाह की खेती मे कौन-सा नुकसान हुआ? बेचारी को अपने घर जाने दो।"

उनमे से एक बोला—"आप इस औरत को जानते नही है हुजूर। नाम है इसका कुता। नवटोलिया मे रहती है। बेर चोरी करना इसका पेशा बन गया है। पिछले साल भी इसे रँगे हाथो पकडा था—इस बार इसे खासा सबक दिए बिना—"

मै लगभग चौक पडा। कुता! पहचान तो नही सका मै, शायद इसलिए कि दिन मे मैने उसे कभी देखा ही नही, जब भी देखा रात मे। मैने डरा-धमका कर उसे तुरन्त रिहाई दिलाई। वह लाज से गड-सी गई। बाल-बच्चो को लेकर घर लौट गई। जाते समय बेर की टोकरी और लग्गी वही छोड गई। भय और सकोच से शायद। मैने उन लोगो मे से एक को कहा कि बेर की यह टोकरी और लग्गी कचहरी मे पहुँचा दो। सुनकर वे बडे खुश हो गए। सोचा, टोकरी और लग्गी जरूर ही जब्त कर ली जायगी।

कचहरी लौट आने के बाद मैंने पटवारी से कहा—"तुम्हारी तरफ के लोग इतने निर्दयी क्यों होते हैं बनवारीलाल ?" बनवारी बड़ा दुखी हुआ। आदमी वह अच्छा था। इधर के दूसरे लोगों से उसके हृदय में सचमुच ही दया-माया थी। उसने प्यादे की मार्फत टोकरी और लग्गी उसी वक्त कुंता के घर, नवटोलिया भिजवा दी।

उस रात कुंता लाज से भात लेने के लिए कचहरी भी नहीं आई।

[दो]

जाड़ा बीत गया, वसन्त आया।

अपने इस महाल की पूरबी-दक्खिनी सरहद के सात-आठ कोस पर यानी सदर मुकाम से लगभग चौदह-पसन्द्रह कोस पर फागुन में होली के दिन हर साल बड़ा मशहूर मेला लगता था। मैंने इस बार वहाँ जाने का निश्चय किया था। एक तो अरसे से कहीं इतने लोगों का समागम देखना नसीब नहीं हुआ था, दूसरे इधर के मेले-ठेले कैसे होते हैं, इसे जानने का भी कौतूहल था, मगर कचहरी के लोग बारम्बार मना करते रहे। रास्ता बड़ा बीहड है, शुरू से आखिर तक जंगल और पहाड़—तमाम जंगली भैंसे और बाघ का खतरा। छुटपुट बस्ती है जरूर, लेकिन इतनी-इतनी दूरी पर हैं कि कोई आफत आन पड़े, तो उनसे कोई मदद नहीं मिलने की।

'जिन्दगी में कभी साहस का छोटा-सा काम करने का भी मौका हाथ नहीं आया। यहाँ रहते-रहते जो कर सकूँ, गनीमत। कलकत्ता लौट जाने पर फिर कहाँ यह जंगल और कहाँ जंगली भैंसे और बाघ! मेरी आँखों में, भविष्यत् में मुझसे किस्सा सुनते हुए नाती-पोतों के चेहरे और उत्सुक तरुण आँखें झूल गईं। और मुनेश्वर महतो, पटवारी और मुहर्रिर बाबू लाख मना करते रहे, मैं मेले के दिन तड़के ही घोड़े पर सवार होकर निकल पड़ा। दो घंटे तो अपने ही महाल की हद पार करते करते लग गए, क्योंकि पूरब-दक्खिन सीमा पर ही जंगल ज्यादा घना था, रास्ता था ही नहीं

कहिए, घोडे के सिवाय दूसरी किसी सवारी से चलना मुश्किल था। जहा तहाँ छोटी-बडी चट्टाने, सखुए का जगल, झाऊ और कसाल का जगल। ऊँची-नीची, ऊबड-खाबड राह, बीच-बीच मे बालू के टीले, रगीन मिट्टी की टेकडियाँ, छोटी पहाडी, पहाडी पर घने कँटीले पेडो का जगल। मै घोडे को जब जैसा, कभी तेज, कभी धीमा हाँक रहा था। दुलकी चाल पर घोडे को लिए चलने की गुजाइश न थी। रास्ता बुरा, फिर जहाँ-तहा चट्टानो के बिखरे रहने से थोडी-थोडी दूर पर ही चाल टूट जाती। कभी गैलप, कभी दुलकी तो कभी पा-पा चल रहा था।

लेकिन मै कचहरी से कूच करते ही मगन मन हो गया था। जब से इस नौकरी पर यहाँ आया था, तभी से यहाँ का यह धू-धू करता हुआ आतर और जगल धीरे-धीरे मुझे अपना गाँव-घर भुलाए दे रहा था। सभ्य दुनिया के सैकडो आराम के उपकरण और आदते भुलाए दे रहा था। बन्धु-बाधवो तक को भुला देने पर तुला था। घोडा आहिस्ते या धीरे, जैसे चाहे जाय, जब तक पहाड की तलहटी मे वसतागम से खिले पलाश के रगीन फूलो का मेला लगा है, पहाड के नीचे, ऊपर, मैदान मे तमाम नन्हे पौधो की फूलो के भार से झुकी ये डालियाँ है, गलगली के पत्रविहीन दुग्ध-धवल काँडो पर सूरजमुखी जैसे इन पीले-पीले फूलो ने दोपहर की धूप को अपनी मीठी महक से अलस कर दिया है, ऐसी हालत में इसका लेखा कौन रक्खे कि कितनी दूरी तै हुई?

मगर कुछ-न-कुछ हिसाब रखना भी जरूरी था, नही तो प्रतिपल दिशा और राह भूल जाने का खतरा था। अपने जगल की हद पार करने के पहले ही यह बात मेरी समझ मे आई। जरा देर मै अन्यमनस्क रहा। अचानक सामने दूर पर एक बहुत ही बड़े जगल का ऊपरी हिस्सा नील रेखा-जैसा क्षितिज के इस छोर से उस छोर तक फैला दिखाई दिया। आखिर इतना बडा जगल वहाँ आया कहाँ से? कचहरी में तो किसी ने यह जिक्र तक भी नही किया था कि मैषडी के मेले के आस-पास कही इतना बडा कोई जगल भी है? दूसरे ही क्षण मुझे खयाल आया, हो न हो, वह

मोहनपुरा रिजर्व फॉरेस्ट है, जो कि अपनी कचहरी के उत्तर-पूरव के कोने पर पडता है। असल मे मै भटक गया हूं। इधर जानी-पहचानी पगडडी शायद ही मिलती—लोग-बाग वही से ही आते-जाते है। जिधर देखिए, एक ही-सा दिखता है, एक ही-सी टेकडी, वैसे ही गलगली और धातुप फूलो का जगल ओर उनके साथ कॉपती रहने वाली ताप-तरग। ऐसे मे अनाडी व्यक्ति को भटक जाने मे देर नही लगती।

फिर से घोडे का मुँह फेर दिया। सँभल कर अपने लक्ष्य को ठीक किया और उधर की दिशा का एक चिह्न चुन कर मन मे रक्खा। अपार सागर मे जहाज को ठीक राह पर ले जाना, अनत आकाश मे हवाई जहाज के चालको का काम और ऐसे दूर तक फैले किसी पथ-हीन जगल मे घोडे पर चढकर ठिकाने पर पहुँचना, प्राय एक ही-जैसे काम है। जिन्हे ऐसा साबका पडा है, उन्हे इसकी सचाई समझने मे देर न लगेगी।

फिर शुरू हुआ धूप से जले नगे पेड-पौधो का समूह, फिर जगली फूलो की मद-मधुर खुशबू, फिर रक्तपलाश की वही शोभा। समय काफी हो गया था। लगा, कि कही पानी पीने को मिलता तो अच्छा था। कारो नदी के सिवाय इधर कही पानी नही मिलता, यह मुझे मालूम था , मगर अभी तो अपने ही जगल की सीमा पार नही हो सकी थी, कारो तो अभी बहुत दूर रही—यह सोचते ही प्यास अचानक और तेज हो आई।

मुकुन्दी चकलादार से मैने कहा था कि अपने महाल की हद पर बबूल या महावीरी झडे-जैसा कुछ, जो भी हो, सीमा की जानकारी के लिए गाड देना। इसके पहले सीमा पर कभी आने का मौका नही मिला। आज देखा, मेरे इस हुक्म की तामील नही हुई है। सोचा होगा, अरे, तुम भी क्या लेते हो, कलकत्ता के मैनेजर बाबू भला कभी इस सीमा पर आने के ! मुफ्त की बला कौन माथे ले। जैसा है, रहे।

अपनी हद से बाहर राह से कुछ हट कर एक जगह से धुआँ उठ रहा था। मै वहाँ पर गया। कुछ लोग लकडियाँ जलाकर कोयला बना रहे थे। यही कोयला वे गाँवो मे जा-जा कर बेचेगे। इधर के गरीब-गुरबे लोग

अँगीठी मे कोयला जलाकर उसी से ताप कर जाडा काटते हैं। पैसे का चार सेर कोयला बिकता था, वह भी खरीदने की जुर्रत बहुतो की न थी। मेरी समझ मे यह भी न आया कि इस मशक्कत से कोयला बना कर पैसे के चार सेर के भाव से बेच कर इन कोयले वालो को ही कौन-सा मुनाफा होता होगा। मैने शुरू से गौर किया है कि यहाँ पैसा और जगहो जितना सस्ता नही। कैत और आँवले के जगल मे एक छोटा-सा झोपडा था। कसाल और माबै घास की छौनी। मैं जब वहाँ पहुँचा, तब वे लोग उसी मे खाने बैठे थे। मिट्टी की हँडिया मे मकई को उबाल लिया था और सखुए के हरे पत्ते पर उसी को परोसा था। नमक के सिवाय दूसरा कोई उपकरण नही था। पास ही बडे-बडे गढो मे डाल-पत्ते जल रहे थे। एक छोकरा सखुए की टाल से आग पर पडी लकडियो को उलट-पलट रहा था।

मैने पूछा—"उस गढे मे क्या जल रहा है?" खाना छोड कर सब-के-सब उठ खडे हुए। भयभीत नेत्रो से मेरी ओर देखते हुए वे सकपका कर बोले—"लकडी का कोयला है हुजूर।"

मुझे घोडे पर सवार देख कर वे डर गए थे—शायद उन्होने मुझे जगल-विभाग का कर्मचारी समझ लिया था। इधर के सारे जगल सरकार के खास महाल मे पडते थे। इजाजत के बिना वहाँ लकडी काटना या कोयला जलाना गैर-कानूनी था।

मैने उन्हे दिलासा दिया—"घबराओ मत, मै कोई सरकारी मुलाजिम नही हूँ। जी चाहे जितना कोयला तुम बनाओ। मुझे थोडा-सा पानी चाहिए। मिलेगा क्या?" खाना छोड कर एक आदमी उठा। एक बडे से कटोरे मे झट से उसने पानी ला दिया। खूब साफ पानी। पूछने पर पता चला, पास ही कोई-झरना है, उसी का यह पानी है।

झरना? मुझे बडा कौतूहल हुआ—"कहाँ है वह झरना? मुझे तो खबर ही नही थी कि इधर भी कोई झरना है!"

उन्होने कहा—"झरना नही हुजूर, एक गढा है। पत्थरो मे से पानी

धीरे-धीरे जमता रहता है। घटे भर मे सेर आधेक पानी होता है। खूब साफ पानी, खूब ठडा।"

मै वह जगह देखने गया। कितनी सुन्दर और शीतल वन-वीथि! इस सूने जगल मे चट्टानो के नीचे शरत्-वसन्त मे या गभीर रात मे चिडियाँ जल-केलि को उतरती होगी शायद! जगल वहाँ पर बडा ही घना। पियार और केद की घनी डालो से घिरी एक गहराई, नीचे काले पत्थर की सतह, जैसे पत्थर की एक बहुत बडी वेदी घिसते-घिसते गहरी हो गई है। जैसे कुदरत का बनाया एक बहुत बडा पत्थर का कटोरा हो। पियार की फूली हुई डाले चारो ओर से उस पर झुक आई थी, जिससे वहाँ बडी शीतल छाया थी। पियार और सखुए के फूलो की खुशबू छाया मे भुरभुरा रही थी। गढे मे बूँद-बूँद पानी सिमट रहा था। अभी-अभी कोई वहाँ से पानी भर कर ले गया था, सो वहाँ आधी छटाँक भी पानी जमा नही हो पाया था।

उन लोगो ने कहा—"इस झरने का पता बहुतो को नही है हुजूर। हम आठो पहर जगल की खाक छाना करते है, इसलिए हम जानते है।"

पाँचेक मील और जाने के बाद कारो नदी मिली। दोनो तरफ बालू के काफी ऊँचे कगारे, काफी खडी उतराई के बाद नदी का पाट। उसमे नाम को ही पानी था। दोनो तरफ दूर तक धू-धू करते बालू के किनारे। लगा, जैसे किसी पहाड से उतर रही हो। पार होते-होते एक जगह घोडे के रिकाब तक पानी हो आया। पाँव समेट सम्हल कर पार हुआ। उस पार खिले रक्तपलाश का जगल था। ऊँची-नीची रगीन चट्टाने और जहाँ देखो पलाश-ही-पलाश। चारो तरफ लाल फूलो का अपार मेला। कुछ दूर पर धापुत फूल के जगल से एक जगली भैसा निकलता हुआ दिखाई दिया। रास्ते मे खडे होकर वह खुर से मिट्टी खुरचने लगा। लगाम सम्भाल कर मै भी ठहर गया। कही न आदमी, न आदमजाद—कही सीग सँभाल कर खेदना न शुरू कर दे? मगर भाग्य से वह रास्ते से उतर कर जंगल में गायब हो गया।

नदी से और कुछ दूर बढ जाने पर रास्ते का दृश्य कैसा हृदयहारी

हो आया ! वह भी तो समझिए कि चिलचिलाती दोपहरी थी, अपराह्न की न तो थी छाया, न थी रात की चाँदनी। निर्जन जलती हुई दोपहरी मे बाई तरफ खडी थी वन से ढँकी गिरिमाला, दाएँ लोहा-पत्थर और पायो-राहट बिखरी ऊबड-खाबड जमीन मे केवल गलगली फूल के सफेद टह-नियो वाले पेड और रगीन धातुप फूल के जगल। अद्भुत स्थान , वैसा रूखा फिर भी सुन्दर, फूलो की भीड से भरा फिर भी उद्दाम और इतनी ज्यादा जगली शोभा मैने कभी देखी ही नही थी। ऊपर से दोपहर की खाँ-खाँ करती हुई धूप। माथे पर आसमान का नीला वितान। ऊपर कही कोई चिडिया नही, एकदम सूना , नीचे कोई आदमी या जीव-जन्तु नही, सन्नाटा, घोर सुनसान ! प्रकृति की इस एकान्त रूप-लीला को देखते हुए मै खो गया—जानता ही न था कि भारतवर्ष मे भी कही ऐसी जगह है ! यह तो मानो फिल्म मे देखी हुई दक्खिन अमरीका की एरिजोना या नेवोजा मरुभूमि या हडसन की किताब मे जिसका जिक्र आया है, उस गिला नदी के मुहाने का इलाका हो।

मेले मे पहुँचते-पहुँचते एक बज गया। बडा भारी मेला था। बाई ओर जो गिरिमाला राह मे लगभग तीन कोस से मेरे साथ-साथ चली आ रही थी, उसी के एक बारगी दक्खिन एक गाँव के पास पहाड की तलहटी मे साल-पलाश के जगल मे यह मेला लगा था। महिषाबाडी, कडारी तिन-टगा, लछमिनिया टोला, भीमदास टोला, महालिखारूप—इन दूर-पास के गाँवो के लोग, खासकर औरते मेले मे आई थी। तरुणियो ने बालो मे पियार या धातुप के फूल खोस रक्खे थे, किसी-किसी के जूडे मे काठ की कघी भी लगी थी। उनकी देह की बनावट बडी लावण्यमयी थी। मौज से वे नकली मोती, जापान या जर्मनी के सस्ते साबुन, सीटी, आईना, निहा-यत निकम्मे एसेस खरीद रही थी, मर्द पैसे की दस वाली सिगरेट खरीद रहे थे। बच्चे बच्चियाँ तिलकुट, रेवडी, रामदाने के लड्डू और पकौडियाँ खरीद कर खा रहे थे।

अचानक किसी औरत के रोने की आवाज से मै चौक पडा। एक टीले

पर कुछ युवक-युवतियाँ गप-सटाके और हँसी-खुशी मे मशगूल थी। उसी टोली मे से रोने की आवाज उठी। आखिर माजरा क्या है ? कोई एका-एक चल तो नही बसा ? एक आदमी से मैंने पूछा। पता चला, वैसी कोई बात नही। असल मे किसी बहू की अपने नैहर की किसी औरत से भेट हो गई है। इधर का रिवाज ही शायद ऐसा है कि किसी औरत को बहुत दिनो पर कही कोई नैहर की स्त्री, कोई सखी या कोई रिश्ते की औरत मिल जाय, तो वह जार-बेजार रोने लगेगी। जो न जानता हो, ऐसा आदमी देखे, तो जरूर यही समझेगा कि उनका अपना कोई मर गया होगा , लेकिन हकीकत मे यह उनके आदर-सत्कार का एक ढग है। न रोए तो शिकायत हो। अगर कोई लडकी नैहर के किसी व्यक्ति को देख कर न रोए, तो मतलब यह हुआ कि ससुराल मे वह खूब सुखी है—औरत के लिए यह एक बड़ी शर्मनाक बात है !

एक जगह एक दूकानदार टाट पर किताबे फैलाए बठा था—"गुलब-कावली', 'लैला-मजनू', 'बैताल पच्चीसी','प्रेमसागर' आदि-इत्यादि। एकाध बुजुर्ग किस्म के लोग उनके पन्ने पलट रहे थे। मैंने समझा, किताबो की दूकान पर खडे पाठक का जो हाल अनातोले फ्रास के पेरिस मे है, कडारी लीनटगा के होली के मेले मे भी वही है। मुफ्त मे खडे-खडे पढने को मिल जाय, तो किताबो पर शायद ही कोई कुछ खर्चना चाहे , मगर दूकानदार भी बडा काइयाँ था। पढने मे मशगूल एक आदमी से उसने कहा—"किताब खरीदनी है तो खरीदो , नही तो और काम देखो।"

मेले से कुछ हटकर सखुओ की छाया मे बहुतेरे लोग खाने-पकाने मे लगे थे। ऐसो के लिए मेले मे एक तरफ सब्जियो का बाजार लगा था। सखुए के हरे-हरे पत्तो के दोनो मे सुगठी और लाल चीटे के अडे बिक रहे थे। लाल चीटे के अडे इधर चाव से खाए जाते है। इसके अलावा कच्चे पपीते, सूखे बेर, केद, अमरूद और जगली सेम भी बिक रहे थे।

अचानक किसी की आवाज सुनाई पडी—"मैनेजर बाबू—"

मैंने इधर-उधर देखा। देखा, भीड चीरता हुआ नवटोलिया के पटवारी

का भाई ब्रह्मा महतो मेरी तरफ चला आ रहा है। उसने पूछा—"आप यहाँ कब आए हुजूर? साथ मे कौन आया है?"

मैने पूछा—"तुम क्या यहाँ मेला देखने आए हो?"

—"जी नही। मै मेले का ठेकेदार हूँ। जरा मेरे तम्बू मे अपने चरणो की धूल दे।"

ठेकेदार का तम्बू मेले के एक किनारे पर था। ब्रह्मा ने मुझे एक पुरानी बेटउड् कुर्सी पर आदर से बिठाया। वहाँ मैने जो एक आदमी को देखा, वैसा आदमी पृथ्वी पर दूसरा शायद ही देखने को मिले कभी। पता नही, वह था कौन। ब्रह्मा का ही कारिदा होगा। उमर पचास-साठ की, खुला बदन, काला रग, बाल सफेद-काले की खिचडी। हाथ मे पैसो से भरी एक थैली, बगल मे एक बही। शायद मेले की वसूली का हिसाब देने आया होगा।

उसकी नजर और चेहरे का बेहद दीन-विनम्र भाव देखकर मै मुग्ध हो गया। उस निगाह मे थोडा-बहुत भय का भाव भी मिला हुआ था। मगर क्यो? कोई राजा तो था नही ब्रह्मा महतो, मजिस्ट्रेट भी नही था, किसी का वारा-न्यारा कर सके, यह भी जरत न थी उसकी। खास महाल का एक बढता हुआ रैयत था महज—बला से उसने मेले का ठेका ले रक्खा था, मगर वह आदमी उसके आगे इस बुरी तरह आखिर क्यो झुका था? फिर जब मै तम्बू मे पहुँचा और उसने ब्रह्मा को मेरी इतनी खातिर करते देखा, तो अदब और दीनता से डरते-डरते एकाध बार से ज्यादा मेरी ओर ताकने का उसे भरोसा न हुआ। मै सोचने लगा, इसकी दृष्टि इतनी दीन-हीन क्यो है आखिर? बेहद गरीब है क्या, निहायत बेचारा? उसके चेहरे पर ऐसा क्या था कि मै बार-बार उसे देखने लगा—ब्लेसेड आर द मीक, फार दीयर्स इज दि किगडम आफ हेवन। ऐसा बेचारा मुखडा मैने सच ही कभी नही देखा।

ब्रह्मा से मालूम हुआ—"वह कडारी तिनटगा का है, जहाँ ब्रह्मा महतो का घर है। जाति का गगोता है, नाम है गिरधारीलाल। एक छोटे

लडके के सिवाय ससार मे उसका और कोई नही । जैसा कि मैंने सोचा था, हालत उसकी बडी गई-बीती है । बहरहाल ब्रह्मा ने उसे मेले से टैक्स वसूल करने के लिए चार आने रोज और भत्ते पर रख लिया है ।"

इस गिरधारीलाल से मेरी बाद मे भी मुलाकात हुई थी । आखिरी भेंट के समय की हालत बडी दर्दनाक रही, वह फिर बताऊँगा । जिन्दगी मे मैंने बहुत किस्म के लोग देखे, मगर उसके जैसा सच्चा आदमी नही देखा । जाने कितने दिन गुजर गए, इस बीच कितने ही लोगो की याद जाती रही , किन्तु जिनकी स्मृति सदा हृदय मे अकित है, सदा रहेगी, ऐसे ही कुछ लोगो मे गिरधारीलाल एक है ।

[तीन]

शाम होती जा रही थी और अब लौट पडना निहायत जरूरी था । सो मैंने ब्रह्मा महतो से विदाई माँगी । सुनकर वह तो मानो आसमान पर से गिर पडा । तम्बू मे और जो-जो लोग बैठे थे, सब-के-सब अचरज से मेरी ओर ताकते रह गए । तीस मील का रास्ता तै करना है—ऐसे समय चलना गैर मुमकिन है ! दरअसल हुजूर ठहरे कलकत्ता के रहने वाले । इधर के रास्तो की हकीकत का पता नही, जभी ऐसा कह रहे है । दस मील जाते-न-जाते चक्का डूब जायगा । माना कि चाँदनी रात है, मगर जगल पहाड का रास्ता, बाघ निकल सकता है, जगली भैंसा मिल सकता है । आज-कल बेर पकने के दिन है, भालू के निकलने मे तो शक ही नही । अभी उस दिन कारो नदी के उस पार महालिखारूप के जगल से एक बेचारे गाडीवान को बाघ ले ही गया घसीट कर । अकेला था—"नही हुजूर, यह नही हो सकता । जब दया करके इस गरीब के यहाँ आ पहुँचे है, तो रात-भर यही ठहर जायँ । यही भोजन-छाजन करे । सुबह न होगा तो चल देगे ।"

बासती पूर्णिमा की खिली चाँदनी मे जंगल-पहाडो की राह से घोडे

की पीठ पर अकेले चलने का लोभ मेरे लिए दुर्दमनीय हो उठा। ऐसा मौका जीवन मे शायद ही फिर कभी मिले, यही शायद अन्तिम अवसर हो—फिर जैसे अपूर्व नजारे तमाम राह देखता आया था ! चॉदनी रात मे—खासकर पूनो की चॉदनी मे अगर उनकी छटा एक बार न देख सका, तो इतने कष्ट झेलकर आने का कोई मतलब भी हुआ भला ?

सबकी मिन्नते टालकर आखिर मै चल ही पडा। ठीक ही कहा था ब्रह्मा महतो ने, कारो नदी तक पहुॅचने से पहले ही सिन्दूरी सूरज पच्छिमी क्षितिज मे एक छोटी-सी पहाडी के पीछे डूब गया। कारो नदी के बलुआहे ऊॅचे कगारे पर पहुॅचा और ढॉलवे से घोडे को उतारने को ही था कि सूर्यास्त का वह दृश्य और पूरब मे एक काली लकीर-सा दीखता मोहनपुरा रिजर्व फॉरेस्ट के माथे पर उगते हुए पूरे चॉद का दृश्य—एक साथ उदय और अस्त के ये दृश्य देखकर घोडे की लगाम सॅंभाली और मै तनिक ठिठक गया। उस सुनसान आजाने नदी किनारे, सब कुछ मानो अलौकिक-सा लगने लगा—

रास्ते-भर मे पहाडो की उतराई और सपाट मे जहाँ-तहाँ बिखरा-बिखरा जगल, कही-कही पतली पगडडी को मानो दोनो तरफ से दबोच देता हो, कही छोडकर अलग हो जाता हो। चारो तरफ कैसा खौफनाक सूनापन ! दिन की रोशनी जब तक रही, तब तक फिर भी गनीमत थी, चाँदनी निकल आने के बाद लगने लगा कि मै अजाने और अनोखे सौदर्यो से भरे परी-देश से चला जा रहा हूँ। बाघ का डर हो आया। ब्रह्मा महतो और अपनी कचहरी के सबने रात को इस राह से जाने की मुमानियत की थी—यह भी याद आया। नन्दकिशोर गुसाईं नाम के बथानवाले ने कोई दो-तीन महीने पहले कचहरी मे महालिखारूप के जगल मे किसी के बाघ का शिकार हो जाने का जो किस्सा सुनाया था, वह भी याद आया। जहॉ-तहॉ पके बेरो के भार से डाले झुक आई थी—नीचे बे हिसाब सूखे और पके बेर बिखरे पडे थे। भालू के निकलने का खासा खतरा था। इस जगल मे भैसे जरूर नही है, पर मोहनपुरा के जगल से एक-आध को निकलते

कितनी देर लगती है ! अभी भी पन्द्रह मील की ऐसी ही सूनी और भयावनी राह बाकी थी ।

डर की इस अनुभूति ने चारो ओर की सुन्दरता को मानो और बढा दिया । कही-कही घुमावदार राह दक्खिन से सीधे उत्तर को चढ आई थी और उत्तर से सीधे पूरब को घूम गई थी । बाई तरफ सटी चल रही थी लगातार पहाडियो की कतार, जिसके नीचे गलगली और पलास के जगल, चोटी की तरफ सखुओ के पेड और लम्बी घास । चाँदनी लावा जैसी फूटने लगी थी । पेडो की छाया छोटी-से-छोटी हो आई, जाने किस वन-फूल की महक से सारा प्रातर गमगमा उठा था । बडी दूर पर पतई जलाने के लिए सथालो ने पहाड मे आग लगा दी थी—एक अनोखा ही दृश्य लग रहा था, जैसे किसी ने पहाडो पर दीपो की माला सजा दी हो !

मगर अपनी आँखो देखने का मौका नही मिला होता, तो किसी के कहने का यक़ीन ही नही आता कि बगाल के निहायत ही पडोस मे ऐसा जन-हीन प्रातर और गिरिमाला भी है, जो सौन्दर्य के लिहाज से अरिजोना के पथरीले मरुप्रदेश या रोडेशिया के पुशवेल्ड से किसी भी हालत मे कम नही है—भयानकता के लिहाज से भी यह इलाका कम नही । साँझ होते ही लोग बाघ-भालू के डर से रास्ते पर पैर नही धरते !

खुली चाँदनी मे जाते-जाते सोचने लगा—'यह जिन्दगी ही और है ! जो घरो की चहार दीवारी के अन्दर बँधे रहना पसन्द नही करते, घर-गिरस्ती करना जिनके लहू मे ही नही, ऐसे अजीबो-गरीब स्वभाव के लोगो को यही जीवन तो चाहिए । शुरू-शुरू मे जब यहाँ आया था, तब यहाँ का यह भयकर सूनापन और जगली जीवन-यात्रा मानो काटने दौडती थी, मगर अब लगता है, यही अच्छा है । इस बर्बर, रूखी वन्य प्रकृति ने मुझे अपने मुक्ति-मत्र से दीक्षित कर लिया, शहर मे अब पिजरे मे रहते भी बनेगा ? इस पथ-विहीन प्रातर की चट्टानो और साल-पलाश के वनों मे बेतहाशा घोडा दौडाए चलने के आनन्द को, मै दुनिया की किसी भी दौलत से बदलने को तैयार नही ।

चाँदनी और भी निखर आई । खिली चाँदनी मे तारे लगभग खो गए । चारो तरफ निगाह दौडाई, तो लगा, यह वह धरती ही नही, जिसे मैं आज तक जानता रहा हूँ। यह एक स्वप्नो की दुनिया है। इस दिगन्त तक फैले हुए चाँदनी के पारावार मे बहुत रात बीते अपार्थिव जीवो का विहार चलता है—वे स्वप्न और कल्पना के, तपस्या के धन है । जिन्हे वन-फूलो से प्यार नहीं, जो सुन्दर को नही चीन्हते, जिन्हे क्षितिज की रेखा इशारे से कभी बुलाती नही, यह धरती कभी भी उनके हाथो पकड मे नही आती, कभी नही ।

महालिखारूप का जगल खत्म हुआ और कोई चार मील चल कर अपनी सीमा शुरू हुई । रात के करीब नौ बजे मै कचहरी पहुँचा ।

[चार]

ढोलक की आवाज आई । झाँककर बाहर देखा । कचहरी के अहाते मे जाने कहाँ से आकर कुछ लोग ढोलक बजा रहे थे । कचहरी के नौकर-प्यादे उनके चारो तरफ जा खडे हो गए । माजरा क्या है, किसी को बुला कर पूछने की मै सोच ही रहा था कि मुक्तिनाथसिह जमादार ने आकर सलाम किया और बोला—

"हुजूर, जरा मिहरबानी करके बाहर चलेगे ?"

—"क्यो, बात क्या है ?"

—"इस साल दक्खिन मे अकाल पडा है हुजूर । धान की फसल हुई नही । गुजारा नही चलता, सो लोग पेट चलाने के लिए जहाँ-तहाँ नाच दिखाते फिर रहे है । एक दल हुजूर के सामने नाच दिखाने को यहाँ आया हुआ है । हुक्म हो, तो ये नाच दिखाएँ ।"

नाच वाले मेरे दफ्तर के सामने आ खडे हुए । मुक्तिनाथसिह ने उनसे पूछा कि वे कौन-सा, नाच दिखायेंगे । नाचवाली मडली में से साठ-बासठ साल का एक बूढा आगे निकल आया और सलाम करके विनीत भाव से बोला—"हो हो नाच और छोकडा नाच हुजूर ।"

दल को देखने से मुझे ऐसा लगा कि वे लोग नाच जाने चाहे न जाने, दो मुट्ठी भोजन पाने के आसरे, सब तरह के, सभी उमर के लोग उसमे शामिल हो गए है । बडी देर तक वे नाचते-गाते रहे । दिन ढले वे आए थे, और आसमान मे चाँदनी बिखर पडी, तब तक घूम-घूमकर, एक दूसरे का हाथ पकड कर नाचते रहे, गाते रहे । अजीब तर्ज के गीत । मुक्त प्रकृति के इस विशाल विस्तार और इस सभ्य जगत् से दूर, बहुत दूर, जगल की पृष्ठ-भूमि मे इस दिगन्त परिप्लाविनी छाया-विहीन चाँदनी मे इनके ही ये नाच-गीत उचित लगते है । एक गीत का आशय था—

" छुटपने में मजे में था ।

अपने गाँव के पीछे जो पहाड़ है, उसकी चोटी पर केंद का जगल है । उसी जगल मे पके फल बीना करता गूँथा ओर था करता था पियार के फूलो की माला ।

दिन सुख से ही बीतते थे, तब इसकी खाक भी खबर न थी कि प्यार क्या बला होती है ।

उस दिन पचनहरी झरने के किनारे कर्रे के शिकार मे गया । मेरे हाथों में बाँस का नल था ।

तुम कुसुमी रग की साड़ी पहने पानी भरने को आई थी । कहा था—'छि., मर्द होकर यो चिड़ियो का शिकार ? '

मै शर्म से पानी-पानी हो गया था और शिकार के औजार फेंक दिए थे । वन की चिड़िया तो उड भागी, मगर मेरे मन की चिड़िया तुम्हारे प्रेम के फंदे में सदा-सदा के लिए फँस गई !

आखिर नली से चिड़िया मारने की मनाही करके तुमने यह क्या किया ? यह जो कुछ हुआ, वह अच्छा हुआ क्या ? "

उनकी भाषा कुछ तो समझ मे आती, कुछ-कुछ नही आती । उनके गीत शायद इसीलिए मुझे और भी अनोखे लगे । पहाड और पियार के वनो के सुर मे बँधे हुए उनके ये गीत यहो अच्छे लगने के है ।

महज चार आने पैसे थी उनके नाच की दक्षिणा । सभी अमलो ने

मुझ से कहा—" ये चार आने भी इन्हे सभी जगह नही नसीब होते हुजूर ! आप ज्यादा पैसे देकर उनका लोभ न बढाएँ, बाजार बिगड जायगा । दर से ज्यादा मिहनताना देने से गरीब गिरस्थ अपने यहाँ नाच नही करा पाएँगे ।"

मै तो दग रह गया । कम-से-कम सत्रह-अठ्ठारह आदमी दो-तीन घटे तक नाचते रहे थे । चार आने मे फी आदमी एक पैसा भी तो नही पडेगा ! नाच दिखाने के लिए यह घना जगल और इतना बडा प्रातर पार करके बेचारे इतनी दूर आए है । तमाम दिन की यही तो मजूरी है ! पास पडोस मे और कोई बस्ती भी नही कि कही रात का भी ठिकाना हो सके ।

रात को उनके रहने-खाने का इतजाम मैंने कचहरी मे ही कर दिया । सुबह दल के मुखिया के हाथो पर जब मैंने दो रुपए रख दिए, तो वह टुकुर-टुकुर मेरी तरफ ताकता रह गया—अवाक् ! नाच के बदले खाना कोई नही देता, फिर ऊपर से दो रुपए नकद !

नाच वालो के साथ बारह-तेरह साल का एक लडका था । ठीक जैसे यात्रा-दल* का कृष्ण हो । घुँघराले केश, बडा ही शात और सुन्दर चेहरा, बदन का रग कसौटी की तरह काला । वही पहले गाना शुरू करता और जब पैरो मे घुँघरू बाँधकर नाचता, तो होठो के कोनो पर हँसी थिरक कर जा छिपती । हाव-भाव बताते हुए, हाथ हिला-हिलाकर वह गाता—

" राजा, लीजिए सलाम मैं परदेशिया । "

महज एक जून भर-पेट खाने के लिए यह सलोना लडका उस मडली के साथ लग गया था । पैसे का हिस्सा उसे नसीब नही होता था । और खाना भी क्या, माढा और नमक ! बहुत हुआ, तो उसके साथ थोडी-सी तरकारी—आलू-परवल की नही, जगली गुरमी की भुजिया या सिझाया हुआ बथुआ या निनुआ । इसी पर हँसी उसके होठो से सदा लगी है । खासी तदुरुस्ती, अग-अग मे लावण्य का निखार !

---

*बिना पर्दे के नाटक खेलनेवाली मडली ।

मैंने दल के मुखिया से कहा—"मुनो, इस धतुरिया को यहाँ छोड़ जाओ। यही काम करेगा और खाएगा-पिएगा।"

दाढीवाला वह बूढा मुखिया एक अजीब आदमी था। बासठ की इस उमर में भी वह एक निरा बच्चा हो जैसे।

बोला—"वह यहाँ रह ही नही सकेगा हुजूर! गाँव के जाने-चीन्हे लोगो का सग-साथ है, इसीसे रह लेता है। अकेले कैसा तो करेगा जी उसका। बच्चा है, कैसे रहेगा? इसे आपके पास फिर ले आऊँगा हुजूर!"

छठा परिच्छेद

[एक]

जगल के अलग-अलग हिस्सो की नाप-जोख चल रही थी । इसी नाप-जोख के सिलसिले मे रामचन्दरसिह अमीन कुछ दिनो से बोमाइबुरू जगल मे रह रहा था । उस रोज सबेरे यह खबर मिली कि दो-तीन दिन हुए, रामचन्दरसिह अचानक पागल हो गया है ।

सुनते ही मै कई लोगो के साथ वहाँ गया । बोमाइबुरू खूब घना जगल नही , ऊँचे-नीचे खुले प्रातर मे बडे-बडे पेड, पेडो से रस्सियो-जैसी झूलती लताएँ, मानो जहाज के ऊँचे मस्तूलो मे रस्सियाँ बँधी हो । कही भी लोगो की बस्ती नही ।

पेड-पौधो की भीड से परे एक खुली जगह मे कसाल की छौनी वाले दो झोपडे । एक कुछ बडा, जिसमे अमीन रामचन्दरसिह रहता, उसी के पास दूसरे मे रहता अशर्फी टडेल । अपने झोपडे के अन्दर लकडी के मचान पर रामचन्दर आँखे बन्द किए सोया था । हम लोगो के जाते ही जल्दी-जल्दी उठ बैठा । मैने पूछा—"क्यो, बात क्या है रामचन्दर ? कैसे हो ?"

रामचन्दर ने हाथ जोडकर नमस्कार किया और चुप हो रहा ।

उत्तर दिया अशर्फी टडेल ने । बोला—"बात बडे अचरज की है बाबू, सुनकर आप विश्वास नही करेगे । मै खुद कचहरी जाकर इसकी इत्तला देना चाह रहा था , मगर इन्हे अकेला छोड कर जा ही कैसे सकता था ? घटना यो है कि कई दिनो से अमीन साहब रोज ही कहते है कि रात को कोई कुत्ता उन्हे आकर तग करता है । अमीन साहब यहाँ सोते है, मैं वहाँ, उस झोपडे मे सोता हूँ । दो-तीन दिन तो यो ही बीत गए । रोज ही वे कहते थे—रात को कही से एक कुत्ता आता है । मै मचान पर सोया रहता हूँ, वह कुत्ता मचान के नीचे काँउँ-काँउँ करता रहता है । चाहता है कि

वह मेरे पास आ जाय।' मै उनकी बाते सुनता और उडा देता। चार दिन पहले बहुत रात बीते उन्होने अचानक आवाज दी—'अशर्फी दौड कर आओ, वह कुत्ता आया है। लाठी लेते आना—मैने उसकी दुम को दबा रक्खा है।'

"मै जग पडा। लाठी और लालटेन लिए दौडा। जाते-जाते जो देखा हुजूर, कहने से विश्वास न होगा, मगर हुजूर के सामने झूठ कहूँ, इस नाचीज मे वैसी हिम्मत नही—उनके झोपडे से एक औरत निकल कर जगल मे चली गई। पहले तो मै सकपका गया। बाद मे अन्दर जाकर देखा, अमीन साहब बिस्तर टटोल कर दियासलाई ढूँढ रहे है। उन्होने पूछा—'कुत्ते को देखा तुमने ?'

"मैने कहा, 'कुत्ता कहाँ था बाबू, वह तो एक औरत थी।' वे बोले—'उल्लू कही का, मुझसे बेअदबी ? इस जगल मे आधी रात गए औरत कौन आ सकती है ? ' कबख्त कुत्ते की मैने दुम दबा रक्खी थी, उसका लबा कान मेरे बदन से लगा था। मचान के नीचे को-को कर रहा था। लगता है, तुमने भग पी रक्खी है। शिकायत लिख भेजूँगा सदर मे।'

"दूसरे दिन काफी रात तक मै चौकन्ना रहा। किसी वक्त आँख लगी नही कि अमीन साहब ने पुकारा। मै दौडता हुआ निकला। द्वार तक पहुँचा कि देखा, एक औरत उत्तरी घेरे से सटी-सटी जगल की तरफ जा रही है। लगा, जैसे मै भी जगल मे धँस पडा। इतनी ही देर मे वह कहाँ छिप सकती थी और जगल मे ही वह कहाँ जाती ? हम नाप-जोख करने वाले लोग, जगल के अत्ते-पत्ते की खबर रखते है। लाख ढूँढा, कही पता नही। मुझे कैसा भ्रम हुआ। मैने रोशनी पास ले जाकर जमीन को ध्यान से देखा। मेरे जूते के सिवाय उसके पाँवो का कही भी निशान न था।

"अमीन साहब से फिर मैने इसका जिक्र ही नही किया उस दिन। इस भयानक जगल मे हम ही दो आदमी रहते है। मारे डर के मेरे रोंगटे खड़े हो गए। बोमाइबुरू जंगल की बदनामी भी है। मेरे दादा कहते थे—एक बार पूर्णियाँ से उडद बेचकर वे घोडे पर सवार होकर चाँदनी रात

मे यहाँ से होकर घर लौट रहे थे। बोमाइबुरू पहाड पर, वहाँ वह जो बर-गद का पेड है न, उसी के नीचे उन्होने कम उम्र की हसीन लडकियो की एक टोली को नाचते देखा था। इधर उन्हे लोग 'डामाबानू' कहते है—एक किस्म की जिन्न कहिए। सूने जगल मे रहती है ये। इनका दाव चले, तो आदमी की जान ही ले ले।

"दूसरे दिन तमाम रात मै अमीन साहब के ही झोपडे मे रहा—जगकर नाप-जोख का हिसाब देखता रहा। धीरे-धीरे रात की आखिरी घडियो मे आँख लग गई। अचानक अपने बहुत ही पास कुछ आहट पाकर मै जग पडा और देखने लगा। अमीन साहब अपने बिस्तर पर सो रहे थे और उनके मचान के नीचे कोई घुस रहा था। मैने झुककर नीचे जो देखा, तो चौक उठा। अँधेरे के झिल-मिल प्रकाश मे पहले तो लगा कि एक औरत नीचे सिमट कर बैठी मेरी तरफ हँसती हुई ताक रही है—आपके पैरों पर हाथ रखकर कह सकता हूँ हुजूर, यह मैने अपनी आँखो, बिल्कुल साफ देखा था। उसके बालो की लटे तक मैने देखी। लालटेन छै-सातेक हाथ दूर पर रक्खी थी, जहाँ बैठकर मै हिसाब देख रहा था। और साफ देख सकूँ, इसके लिए मै ज्यो ही लालटेन लाने को गया कि कोई एक जीव अन्दर से निकल कर भागने लगा। लालटेन की आडी रोशनी दरवाजे पर पड रही थी। उस प्रकाश मे मैने देखा, एक कुत्ता है, मगर पूँछ से सिर तक एकदम सफेद—कही काला धब्बा तक नही।

"अमीन साहब जगकर चीख उठे—'क्या है ?' मैने कहा—'कुछ नही' कोई स्यार या कुत्ता होगा। अन्दर घुस रहा था।' अमीन साहब बोले—'कुत्ता ? कैसा कुत्ता ?' मैने कहा—'सफेद था।' एक निराश भरे-से स्वर मे अमीन साहब बोले—'तुमने ठीक देखा, सफेद था ? कि काला ?' मैने कहा—'सफेद ही था हुजूर।"

"मुझे कुछ अचरज-सा लगा। समझ नही सका कि कुत्ता सफेद के बजाय काला ही होता, तो अमीन साहब को कौन-सी शान्ति मिलती। वे सो गए, मगर मुझे इतना डर लग रहा था कि कोशिश करके भी आँखे न

लग सकी। खूब तडके जगा। जाने क्या सोच कर मैंने सावधानी से मचान के नीचे की तलाशी ली। नीचे मुझे बालो की एक लट मिली—वह लट मैंने रक्खी है, यह देखिए हुजूर। बाल औरत के ही सिर के थे। आखिर कहाँ से आए थे बाल ? घने काले और खासे मुलायम। कुत्ते के, खासकर सफेद कुत्ते के इतने लम्बे और काले बाल तो नही हो सकते ! यह पिछले इतवार यानी तीन दिन पहले की बात है। तब से अमीन साहब तो पागल ही हो गए है, मुझे डर हो रहा है, कही अब अपनी ही बारी न हो। "

चडूखाने की गप्प जैसी ही लगी। बालो की लट को मैंने अपने हाथ मे लेकर देखा, कुछ समझ नही सका। इसमे तो कोई शक ही नही कि बाल औरत के ही थे। और सबने यह भी बताया कि अशर्फी टडेल कम-से-कम नशेबाज तो नही है।

अमीन का झोपडा ऐसे प्रातर और जगल मे था कि वहाँ आदमी का नाम-निशान भी नही था। सबसे नजदीक पडनेवाली बस्ती नवटोलिया भी वहाँ से छै मील दूर थी। इतनी रात मे वहाँ कोई औरत आ कहाँ से सकती है, जबकि बाघ और बनैले सूअर के डर से साँझ होते ही कोई बाहर कदम तक नही रखता।

अगर अशर्फी टडेल की बात को सही मान ले, तो यह मामला बडा रहस्यमय है ! या यह मानना होगा कि इस पाँडव-वर्जित प्रदेश मे बीसवीं सदी को तो घुसने की राह नही ही मिली, उन्नीसवी सदी को भी नही मिली।

मैंने वहाँ का पडाव उठवा दिया। अमीन और अशर्फी टडेल को सदर कचहरी ले आया। रामचन्दर की हालत दिन-दिन बिगडती ही गई—धीरे-धीरे वह घोर पागल हो गया। तमाम रात चीखता-चिल्लाता, बक-झक करता, गीत गाता। मैंने डाक्टर बुलवाकर दिखाया। कोई नतीजा न निकला। आखिर उसका एक भाई आकर उसे घर लिवा ले गया।

इस घटना के छै मास बाद चैत महीने मे एक दिन दो आदमी मुझसे मिलने आए। एक बूढा था—साठ-पैंसठ से कम उम्र नही होगी उसकी।

दूसरा उसका बेटा था——बीस-बाईस का। बलिया के थे वे। चरी के जगल की कोशिश मे आए थे कि कोई इलाका मिल जाय, तो यहाँ अपनी गाय-भैंस लेकर रहे।

चरी के जगल सब-के-सब दिए जा चुके थे——एक बोमाइ-बुरू का जगल ही बाकी बचा था। मैने उसीको उनको सौप दिया। बूढा बेटे के साथ एक रोज जगल को देख भी आया। बेहद खुश हुआ। बोला——"काफी लबी घास है हुजूर——खासा जगल है। हुजूर की मिहरबानी न होती, तो ऐसा जगल मिलना मुश्किल था।"

रामचदर अमीनवाली बात मुझे याद न थी। होती भी तो बूढे से मैं नही कहता, क्योकि सुनकर अगर वह भाग जाता, तो जमीदार का नुकसान होता। उस घटना के बाद से आस-पास के लोगो मे से कोई भी उस जगल के प्रबन्ध के लिए आता ही न था।

महीना भर बाद बैशाख के आरभ की बात है——एक दिन वह बूढा कचहरी आया। बडा ही क्षुब्ध। उसके पीछे सिकुडा-सिमटा-सा खडा उसका वही लडका।

मैने पूछा——"माजरा क्या है?"

गुस्से से कॉपते हुए बूढे ने कहा——"इस शोहदे छोकरे को शासन के लिए हुजूर के पास ले आया हूँ। गिनकर इसे पचीस जूते लगाएँ, कि इसके होश ठिकाने आ जायँ?"

——"क्यो, हुआ क्या है?"

——"हुजूर से कहते शरम लगती है। यहाँ आकर यह दिन-दिन बिगडता जा रहा है। कोई सात-आठ दिन से लगातार मैने गौर किया है, कहते लाज लगती है हुजूर, बराबर घर मे से एक औरत निकलती है। एक ही तो झोपडी है——आठ एक हाथ की होगी। हम दोनो ही उसी मे सोते है। मेरी ऑखो मे धूल झोकना इतना आसान नही। लगातार दो दिन जब यही रवैया देखा, तो मैने उससे पूछा। वह तो जैसे आसमान पर से गिर पडा। कहा——'मुझे तो कोई खबर नही!' उसके बाद भी दो

दिन देखा—वही हाल। फिर मैंने इसकी खूब खबर ली। मेरी आँखो के सामने इस कदर बिगड जायगा? लेकिन परसो जब फिर से देखा, तो हुजूर के पास ले आया, जरा इसे सजा दे आप।"

मुझे अचानक रामचदर अमीनवाली बात याद आ गई। पूछा—"कितनी रात बीतने पर तुमने देखा?"

—"रात के आखिरी पहर मे ही ज्यादातर, यही दो-एक घडी रात रहते।"

—"तुमने ठीक ही देखा है, औरत थी?"

—"मेरी आँखो की जोत अभी उतनी मद नही पडी है हुजूर। बेशक औरत थी। उम्र भी ज्यादा नही। पहनावे मे कभी सुफैद साडी, कभी लाल तो कभी काली। एक दिन मैंने उसका पीछा भी किया था। कसाल के जगल मे वह कहाँ जो गायब हो गई, पता न चला। लौटकर देखा, यह लडका जैसे सोने का बहाना बनाए पडा है। आवाज देते ही चौककर उठ बैठा मानो नीद से जगा हो। मैंने समझा, इस मर्ज की दवा यहाँ के सिवाय और कही नही होगी, इसीलिए हुजूर के पास—"

मै उस लडके को अलग ले गया। पूछा—"तुम्हारे बारे मे यह सब क्या सुन रहा हूँ?"

उसने मेरे पाँव पकड लिए—"मेरी बातो पर यकीन करे हुजूर! मुझे खाक भी खबर नही इसकी। तमाम दिन भैंसो के पीछे जगल की खाक छानता हूँ—रात मे सोता हूँ तो मुर्दे की तरह। सुबह होने पर ही आँख खुलती है। घर को चाहे आग ही क्यो न लग जाय, मुझे होश नही रहता।"

मैंने कहा—"तुमने घर मे कभी किसी को घुसते नही देखा?"

—"जी नही। सो जाने पर बहदवास हो जाता हूँ मै तो।"

आगे और कोई बात नही हुई। बूढा खुश हो गया। उसने समझा ओट मे ले जाकर मैंने लडके को डाट-फटकार दिया है। इसके कोई पद्रह दिन बाद वह लडका मेरे पास आया। उसने कहा—"एक बात आपसे पूछने आया हूँ हुजूर। पिछली बार जब मै बाबूजी के साथ यहाँ आया था,

तो आपने मुझसे यह क्यो पूछा था कि तुमने घर मे कभी कुछ घुसते देखा है या नही ?"

"आखिर क्यो पूछना चाहते हो ?"

—"आजकल मेरी नीद बडी पतली हो गई है हुजूर—चाहे बाबूजी के बिगडते रहने से भय के कारण या और किसी वजह से हो। सो आज-कल मै रोज ही देखता हूँ कि किही से एक सादा कुत्ता आ जाता है। काफी रात होने पर आता है। किसी-किसी दिन आँख खुलते ही उस पर नजर पड जाती है। लगता है, यही कही था। धत्-धुत् करते ही भाग जाता है। कभी मेरी आँख खुलते ही चल देता है। जाने कैसे तो जान जाता है कि मै जग पडा हूँ। ऐसा तो खैर कई दिनो तक होता रहा। कल एक अजीब-सी बात हो गई। बाबूजी तक को इसकी खबर नही है, मै आपसे चुपचाप कहने चला आया हूँ। कल बहुत रात हुए जब आँख खुली, तो देखा, कुत्ता वहाँ है। कब घुस आया था, पता नही। धीरे-धीरे वह निकल रहा था। उधर जो कसाल का घेरा है, उसमे खिडकी जैसा फाँक बना है। उसमे से कुत्ता निकला और पलक मारने मे जो देर लगती है, उतने ही मे मैने देखा, एक औरत खिडकी के बगल से जगल की तरफ चली जा रही है। मै लपककर बाहर निकला, मगर कही कुछ नही दिखाई दिया। बाबूजी से मैने कुछ नही बताया। बूढे आदमी, सो रहे थे वे। मै तो कुछ समझ नही पाता। हुजूर कि माजरा क्या है।"

मैने भरोसा दिया—"वह आँखो का भ्रम है"—मैने कहा—"अगर वहाँ अकेले रहते हुए डर लगता हो, तो रात को यही आकर सोया करो।" अपनी कायरता के खयाल से वह शर्मिन्दा हो गया और चला गया, लेकिन मेरे जी की बेचैनी न गई। निश्चय किया कि अब यदि वैसा कुछ सुनू, तो दो प्यादो को वहाँ सोने के लिए भेज दिया करूँगा।

तब भी मै यह नही समझ सका कि बात कैसी सगीन है। और अत्यत ही अचानक अप्रत्याशित भाव से दुर्घटना हो गई, इसके तीन दिन बाद।

सबेरे नीद से जगा ही था कि समाचार मिला—'बोमाइबुरू के बूढे

इजारादार का लडका मारा गया।' घोडे से हम उसी वक्त चल पडे। वहाँ पहुँचकर देखा कि उनके झोपडे के पीछे कसाल और झाऊ के जगल मे नौ-जवान की लाश अभी भी पडी है। चेहरे पर भीषण भय और आतक की निशानी——मानो कोई विभीषिका देखकर दम घुटकर मर गया है। बूढे ने बताया——"रात की आखिरी घडियो मे वह अपने बिछावन पर नही था। मैने लालटेन लेकर उसकी खोज शुरू की, मगर सुबह से पहले तक उसकी लाश देखने को न मिली। लगता है, बिछावन मे उठकर उसने किसी चीज का पीछा किया था——क्योकि लाश के पास ही लाठी और लालटेन पडी थी। किसका पीछा किया था, यह कह सकना कठिन है। बालू पर सिर्फ उसी के पाँव के निशान मिले और किसी के नही, न आदमी के, न जानवर के। लाश पर भी चोट का कही दाग न था।" इस घटना के रहस्य की कोई मीमासा न हो सकी। पुलिसवाले आए। उनसे भी कुछ करते न बना——लौट गए। इससे लोगो मे एक ऐसा डर घर कर गया कि साँझ से बहुत पहले भी उधर कोई नही जाता था। कई दिनो तक तो ऐसा हो गया कि कचहरी मे अकेले सोए-सोए बाहर की धप् धप् धुली चाँदनी रात की उदासी और निर्जनता को देखकर एक अजाने आतक से प्राण काँप उठते। लगता, अब कलकत्ता भाग चलूँ, यह जगह अच्छी नही, यहाँ की चाँदनी रात रूप-कथा की राक्षसी रानी जैसी है, कभी भुला-फुसला कर मार डालेगी। यह मनुष्य की वास-भूमि तो नही ही है, है किसी और ही लोक के रहस्यमय, अशरीरी जीवो का राज्य। वही यहाँ युगो से बसते आ रहे है। आज यहाँ मनुष्यो का यह जो अनधिकार प्रवेश हो गया है, वह उन्हे नही सुहाता। मौका मिलने पर वे इसका बदला चुकाए बिना बाज नही आएगे।

[दो]

राजू पाँडे से जब अपनी पहली बार भेट हुई थी, उस दिन की मुझे आज भी खूब याद है। मै कचहरी मे बैठा हुआ काम कर रहा था। एक गोरा-गोरा-सा सुदर ब्राह्मण मेरे सामने नमस्कार करके आ खडा हुआ।

उम्र उसकी कोई पचपन-छप्पन की होगी , पर उसे बूढा बताना गलत होगा, क्योकि उसके जैसा गठीला बदन बगाल के बहुतेरे युवको का भी नही। ललाट पर तिलक, बदन पर एक सफेद चादर और हाथ मे एक छोटी-सी पोटली।

मेरे पूछने पर उसने बताया कि वह बडी दूर से आया है। यहा थोडी-सी जमीन-लेकर खेती करने का इरादा रखता है। बडा ही गरीब है। सलामी देने की जुर्रत नही। उसने पूछा कि अधबटैया पर थोडी-सी जमीन मिल सकेगी या नही ?

कुछ इस किस्म के आदमी होते है, जा अपने बारे मे ज्यादा कुछ कहना नही जानते , पर उनकी शक्ल देखने से ही मालूम पड जाता है कि ये सचमुच ही बडे दुखी है। राजू पाँडे की सूरत देखकर ही मुझे लगा, थोडी-सी जमीन के लोभ से यह धरमपुर परगने से इतनी दूर आया है। जमीन न मिलने पर लाचार लौट तो जायगा, मगर सारी उम्मीदो पर पानी फिर जायगा, दिल टूट जायगा बेचारे का।

नवटोलिया के उत्तर जगल मे मैने राजू को दो बीघे जमीन दी—बिना सलामी लिए ही कहिए। कह दिया—"खेत बनाकर जोतो-बोओ। शुरू के दो साल तुम्हे कुछ भी नही देना पडेगा। तीसरे साल से चार आना बीघा मालगुजारी देनी पडेगी।" तब भी यह कल्पना नही कर सका कि कैसे एक विचित्र आदमी को मैने जमीदारी मे बसाया !

वह भादो या कुआर के महीने मे आया, जमीन बदोबस्त लेकर लौट भी गया। झमेलो मे उसकी बात मै कतई भूल गया। दूसरे साल सर्दियो के आखीर मे एक दिन नवटोलिया कचहरी से लौट रहा था कि अचानक नजर पडा। पेड तले बैठकर कोई किताब पढ रहा है। मुझे देखकर झट से उसने किताब बद कर दी और खडा हो गया। वह राजू पाँडे था, मै पहचान गया। सोचा, बात क्या है कि पिछले साल जमीन बदोबस्त लेने के बाद से यह भूलकर भी कभी फिर कचहरी की तरफ झाँकने न आया ? मैने कहा—"क्यो पाँडेजी, आप यही है ? मै तो सोच रहा था, जगह-जमीन

छोड-छाड कर आप चल दिए! खेती की है कि नही?" देखा, राजू के चेहरे पर हवाइयाँ उडने लगी। रुक-अटककर कहने लगा—"जी, खेती तो जी, इस बार. . ."

मुझे क्रोध-सा हो आया। ऐसे लोग जबान के बडे मीठे होते है, भुला-फुसलाकर अपना उल्लू सीधा कर लेने मे कुशल। मैंने कहा—"डेढ साल गुजर गया, कभी आपकी चोटी के भी दर्शन नही हुए। जमीदार को अँगूठा दिखाकर मजे मे सारी फसल हजम किए लेते है। शायद भूल गए कि उपज का हिस्सा देना है?"

अचरज से राजू बडी-बडी आँखो से मुझे ताकता हुआ बोला—"फसल हुजूर? मै सोच भी नही सका कि उसका हिस्सा कैसे दूँ—चीना दाना . ."

मुझे यकीन न आया। कहा—"पिछले छै महीने से आप चीनादाना खाकर ही गुजारा कर रहे है? और कुछ नही उपजाया है? मकई?"

—"नही हुजूर, बडा जगल है। अकेला आदमी, कितना काटूँ आखिर! बडी-बडी मुश्किल से पद्रह कट्ठा तैयार किया है। आइए न हुजूर, एक बार चरणो की धूल दे।"

मै उसके पीछे हो लिया। कही-कही जगल इतना घना था कि घोडे को भी चलने मे तकलीफ हो रही थी। थोडी दूर पर बीघा-भर साफ-सुथरी जगह, उसी के बीच मे घास की दो छोटी और नीची झोपडी। एक मे वह आप रहता, दूसरी मे फसल। न थैला, न बोरा। जमीन पर ही चीना-दाना का ढेर लगा था। मैंने कहा—"आप इतने आलसी है पाँडेजी, मुझे मालूम न था। दो साल मे आप दो बीघा जगल भी नही काट सके?" सकपकाते हुए राजू ने कहा—"समय ही बहुत कम मिलता है हुजूर!"

—"क्यो, आखिर तमाम दिन करते क्या है आप?"

शर्माकर राजू चुप हो रहा। उसकी झोपडी मे ज्यादा चीजे नही थी। लोटे के सिवाय दूसरा कोई बर्तन भी न था। लोटा कुछ बडा था, उसी मे उसकी रसोई बनती थी। रसोई मे भात कहाँ, चीना-दाना उबाल लेता।

हरे सखुए के पत्ते पर उँडेल कर खाता, बर्तन की फिर जरूरत भी क्या थी! पानी का कुड पास ही था। और क्या चाहिए उसे।

• झोपडी के पास ही एक तरफ सिदूर लगी राधाकृष्ण की काले पत्थर की मूर्ति थी। समझा, राजू भक्त आदमी है। पत्थर की वेदी को फूलो से सजा रक्खा था, पास ही दो-चार पोथियाँ और किताबे धरी थी। समय कम मिलता है, यानी तमाम दिन शायद वह भजन-पूजन मे ही लगा रहता होगा। खेती कब करे?

राजू को आज ही मैंने पहली बार समझा।

हिदी राजू पाँडे अच्छी तरह जानता था, थोडी-बहुत सस्कृत भी। सो भी सब समय पढता नही, समय मिलने पर कभी-कभी हिदी की कोई किताब लेकर बैठता जरा देर—ज्यादातर वह ऊपर आसमान और पहाड की तरफ चुपचाप ताकता रहता। एक दिन देखा—छोटी-सी बही लेकर सरपत की कलम से वह न जाने क्या लिख रहा है। अच्छा, पाँडेजी कविता भी लिखते है क्या? मगर ऐसे लजीले और दुबके-से आदमी कि उनसे कोई बात निकाल लेना बडा कठिन काम था। अपने बारे मे कुछ भी कहना गवारा नही। एक दिन मैंने पूछा—"आपके और कौन-कौन है पाँडेजी?"

—"सभी है हुजूर। तीन लडके, दो लडकियाँ, विधवा बहन।"

—"उनका गुजारा कैसे चलता है?"

आसमान की ओर हाथ उठाकर वह बोला—"सब भगवान् चलाते है। उनके मुँह मे दो दाने दे सकूँ, इसीलिए तो हुजूर की शरण मे आया हूँ। जमीन तैयार कर लूँ—"

—"तैयार भी कर ले, तो दो बीघे से उतने बडे परिवार का भरण-पोषण हो सकेगा? और उसमे भी तो आप जी-जान से जुटते नही?"

पहले तो राजू ने इसका जवाब ही न दिया, फिर बोला—"जिदगी के दिन ही बडे थोडे है हुजूर। जगल काटते-काटते जाने कितनी बाते जी मे आती है, बैठकर सोचने लगता हूँ। यह जो वन-जगल है, बहुत ही अच्छी

जगह है यह। जाने कब से तरह-तरह के फूल खिलते हैं, चिडियाँ चहकती है। यहाँ हवा के साथ-साथ स्वर्ग के देवता मिट्टी पर कदम रखते है। जहाँ कौडी का लोभ है, जहाँ लेन-देन का लेखा-जोखा चलता है, वहाँ की हवा जहरीली हो उठती है। वैसी जगह देवता नही रहते , इसलिए जब-जब मै यहाँ कुल्हाडी उठाता हू, देवता उसे हाथ से छीन लेते है। कानो मे चुप-चाप ऐसी-ऐसी बाते कहते है, जिससे धन-जायदाद से मन हटकर बहुत दूर चला जाता है।"

मैंने समझा—राजू कवि तो है ही, दार्शनिक भी है।

मै बोला—"लेकिन पाँडेजी, देवता यह तो नही कहते कि घर खर्च मत भेजा करो, मारे घरवाले फाके किया क े। ये बेकार की बाते है। आप जी से काम कीजिए, नही तो मै जमीन छीन लूँगा!"

कुछ महीने यो ही बीत गए। बीच-बीच मे राजू के पास भी जाता रहा। बडा ही भला लगता था वह मुझे! नवटोलिया बैहार के उस निर्जन और घने जगल मे एक फूस की झोपडी मे वह कैसे दिन काटता था। समझ नही पाता।

सचमुच ही वह सात्त्विक प्रकृति का आदमी था। चीना के सिवाय और कुछ वह नही उपजा सकता। सात-आठ महीने का अरसा उसी पर काटता रहा। कभी किसी से भेट-मुलाकात नही , दो बाते करे, ऐसा कोई आदमी नही। फिर भी उसे कोई असुविधा नही थी। मजे मे रह रहा था। जब कभी भी दोपहर के समय मै उधर से गुजरता, उसे खेत पर काम करते पाता। साँझ को प्राय उसे उस बहेडे के पेड के नीचे चुपचाप बैठा पाता—कभी हाथ मे बही लिए, कभी यो ही।

एक दिन मैंने उससे कहा—"पाँडेजी, आपको थोडी-सी जमीन और दिए देता हूँ, आप ज्यादा खेती करे, नही तो घर के लोग भूखो मरेगे।"

बडा ही शात प्रकृति का था वह। उसे कोई बात समझाने मे दिक्कत नही पडती थी। उसने जमीन तो ले ली , मगर अगले छै महीनों मे खेत नही तैयार कर सका। सुबह से पूजा और गीता-पाठ मे ही दस बज जाते,

फिर काम पर निकलना। कोई दो घटे मेहनत के बाद रसोई और भोजन तैयार करता, उसके बाद दोपहर भर जी-तोड मेहनत—साँझ के पाँच बजे तक। लौटकर पेड-तले बैठा जाने क्या-क्या सोचता। साँझ के बाद फिर पूजा-पाठ।

उस साल राजू ने थोडी-सी मकई उपजाई। वह फसल उसने खुद नही रक्खी। घर भेज दी। उसका बडा लडका आकर मकई ले गया। उसका लडका मुझसे मिलने आया था। उसे मैंने डाट बताई—"शरम नही आती तुम्हे, बूढे बाप को इस सूने जगल मे भेजकर आप घर बैठे गुलछर्रे उडाते हो ? तुम लोग कुछ कमाने की कोशिश क्यो नही करते ?"

[तीन]

उस बार मूअरमारी गाँव मे जोरो का हैजा फैला। मुझे खबर मिली। वह गाँव अपने इलाके मे नही पडता। कोई आठ-दस कोस दूर पर था—कोसी और कलबलिया नदी के किनारे। रोजाना इतने लोग मरने लगे कि कोसी नदी मे लाशे फेकी जाने लगी—जलाने का कोई इतजाम नही। एक दिन यह भी पता चला कि राजू पाँडे वहाँ इलाज करने के लिए गया है। मैं यह नही जानता था कि राजू चिकित्सक भी है। मैंने कुछ दिनो तक होमियोपैथी दवाओ से नाता रक्खा था। सोचा, ऐसे मे अगर लोगो के कुछ काम आ सकूँ तो अच्छा है। यहाँ तो डाक्टर-वैद कुछ है ही नही। मे साथ-साथ कचहरी से और भी कुछ लोग वहाँ गये। राजू पाँडे से भेट हुई। एक बटुए मे कुछ जडी-बूटी लिए वह इसके-उसके घर घूम रहा था। उसने मुझे नमस्कार किया और कहा—"हुजूर बडे रहमदिल है। आप आ गए, कुछ लोग शायद बच जाएँ।" उसने कुछ ऐसा भाव दिखाया, मानो मै जिले का सिविल सर्जन होऊँ। वही मुझे रोगियो के घर-घर ले जाने लगा।

राजू सबको उधार ही दवा दे रहा था। चगा होने पर दाम चुकाने की शर्त थी। झोपडो मे गरीबी की कैसी दर्दनाक तसवीर। फूँस या खपडे

के घर, बडे ही तग कमरे, खिडकी नदारद—धूप-हवा आने-जाने की कोई गुजाइश ही नही। जो भी घर थे, लगभग सब मे एक-दो रोगी मैले-कुचैले बिस्तर पर पडे। न डाक्टर, न दवा, न पथ्य। राजू मे जितनी शक्ति थी, वह कोशिश कर रहा था। बिना बुलाए ही वह हर रोगी के घर जा-जाकर अपनी जडी-बूटी पिला रहा था। एक रात तो वह किसी रोगी बच्चे की जगकर तीमारदारी भी करता रहा। लेकिन बीमारी घटने के बजाय बढती ही चली जा रही थी।

वह मुझे एक घर मे लिवा ले गया। घर क्या, महज एक कमरा। फूँस की छौनी। रोगी जमीन पर ताड की चटाई पर सोया था। उमर पचास से कम नही होगी। दरवाजे के पास एक सत्रह-अठारह साल की लडकी बैठी जार-बेजार रो रही थी। राजू ने उसे दिलासा देते हुए कहा—"रो मत बिटिया, हुजूर आ पहुँचे है, अब कोई खतरा नही। रोगी भला-चगा हो जायगा।"

अपनी बेबसी को सोचकर बडा शर्मिदा हुआ मै। मैने पूछा—"यह लडकी बूढे की बेटी है, क्यो ?"

राजू बोला—"नही हुजूर, यह उसकी बीबी है। इसके दुनिया मे कोई नही है। विधवा माँ थी, इसे ब्याहते ही चल बसी बेचारी। इस बूढे को बचा लीजिए हुजूर, नही तो यह लडकी कही की न रह जायगी।"

कुछ जवाब देने ही जा रहा था कि मेरी नजर रोगी के सिरहाने के पास के ताख पर पडी। लकडी का ताख, रोगी के बिस्तर से दो-तीन हाथ की ऊँचाई पर। उस पर पत्थर के बर्तन मे थोडा-सा बासी भात खुला पडा था। मक्खियाँ भिनक रही थी उस पर। क्या गजब था। घर मे एशियाटिक कालरा का रोगी और उसके पास ही बिना ढँका बासी भात।

दिन-भर रोगी के सेवा-जतन से थककर यह गरीबिन शायद नमक-मिर्च मिलाकर उसी बासी भात को चाव से खा लेगी। यही जहरीला भात, जिसके एक-एक दाने मे मौत के बीज है। उस लडकी की आँसू-भरी दो

भोली आँखो की ओर देखकर मै सिहर उठा। राजू से मैने कहा—" उससे कहो, यह भात उठाकर फेक दे। इस घर मे कोई खाने की चीज नही रखनी चाहिए।"

भात फेक देने की जो बात आई, तो वह लडकी अचरज से हमारा मुँह ताकने लगी। आखिर वह भात फेक कैसे दे? खायगी क्या? वह थोडा-सा भात कल रात उसे ओझाजी के यहाँ से खाने को मिला था।

मुझे याद आया, अपनी तरफ जैसे पूडी-पुलाव होता है, भात इधर का वैसा ही कीमती खाना है। फिर भी मैने जरा कडक कर कहा—" तुम इसे उठाकर फेक दो—अभी, तुरत।"

डरती-डरती वह उठी और भात को ले जाकर बाहर फेक दिया।

लाख जतन करने पर भी उसके पति को बचाया न जा सका। साँझ के बाद ही बूढे ने आखिरी साँस ली। वह लडकी बेजार रोई। राजू भी उसके साथ रोते-रोते बेदम था।

राजू मुझे एक और घर मे ले गया। वह उसके दूर के रिश्ते मे साला लगता था। यहाँ आने पर राजू पहले यही ठहरा था। यही खाता-पीता था। इस घर मे माँ और बेटा, दोनो को हैजा हो गया था। दोनो अगल-बगल के कमरे मे थे। यह उसे और वह इसे देखने को बेचैन। लडका महज सात-आठ साल का।

पहले लडका गुजरा। माँ के कानो मे इसकी खबर तक नही होने दी गई। मेरी दवा से माँ की हालत धीरे-धीरे सुधरने लगी। वह बार-बार अपने बेटे की खोज करती—बगल के कमरे से उसकी कोई आहट क्यो नही मिलती? कैसा है मेरा बच्चा?

हम बताते—" उसे नीद की दवा दी गई है। सो रहा है वह।"

बच्चे की लाश छिपाकर धीरे-धीरे बाहर निकाली गई।

गाँव के लोग स्वास्थ्य के नियमो के सम्बन्ध मे कुछ जानते ही न थे। एक ही पोखर, उसी मे कपडे फीचते, उसी मे नहाते। मैने लाख सिर मारा, मगर यह बात उनके दिमाग मे न घुसा सका कि नहाना और पानी पीना,

बात एक ही है। जाने कितने लोग कितने परिवारो को यो ही छोडकर भाग गए। एक घर मे सिर्फ एक रोगी को ही पाया—दूसरा कोई न था। वह रोगी उस घर का घरजमाई था—बीते साल उसकी बीबी मर गई। फिर भी वह वही था—बुरी दशा थी उसकी, इसलिए या और किसी कारण से हो, ससुराल से वह कही नही गया। अभी उसे हैजा जो हुआ, तो ससुराल वाले उसे छोडकर जाने कहाँ चल दिए। राजू रात-दिन उसकी सेवा करने लगा। दवाई की व्यवस्था मैने कर दी। आखिर वह बच गया। मै समझ गया, उसके भाग मे ससुराल के अन्न पर पलने का अभी बहुत दु ख लिखा है। राजू को अपने इलाज की कमाई बटुए मे से निकाल कर गिनते हुए देखकर मैंने पूछा—"कितनी रकम जोडी है ?" गिनकर राजू ने बताया—"एक रुपया तीन आने हुजूर।"

इतनी ही रकम मे वह मगन था। इधर के लोग मुश्किल से एक पैसा देख पाते है, उस हिसाब मे एक रुपया तीन आने की कमाई कम न थी। पद्रह-सोलह दिनो से राजू को बेहद काम करना पडा—डाक्टर भी वही, नर्स भी वही।

काफी रात बीते गाँव में से रोने की आवाज उठी। फिर कोई मरा। रात को मुझे नीद नही आई। गाँव के बहुतेरे लोग नही सोए। घर के आगे लकडी के कुदे जलाकर गधक जलाते रहे, आग के पास बैठ-बैठे बाते करते रहे। रोग और मौत, प्रत्येक व्यक्ति की जुबान पर इसके सिवा कोई बात ही नही। सबके चेहरो पर भय और आतक की झलक—न जाने कब किसकी बारी आ जाय!

आधी रात को समाचार मिला, साँझ के समय जो लडकी विधवा हो गई थी, अब उसको हैजा हो गया। मै देखने गया। पास ही किसी दूसरे के घर की गोशाला मे वह पडी थी। मारे डर के वह अपने घर नही सो सकी, लेकिन चू कि उसने हजे के रोगी को छूआ था, इसलिए किसी ने उसे अपने घर पनाह तक न दी। गोशाला के एक ओर गेहूँ की बिचाली पर एक पुराना टाट बिछा था। वह उसी पर पडी तडप रही थी। राजू और मैंने

उस अभागिन को बचाने की बहुतेरी कोशिशे की। कही कोई लालटेन नही मिली, पानी नही मिला। कोई झाँककर देखने तक नही आया। कुछ ऐसा आतक फैल गया था कि किसी को हैजा होने पर उसकी घर की सीमा तक मे कोई पैर नही रखता था।

सबेरा होने को आया।

राजू को नाडी की बडी पहचान थी। हाथ देखकर बोला—"हुजूर, लक्षण तो कुछ अच्छा नही दीखता।"

मै ही क्या करता। डाक्टर तो था नही। पानी चढा पाता, तो कुछ उम्मीद थी। इधर वैसा कोई डाक्टर भी नही।

नौ बजे वह लडकी गुजर गई।

हम नही होने तो उसकी लाश निकाली भी जाती या नही, नही कह सकता। बडी आरजू-मिन्नत के बाद दो अहीर आए। बॉस से ढकेलते हुए वे लाश को नदी तक लुढका ले गए।

राजू बोला—"जी गई बेचारी। विधवा, फिर छोटी-सी लडकी। क्या खाती बेचारी और उसकी देख-भाल ही कौन करता।"

मैने कहा—"तुम्हारी तरफ के लोग बडे निर्दयी होते है।" मुझे एक कचोट रह गई कि मैने उस बेचारी लडकी को जतन से रक्खा हुआ दो मुट्ठी भात भी क्यो नही खाने दिया।

[चार]

सुन-सान दोपहरी मे सुदूर महालिखारूप के पहाड और जगल अजीब रहस्यमय से लगते। कितनी ही बार सोचा कि पहाड की सैर कर आऊँ, मगर फुर्सत नही निकल सकी। सुनता आ रहा था कि वह पहाड दुर्गम जगलो से भरा है, शखचूड सॉपो की बहुतायत है। मुश्किल से पाई जाने वाली जगली चद्रमल्लिका तथा भालुओ के अड्डे भरे है। पहाड पर पानी नही मिलता, फिर खौफनाक शखचूड सॉपो का खतरा! सो लकडहारे भी वहाँ जाने की हिम्मत नही करते।

क्षितिज पर खिची नीली लकीर-जैसी दिखनेवाली यह शैल-माला और जगल दोपहर और साँझ को जाने कितने सपनो से मन को भर देते। एक तो यह इलाका ही इन दिनो मुझे परियो के देश-सा लगने लगा था—इसकी चाँदनी, इसकी जगली-झाडियाँ, निर्जनता, इसका नीरव रहस्य, इसका सौदर्य, इसके लोग-बाग, वन-फूलो की शोभा—सब कुछ अद्भुत से लगते। मन मे एक ऐसी गहरी शाति और आनद भर देते, जो जीवन मे और कही भी कभी नही मिला। फिर महालिखारूप की यह पर्वतश्रेणी और मोहनपुरा रिजर्व फॉरेस्ट की सीमा-रेखा और भी अद्भुत लगती। दोपहर, साँझ और चाँदनी रातो मे ये रूप-लोक की रचना करते हुए मन मे उदास चिन्ता कैसे ले आते ?

आखिर मै एक रोज उस पहाड पर जाने को निकला। नौ मील की दूरी घोडे से तै की। फिर दोनो पहाडो के बीच की पगडडी से चलना शुरू किया। अगल-बगल घनघोर जगल। उस अद्भुत जगल के बीच से आँकी-बाँकी पगडडी, ऊँची-नीची। बीच-बीच मे चट्टानो मे से बहते हुए पहाडी झरने। वन्य चद्रमल्लिका के दर्शन तो नही नसीब हुए, क्योकि शरत् के दिन थे, उसके खिलने का समय नही था , मगर जगली हरसिगार का अवर्णनीय मेला तमाम जगल मे लगा था—पेडो के नीचे, चट्टानो पर, झरनो के किनारे फूलो का मानो बिछौना बिछ गया था। बरसात के इन आखिरी दिनो मे जाने कितनी ही तरह के और फूल फूले थे—खिले सप्तपर्ण के वन, अर्जुन और पिपार, तरह-तरह की वन-वल्लरियाँ और आर्किड के फूल। सभी फूलो की मिली-जुली खुशबू मधुमाही के समान मनुष्यो को भी नशे से मतवाला बना देती।

यहाँ रहते हुए बहुत दिन हो गए मुझे , पर यह सौदर्य-भूमि मेरे लिए अब तक अजानी ही रही। मै यहाँ डरते-डरते आया था—यहाँ कितने ही बाघ है, शखचूडो का अड्डा है, भालुओ का तो लेखा ही नही , मगर इतनी दूर निकल आया, कही तो भालू की झलक तक नही मिली। लोग तिल का ताड बनाकर कहते है शायद।

पगडडी के किनारे के जगल क्रम से घने हो आए, मानो दोनो तरफ से राह को दबा बैठे हो। ऊँचे पेडो की डालो ने राह पर चॉदनी बिछाई। घने पेडो की काली जडो की भीड उनके नीचे भिन्न-भिन्न प्रकार के फर्न, कही-कही बडे पेडो के ही पौधे खडे थे। सामने राह उस भीड को ठेलती हुई ऊपर उठती नजर आई। जगल की सघनता और भी श्याम हो उठी। सामने ही खडी थी पहाड की एक चोटी। उस पर जो पेड खडे थे, वे नीचे से सिहोड की नन्ही झाडियो जैसे दीख रहे थे। मै पहाड पर काफी दूर तक गया, वहॉ से राह फिर नीचे को उतर गई थी। थोडी दूर तक मै उतरा। एक पिपार के पेड से घोडे को बॉधकर मै एक चट्टान पर बैठ गया, ताकि घोडा जरा देर आराम कर ले।

पहाड की वह ऊँची चोटी अचानक कब बाई ओर को मुड गई। पहाडी इलाके मे यह एक मजेदार बात मै बराबर देखता रहा हूँ, न जाने और कहॉ कौन-सी चोटी थोडी ही दूर के फासले पर अलग-अलग नज्जारा पेश करने लगती है। अभी जिसे ठीक उत्तर की तरफ देखा, दो-चार कदम गया नही कि यह अनुभव किया कि वह जाने कब पश्चिम को मुड गई।

कुछ देर चुप बैठा रहा। पास ही कही कोई झरना बह रहा था। उसका झर-झर स्वर इस पहाडियो से घिरे जगल की निस्तब्धता को और भी बढा रहा था। मेरे चारो तरफ पहाड की ऊँची-ऊँची चोटियो और उन चोटियो पर था शरत् का नीला आकाश। न जाने कब से ये जगल और पहाड ऐसे ही है। बहुत-बहुत दिन पहले आर्यों ने जब खैबर की घाटी को पार करके पहले-पहल पजाब मे प्रवेश किया था, तब भी यह जगल ऐसा ही था। अपनी नवीना पत्नी को सोते हुए छोडकर जिस रात बुद्धदेव ने चुपचाप ससार का त्याग किया था, उस रात भी यह गिरि-शिखर गहरी रात की चॉदनी मे इसी तरह हँसता था, तमसा नदी के किनारे पर अपनी पत्तो की झोपडी में रामायण लिखने मे निमग्न वाल्मीकि ने सहसा कब चौंककर देखा कि —सूरज अस्ताचल पर पहुँच गया है, नदी के श्याम जल पर रक्तमेघो के समूह की छाया पडी है, आश्रम के मृग लौट आए है—उस दिन भी पश्चिमी

क्षितिज की अतिम रगीन आभा से महालिखारूप की चोटियाँ ऐसी ही अनुरजित हुई थी, जैसी कि आज मेरी आँखो के सामने हो रही है। जाने कितने दिन पहले, जिस दिन चद्रगुप्त राजगद्दी पर पहली बार बैठे, ग्रीस के राजा हेलिओडोरस ने गरुडध्वज स्तभ का निर्माण किया, जिस दिन राजकुमारी सयुक्ता ने स्वयवर-सभा मे पृथ्वीराज की मूर्ति के गले मे वरमाला डाल दी, सामूगढ की लडाई मे मुँहकी खाकर अभागा दारा शिकोश जिस दिन आगरा से दिल्ली भागा, चैतन्य महाप्रभु ने जिस दिन श्रीवास के यहाँ कीर्त्तन किया, जिस रोज पलासी के मैदान मे घनघोर लडाई हुई—महालिखारूप की ये चोटियाँ, यह जगल, सब-कुछ ऐसा ही था—ठीक ऐसा ही। उन दिनो यहाँ कौन लोग रहते थे? यहाँ से कुछ ही दूरी पर फूँस के कुछ घरो का एक गाँव देख आया था। लकडी के दो-एक टुकडो के सहारे बना हुआ ढेकी-जैसा कुछ था, जिससे लोग महुए का तेल निकाला करते थे। वहाँ एक बुढिया को देखा, अस्सी-नब्बे की उम्र होगी उसकी, सारा सिर सन-जैसा सफेद, तमाम बदन रूखा। धूप मे बैठी शायद वह माथे से जूँ बीन रही थी—ठीक कवि भारतचद्र द्वारा वर्णित अन्नपूर्णा जैसी। बैठे-बैठे मुझे उस बुढिया की याद हो आई। इस वन्य अचल की पुरानी सभ्यता की प्रतीक वही बुढिया है—उसी के पुरखे हजारो साल से इस इलाके मे बसते आ रहे है। जिस रोज महात्मा ईसा क्रूस से मारे गए थे, उस रोज भी वे लोग जिस तरह महुए के बीजो से तेल निकाल रहे थे—आज भी उसी तरह निकाल रहे है। अतीत के घने कुहरे मे हजारो साल की अवधि गुम हो गई है, मगर ये आज भी बाँसो की नलियो से उसी तरह चिडियो का शिकार कर रहे है। ईश्वर या ससार के बारे मे उनकी विचार-धारा जहाँ-की-तहाँ है, तिल-भर भी इधर-उधर नही हुई। उस बुढिया की विचार-धारा क्या है, यह मालूम हो सके, तो मै अपनी साल-भर की सारी कमाई देने को तैयार हूँ।

मेरी समझ मे नही आता कि किसी-किसी जाति मे सभ्यता का ऐसा कौन-सा भेद छिपा रहता है कि जैसे-जैसे दिन बीतते जाते है, उन्नति

की राह से वह आगे निकलती जाती है। फिर दूसरी जाति हजारो साल के अरसे मे भी जड की तरह जहाँ-की-तहाँ क्यो रह जाती है? चार-पाँच हजार वर्षों की अवधि मे बर्बर आर्य जाति ने वेद, उपनिषद्, पुराण, काव्य, ज्योतिर्विद्या, ज्यामिति, चरक-सुश्रुत की चर्चा की, देशो को जीता, साम्राज्यो की नीव डाली, वेनस द्यमिलो की मूर्ति, पर्थिनन, ताजमहल और कोलो कैथिड्रल का निर्माण किया, दरबारी कानडा और फिफ्थ सिम्फोनी की सृष्टि की—हवाईजहाज, जहाज, रेल, बेतार, बिजली का आविष्कार किया—लेकिन पपुआ, न्यूगिनी, आस्ट्रेलिया के आदिम अधिवासी हमारे यहाँ के मुडा, कोल, नागा, कुकी लोग इन पाँच हजार वर्षो मे भी वही-के-वही क्यो रह गए है?

आज मै जहाँ बैठा हूँ, किसी अतीत युग मे यहाँ महासमुद्र लहराता था—उस पुराने महासमुद्र की लहरे कैबियन युग के इस बालुकायम तीर पर आकर पछाडे खाती थी, जो आज पहाडो मे बदल गया है। घने जगल के बीच बैठकर मैं अतीत के उस नीले समुद्र का सपना देखने लगा—

पुरा यतः स्रोतः पुलिन मधुना तत्र सरिताम्

बालुका-प्रस्तर के इस शिखर पर भूले अतीत का वह सागर अपनी उन्मत्त लहरो की निशानी छोड गया है—वह निशानी बहुत ही साफ है—भूतत्त्वविद् उस निशानी को पहचान सकते है। उन दिनो आदमी नही थे, इस तरह के पेड-पौधे भी नही थे। जैसे जीव-जतु और पेड-पौधे उन दिनो थे, इन पत्थरो की छाती पर वे अपनी छाप छोड गए है—जिस किसी भी जादूघर मे उनके नमूने देखे जा सकते है।

महालिखारूप पहाड के माथे पर तीसरे पहर की धूप रगीन हो उठी। हरसिगार के वन से आने वाली महमहाती हवा मे हेमत का हलका आभास। यहाँ और देर करना उचित न था, कृष्णा एकादशी की अँधेरी रात सामने थी। जगल मे कही स्यारो का दल हुक्का-हुआ कर उठा—कही बाघ-भालू राह न रोक ले।

लौटते समय एक चट्टान पर मैने जगली मोर देखा। वह जोडा था।

घोडे से डर कर मोर तो उड भागा, लेकिन मोरनी टस-से-मस न हुई। मुझे बाघ के खतरे से चलने की जल्दी थी, देखने का अवकाश न था। फिर भी मोरनी के सामने मै ठिठक गया। जगली मोर मैने देखा नही था। लोग-बाग कहते थे कि इधर मोर है , पर यकीन नही आता था। ज्यादा देर रुकने की हिम्मत नही हुई। क्या पता, यहाँ के बाघो की जो चर्चा है, कही वह भी मोरो की बात-जैसी ही सच न निकल आए !

सातवाँ परिच्छेद

[एक]

अपने गाँव जाने के लिए जी का छटपटाना एक अजीब अनुभूति है। जो आजीवन एक ही जगह रह जाते हैं, अपने गाँव को छोडकर कही नही जाते, ऐसे लोग इसके वैचित्र्य को हर्गिज नही समझ सकते। जो किसी दूर देश मे , सगे-सम्बन्धियो से अलग लम्बे दिनो तक रह चुके है, वे खूब समझ सकते है कि अपने देश जाने के लिए, देशभाइयो से मिलने के लिए, मन किस तरह हाहाकार करता है। ऐसे मे एक निहायत मामूली-सी घटना भी अनोखी हो उठती है। लगता है, जो कुछ गुजर चुका है, वह फिर कभी नही होने का—और तब सारी दुनिया उदास-सी दीखती है, अपने यहाँ की एक-एक चीज बेहद प्यारी लगने लगती है।

बरसो इधर बिताने के बाद अपनी भी ठीक वही हालत हो गई है। छुट्टी के लिए लिखने की बात बहुत बार मन मे आई, लेकिन जिम्मेदारी इतनी ज्यादा रही कि लिखने मे सकोच अनुभव किया , परन्तु इस वीरान जगल-पहाडो मे महीनो और बरसो बाघ-भालू और नीलगायो के बीच बिताना भी एक कठिन बात है! कभी-कभी जी हाँफ-सा उठता। अपनी बग-भूमि को भूल बैठा था। जाने कितने दिन हो गए दुर्गापूजा देखे, जमाने से चडक पूजा का ढोल भी नही सुना। मन्दिरो से उठने वाली धूप-गूगल की गध तक नही मिली। वैशाखी के प्रभात का विहग कल-कूजन सुनने को नही मिला—बगाल की वह गिरस्ती, शात-पूत काम, चौकी पर काँसे-पीतल के बर्तन, पीढे पर आँकी आल्पना, ताखो पर रक्खी लक्ष्मी की पिटारी— ये मानो सुदूर अतीत के भूले हुए जीवन-स्वप्न हो।

जाडो के बाद गरमी के दिन आए तो मेरा मन और भी उचाट हो गया।

ऐसे ही समय मै घोडे पर सवार होकर सरस्वती कुड की तरफ घूमने गया। घोडे से उतर कर एक उपत्यका पर मै चुपचाप खडा हो गया। मेरे चारो तरफ माटी के ऊँचे-ऊँचे टीले थे तथा टीलो पर झाऊ और कसाल के घने जगल। ठीक मेरे माथे पर टँगा था थोडा-सा नील आसमान। काँटो से भरे एक पौधे मे बैगनी रग के फूलो के गुच्छे लगे थे, देखने मे ठीक विलायती कार्न फ्लावर के समान। उनमे से अलग एक फूल में खास कोई शोभा नही, इकट्ठे बहुत-से फूल एक बैगनी साडी-से दिख रहे थे। वर्ण वैचित्र्यहीन अधसूखी कास के इस वन मे ये थोडे-से फूल मानो बसन्तोत्सव मे मतवाले हो रहे थे और झाऊ के नीरव, रूखे अरण्य इन्हे निहायत अवज्ञा और उपेक्षा की निगाहो से देखकर मुँह फिराए प्रवीणता के धीरज से उसे बर्दाश्त कर रहे थे। उन्ही जगली बैगनी फूलो ने मेरे कानो मे बसत-आगमन की वाणी सुनाई। फूल भी, कुछ नीबू के नही, आम की मजरी नही, कामिनी फूल, रक्तपलाश या सेमर के फूल नही, एक नाम-गोत्र-हीन तुच्छ बेढगे जगली कँटीले फूल! वही फूल मुझे बाग-बगीचो मे भरे बसत के कुसुम-सभार के प्रतीक से प्रतीत हुए। देर तक वहाँ निमग्न खडा रहा। मै था बग-भूमि की सतान, कुछ जगली फूलो द्वारा डाली सजाकर बसत का मान रखना मेरे लिए बिल्कुल नई बात थी। मगर उस ऊँची उपत्यका के जगल की शोभा कैसी मनोरम थी! कैसे ध्यान-निमग्न, उदासीन, विलास-हीन, सन्यासी-जैसा रूखा चेहरा था उसका, लेकिन कितना विराट्! उस अधसूखे फूल-पत्तो से रहित वन की निस्पृह आत्मा और नीचे के इन वन्य बर्बरो तरुणो के वसन्तोत्सव की आडम्बर-हीन प्रचेष्टा के उच्छ्वसित आनन्द से मेरा मन एकाकार हो गया।

अपने जीवन का वह भी एक अद्भुत क्षण था। कुछ देर तक मै यो ही खडा रहा। ऊपर के उस एक टुकडे नीले आसमान पर दो-एक नक्षत्र उग आए। ऐसे मे अचानक घोडे की टाप सुनाई पडी। मैने देखा, पूरनचन्द अमीन नाढा बैहार मे नाप-जोख का काम खत्म करके कचहरी लौट रहा

है। मुझ देखकर वह घोडे पर से उतर पडा। बोला—"हुजूर यहाँ कहाँ ?"

मैने कहा—"यो ही घूमने आ गया था।"

वह बोला—"साँझ के समय यहाँ हर्गिज अकेले न रहे, कचहरी लौट चलिए। यह जगह अच्छी नही है। मेरे टडेल ने अपनी आँखो देखा है—उधर के उस कास-वन मे बहुत बडा बाघ था। चलिए हुजूर यहाँ से।"

पूरनचन्द के टडेल ने दूर पर गाना शुरू कर दिया था—

दया होई जी !

उस दिन से उन बैंगनी फूलो पर नजर पडते ही मेरा मन बगाल जाने के लिए न जाने क्यो रो उठता। और रोज साँझ को अमीन पूरनचन्द का टडेल छट्टूलाल रोटी बनाते समय इसी गीत को शुरू कर देता—

दया होई जी !

मुझे लगता, फागुन के आते-आते मँजराये आमो की गध-भरी छाया मे खिले सेमरो वाले नदी के इस पार खडे होकर कोयल की कूक सुनने का सुअवसर शायद इस जीवन मे कभी भी नही मिलने का—किसी दिन इसी बीरान जगल मे बाघ-भैंसो के हाथ यो ही जान गँवानी पडेगी।

झाऊ के जगल वैसे ही स्थिर खडे रहते, सुदूर वन के माथे से मिला हुआ क्षितिज वैसा ही धुँधला और उदास दीखता।

ऐसे ही एक दिन, जब कि गाँव जाने के लिए जी न जाने कैसा-कैसा हो रहा था, रासबिहारीसिह के यहाँ से होली का न्योता आया। रासबिहारी-सिह इस इलाके का बडा ही जाबिर महाजन था। जाति का रजपूत, कारो नदी के किनारे खासमहाल का रैयत था। अपनी कचहरी से बारह-चौदह मील उत्तर-पूरब कोने पर मोहनपुरा रिजर्व फॉरेस्ट से सटा हुआ गाँव था उसका।

न्योता न मानना भी ठीक न था, मगर उसके घर जाने की भी मेरी इच्छा न थी। इधर के जितने भी गगोते रैयत थे, सब का महाजन वही था। गरीबो का लहू चूस-चूस कर वह आप बडा आदमी बना था। उसके

रौब-दाब के आगे किसी को चूँ तक करने की मजाल नही थी। तनखाह पाने वाले या जमीन जोतने वाले लठैत उसके तकाजे मे घूमा करते। हुक्म करते ही लोगो को बाँध कर हाजिर करते थे। रासबिहारी को कभी अगर यह खयाल हो जाता कि फलाँ आदमी ने उसकी इज्जत नहीं की, या जैसा चाहिए था उसका सम्मान नही किया, तो उस बेचारे की शामत ही आगई जानिए। फिर वह छल-बल-कौशल से उसे खासा सबक सिखाकर ही दम लेता था।

यहाँ आने के बाद मुझे तो लगा था कि वही इस इलाके का राजा है। गरीब रैयत उसके डर से थर-थर काँपा करते, सपन्न लोगो को भी उसके सामने कुछ कहने की हिम्मत नही पडती, क्योंकि उसके लठैत बडे खूँखार थे, मार-पीट और लडाई-दगे मे कुशल। पुलिस के लोग भी उसके हाथ मे थे। खास महाल के सर्किल अफसर या मैनेजर उसके घर पर आतिथ्य कबूल किया करते थे। फिर इस जगल मे अपने आगे वह लगाये भी किसे ?

उसने मेरे रैयतो पर भी प्रभुत्व दिखाने की कोशिश की थी, मगर मैंने उसे वैसा करने से रोक दिया था। साफ शब्दो मे कह दिया था—"अपने इलाके मे जो जी मे आवे करो, अगर मेरे रैयतो का बाल भी बाँका हुआ तो मै उसे हर्गिज बर्दाश्त न करूँगा।" बीते साल ऐसी ही बात को लेकर उसके लठैतो और मेरे मुकुन्दी चकलादार तथा गणपत तहसीलदार के मुलाजिमो मे मारपीट हो गई। पिछले सावन के महीने मे भी कुछ गोल-माल हो गया। बात पुलिस तक पहुँच गई। दरोगा ने आकर तसफिया कर दिया। तब से रासबिहारीसिंह मेरे रैयतो से छेड-छाड नही करता।

उसी रासबिहारीसिह के यहाँ से न्योता आया है। यह सुनकर मुझे हैरत हुई।

मैंने गनपतसिंह तहसीलदार को बुलवा कर उससे राय ली। वह बोला—"कहा नही जा सकता हुजूर, वह आदमी यकीन करने लायक नही। कोई ऐसा काम नही, जो वह नही कर सकता। किस मतलब से उसने हुजूर को बुलाया है, राम जाने। मेरे खयाल मे आप न ही जायँ तो अच्छा।"

मगर मुझे गनपत की यह राय जँची नही। न जाने से रासबिहारी

अपने को अपमानित मानेगा , क्योकि होली राजपूतो का एक मुख्य त्योहार है। शायद वह यह भी सोच बैठे कि मै डर के मारे उसके यहाँ नही गया। ऐसा सोचना भी मेरा अपमान है। उँहू, नसीब मे चाहे जो हो, जाना जरूरी है।

कचहरी के लगभग सभी आदमियो ने मुझे रोकने की कोशिश की। बहुतेरा समझाया-बुझाया भी। बूढे मुनेश्वरसिंह ने कहा—"हुजूर, जा तो रहे है आप , पर इधर के रीति-रिवाज आप नही जानते। यहाँ जरा-सी बात पर लोग खून कर बैठते है। जाहिलो का इलाका है यह। सब काला अच्छर भैस बराबर है। फिर रासबिहारीसिह तो बडा ही जालिम है हुजूर। अपनी जिन्दगी मे उसने कितने खून किए है, उसका कोई लेखा-जोखा नही है। वह क्या नही कर सकता—खून, अगलग्गी, जालसाजी—हर काम में वह पक्का है।"

सब कुछ सुनी-अनसुनी करके मै रासबिहारीसिह के घर गया। ईंट की दीवारे, खपडो की छौनी। आम तौर से जैसे घर इधर के सपन्न लोगो के होते है, वैसा ही उसका घर भी था। सामने बरामदा, बरामदे मे कोल-तार से रगे लकडी के खभे। रस्सी से बुनी दो खाटे वहाँ बिछी थी। दो-एक आदमी बैठे हुए नल से तम्बाकू पी रहे थे।

जैसे ही मेरा घोडा दरवाजे पर पहुँचा जाने कहाँ से दो बार बन्दूक की आवाज हुई। रासबिहारी के कारिन्दे मुझे पहचानते थे। मै समझ गया, यह मेरा स्वागत किया गया है , मगर खुद मकान-मालिक कहाँ है ? उसके आए बिना अतिथि के घोडे से उतरने का रिवाज नही है।

जरा देर बाद रासबिहारी के बडे भाई रासउल्लाससिह आए। विनीत भाव मे दोनो हाथ उठाकर उन्होने कहा—"आइए, गरीब के झोपडे मे चरण रखिए। मेरे मन की हलचल खत्म हो गई। सोचा, राजपूत जिसे एक बार अतिथि मान लेते है उसका कभी बुरा नही करते। अगर आदर से कोई मुझे घोडे से उतारने नही आता, तो मै बैरग वापस हो जाता।

आँगन मे बहुत-से लोग इकट्ठे थे। उनमे से ज्यादा गगोते थे। जो

मैले कपडे उनके बदन पर थे, सब पर रग के छीटे पडे थे। न्योता मिला हो या न मिला हो, अपने महाजन के घर सभी होली खेलने को आ गए थे।

कोई आधे घटे के बाद रासबिहारीसिह आया और मुझे देखकर वह अवाक् हो गया। मतलब यह कि उसे स्वप्न मे भी यह भरोसा न था कि मैं न्योते पर उसके घर जाऊँगा। जो भी हो, उसने मेरी खासी आव-भगत की।

जिस कमरे मे वह मुझे ले गया, उसमे गँवई बढई के हाथ की बनी बेढगी दो-तीन कुर्सियाँ और एक बेच थी। दीवार में सिन्दूर और चन्दन से पुती गणेश की एक मूर्ति।

कुछ ही क्षणो मे एक लडका एक थाली लेकर मेरे सामने आ खडा हुआ। उस थाली मे थोडी-सी रोली थी, थोडे-से फूल, कुछ रुपए, चीनी के लायचीदाने, एक ढेला मिसरी और फूल की माला थी। रासबिहारी ने मेरे कपाल पर थोडी-सी रोली मल दी, मैने भी उसके अबीर लगाया और थाली से माला उठा ली। इसके बाद क्या करना चाहिए, यह न जानने के कारण मैं अनाडी की नाई थाली की तरफ ही ताकता रहा। रासबिहारी बोला—"ये रुपए आपकी भेट है हुजूर, यह तो लेने ही पडेगे।" मैने अपनी जेब से कुछ रुपये निकाल कर उन रुपयो मे डाल दिए और कहा—"इनसे मिठाई मँगा कर सबको बाँट दीजिए।"

उसके बाद वह मुझे अपना ऐश्वर्य दिखाता फिरा। उसकी गोशाला म साठ-पैसठ गाएँ थी और अस्तबल मे सात-आठ घोडे। घोडो मे से दो शायद बहुत सुन्दर नाचते है। उसने मुझे किसी दिन उनका नाच दिखाने की बात कही। हाथी नही था, लेकिन जल्दी-से-जल्दी वह हाथी खरीदने की सोच रहा था, क्योकि इधर हाथी न होने पर लोग सपन्न नही माने जाते। उसके यहाँ आठ सौ मन गेहूँ होता है। दोनो जून मे कोई अस्सी पिचासी आदमियो का खाना बनता है। खुद वह सुबह डेढ सेर दूध और एक सेर मिस्री का जलपान करता है। बाजार की रद्दी मिसरी वह नही

खाता। जो यहाँ मिसरी का जलपान करते है, वे बडे लोगो मे गिने जाते है। यहाँ बडप्पन का यह भी एक लक्षण माना जाता है।

उसके बाद मै एक दूसरे कमरे मे ले जाया गया। इस कमरे मे दो-ढाई हजार भुट्टे लटक रहे थे। ये भुट्टे अगले साल बोने के लिए रक्खे गए थे। लोहे की चदरो को कीलो से जोड-जोड कर बनाई गई एक कड़ाही मुझे दिखाई गई, जिसमे डेढ मन दूध उबाला जाता है। इतना दूध उसके यहाँ रोज लगता है। एक छोटे-से कमरे मे लाठी, ढाल, बरछा-भाले, गंडासे, तलवारो की ढेरी थी। उसे बखूबी अस्त्रागार कहा जा सकता है।

रासबिहारी के छै लडके थे। सब से बडे की उम्र तीस से कम न होगी। पहले चार बेटे बाप-जैसे ही लम्बे-तगडे जवान, अभी ही उनकी मूँछ और गलपट्टे की बहार देखने लायक हो आई थी। उसके हथियारखाने और इन जवान बेटो को देखते ही मेरे जी मे आया, ये अधभूखे और कमजोर गगोते अगर रासबिहारीसिंह के डर से थर-थर काँपते है, तो इसमे ताज्जुब ही क्या !

रासबिहारी बडा ही घमडी और कठिन धात का आदमी था। फिर अजीब सजग था उसका मान का ज्ञान। पान मे जरा चूने की कमी क्या हुई, रासबिहारी का मान गया जानिए। लिहाजा उससे आचार-व्यवहार मे हमेशा चौकस रहना पडता था। बेचारे गगोते रैयत तो हर पल दुबिधा मे ही पडे रहते, न जाने कब मालिक की मानहानि हो जाय !

बर्बर प्राचुर्य से जो कुछ समझा जा सकता है, उसके जलते उदाहरण मुझे रासबिहारी के घर देखने को मिले। भरपूर दूध, भरपूर गेहूँ, भरपूर भुट्टे, भरपूर मिसरी, भरपूर मान और भरपूर लाठी-सोटे , मगर इस सब का उद्देश्य आखिर क्या हुआ ? इतने बडे घर मे न तो एक अच्छी-सी तस-वीर थी; न एक किताब थी अच्छी-सी, अच्छी कोच-आरामकुर्सियो की कौन कहे, साफ-सुथरे तकियो से सजा कोई बिछावन तक न था। दीवार मे जहाँ-तहाँ चूने के दाग, पान की पीक। घर के पीछे-पीछे जो पनाला था, उसमे गदे पानी और कूडो का ढेर ; घर की बनावट भद्दी। बच्चो को पढने-लिखने से कोई वास्ता ही नही। कपडे-जूते निहायत मोटे और गदे।

पिछले साल एक ही महीने के अन्दर चेचक से तीन-चार बच्चे जाते रहे। आखिर यह ऐश्वर्य आता किस काम है? सीधे-सादे गगोते रैयतो को पीट-पीट कर जमा की गई इस दौलत से किसे कौन-सी सुविधा मिली? हाँ, रासबिहारीसिह का मान अवश्य बढा है।

खाने की सामग्रियो का बाहुल्य देखकर मै अवाक् रह गया। भला एक आदमी इतना सारा सामान खा सकता है? थाली मे हाथी के कान-जैसी कोई पन्द्रह पूरियाँ, कटोरो मे तरह-तरह की तरकारी, दही, लड्डू, मालपूए, पापड, इतनी तो मेरी चार जून की ख्राक थी। रासबिहारी शायद अकेला ही इससे दूना खाना एक बार खा लेता है।

भोजन करके जब मै अन्दर से निकला, शाम हो रही थी। आँगन मे गगोते रैयतो की पाँत बैठ गई थी और लोग मजे मे माढा-दही खा रहे थे। सब के कपडे लाल रग से रँगे, सबके चेहरे पर थिरकती हँसी। रासबिहारी के भाई उन्हे खिलाने मे त्रुटि न हो, इसकी निगरानी कर रहे थे। निहायत ही मामूली खाना था, मगर उसी मे लोगो की खुशी का ठिकाना न था।

बडे दिनो के बाद यहाँ धतुरिया का नाच देखने का मौका मिला। धतुरिया अब कुछ बडा हो गया था, उसका नाच भी पहले से ज्यादा सुधरा हुआ था। होली के लिए वह खास तौर से यहाँ बुलाया गया था।

धतुरिया को मैने अपने पास बुलाया। पूछा—"मुझे पहचान रहे हो?"

वह हँसा। सलाम करके बोला—"जी, आप मैनेजर साहब है हुजूर! अच्छे है आप?"

उसकी हँसी बडी ही मीठी लगती थी मुझे और उसे देखते ही न जाने एक अनुकम्पा और करुणा का उद्रेक होता था। उसका अपना कोई न था। नाच-गाकर दस-बीस को रिझाकर उसे इसी उम्र मे अपनी रोजी कमानी पडती थी और वह भी रासबिहारीसिह जैसे धन के मद से चूर रहने वाले अरसिक के आँगन मे!

मैंने पूछा—"यहाँ तो आधी-रात तक यह जश्न रहेगा। मजूरी क्या मिलेगी तुम्हे?"

वह बोला—"चार आने पैसे और भरपेट खाना।"

—"खाने को क्या मिलेगा?"

—"माढा, दही और चीनी। शायद लड्डू भी दे। पारसाल तो लड्डू दिए थे।"

खाने का वक्त आ रहा था। धतुरिया मारे खुशी से फूला न समाता था। मैंने पूछा—"क्या सब जगह यही मजूरी मिलती है?"

वह बोला—"जी नही हुजूर। रासबिहारीसिंह चूँकि बडे आदमी हैं, इसलिए खाना और पैसा, दोनो देगे। गगोतो के यहाँ दो आने पैसे मिलते हैं। खाना तो नही मिलता, पर वे आध सेर मकई का सत्तू दे देते हैं।"

—"इतने से गुजारा हो जाता है क्या?"

—"नाच से कुछ होता-हवाता तो नही हुजूर, पहले जरूर कुछ हो जाता था। आज-कल लोग खुद ही तकलीफ मे है, नाच कौन देखता है? जब नाचने का बुलावा नही आता, तो खेत-खलिहानो मे मजूरी कर लेता हूँ। आखिर करूँ भी क्या हुजूर, पेट तो चलाना ही है। बडे शौक से मैंने गया जाकर छोकडा-नाच सीखा था। कोई देखना ही नही चाहता—ज्यादा मजूरी जो देनी पडती है।"

मैंने धतुरिया को नाच दिखाने के लिए अपने यहाँ बुलाया। वह कलाकार था, सच्चे कलाकार मे जो एक निस्पृहता होती है, वह उसमे थी।

चाँदनी जब खूब निखर आई, तब मैं रासबिहारीसिह के यहाँ से विदा हुआ। मेरा घोडा जैसे ही अहाते से बाहर निकला, मेरे सम्मान मे बदूक की फिर दो आवाजे की गई।

फागुन का महीना, पूनो की रात। खुले मैदान मे बालू की राह चाँदनी मे झकमका रही थी। जाने कहाँ, दूर पर एक झीगुर चाँदनी में ऐसे बोल रहा था, मानो इस विशाल सूने प्रान्तर मे किसी पथ-भूले पथिक का आकुल कंठ-स्वर हो!

पीछे से किसी ने मुझे पुकारा—"हुजूर, मैनेजर साहब " मैने लौट कर देखा। देखा कि धतुरिया मेरे घोडे के पीछे-पीछे दौडा आ रहा है।

मैने घोडे को रोक लिया—"क्यो, क्या है धतुरिया ?" वह हॉफ रहा था। जरा रुककर उसने सॉस ली। और फिर आगा-पीछा करते हुए लजाते-लजाते बोला—"एक विनती थी हुजूर '

मैने सान्त्वना के स्वर मे कहा—"कहो, कहो।"

—"मुझे अपने साथ एक बार कलकत्ता ले चलेगे क्या हुजूर ?"

—"वहॉ जाकर तुम क्या करोगे ?"

—"मै कलकत्ता कभी गया नही। सुना है, वहॉ गीत-नाच की बडी कद्र है। ऐसे-ऐसे नाच सीखे मैने, मगर यहॉ उस जौहर को देखने वाला कोई है ही नही। बडा दुःख होता है। जमाने से छोकडा-नाच नाचने का ही मौका न मिला—भूल जाने की नौबत आ पडी है। उसे किस मुसीबत मे सीखा था मैने, वह एक सुनने ही लायक कहानी है।"

गॉव से हम बाहर निकल आए थे। चाँदनी से सारा प्रातर भरा हुआ था। मै समझ गया, देखने से रासबिहारीसिह बिगडेगा, इस डर से धतुरिया मुझसे छिप कर मिलना चाहता है। पास ही फूलो से लदा सेमल का एक पेड था। मै उसी पेड के नीचे घोडे से उतर पडा और एक चट्टान पर बैठ गया। बोला—"अच्छा, तुम अपनी कहानी सुनाओ।"

—"सबसे सुना करता था, गया जिले के किसी गाँव मे कोई विट्ठलदास है। गुणी आदमी है—छोकडा-नाच का बहुत बडा उस्ताद। मुझे यह धुन सवार थी कि चाहे जैसे भी हो, यह नाच मै जरूर सीखूँगा। मैं गया की यात्रा पर गया। विट्ठलदास की खोज मे गाँव-गॉव की खाक छानी। किसी से पता न चल सका। आखिर एक रोज शाम को मै एक स्थान मे ठहरा। देखा, लोग आपस मे उसी नाच की बातें कर रहे है। रात काफी जा चुकी थी। सर्दी भी पड रही थी करारी। मै जमीन पर पुआल डाले एक कोने मे पडा था। छोकडा-नाच का जिक्र जो सुना, सो उछल कर उठ बैठा। उनके पास जा बैठा। कितनी खुशी हुई, कहने की बात नही हुजूर !

मानो कोई रियासत मिल गई। उनसे विट्ठलदास का पता मिल गया। वहाँ से सत्रह कोस दूर तिनटगा नाम की बस्ती मे उनका घर था। ”

एक तरुण शिल्पी की शिल्प-शिक्षा के आकुल आग्रह की कहानी सुनने मे बहुत अच्छी लग रही थी। मैने कहा—“ फिर ? ”

—“ मै पैदल ही वहाँ पहुँच गया। देखा, बूढे-से थे वे। चेहरे पर सफेद दाढी। मुझसे उन्होने पूछा—“ तुम्हे क्या चाहिए ? ” मैने कहा—“ मै छोकटा-नाच सीखने आया हूँ। ” सुन कर वे हैरान-से हो गए। बोले—‘ आज-कल के लडके इसे पसन्द भी करते है ? इसे तो लोग कब के भुला बैठे है। ’ मैने उनके पॉव पकड लिए। कहा—‘ मै इसी के लिए बहुत दूर से आपकी सेवा मे आया हूँ—मुझे तो सिखाना ही पडेगा। ’ उनकी ऑखो में आँसू भर आए। कहा—‘ मेरे वश मे सात पुश्त से इस नाच की परम्परा चली आ रही है। मगर मेरे कोई सतान नही। इतनी उम्र हो आई, इस बीच कोई दूसरा मुझसे सीखने को भी नही आया। तुम्ही पहले आदमी हो। खैर, तुम्हे मै अवश्य सिखाऊँगा। ’ कितनी कठिनाइयो से तो मैने उसे सीखा, उसे इन गगोतो को दिखाकर होगा भी क्या ? कलकत्ता मे गुण की कद्र होती है। वहाँ मुझे आप ले चलेगे हुजूर ? ”

मैने कहा—“ किसी दिन मेरे यहाँ आना, तब बाते होगी। ”

धतुरिया आश्वस्त होकर लौट गया।

जी मे आया कलकत्ता में इतने कष्ट से सीखा हुआ इसका यह गँवई नाच देखेगा ही कौन और यह बेचारा अकेले वहाँ कर भी क्या सकेगा ?

आठवाँ परिच्छेद

[एक]

प्रकृति अपने भक्तो को जो दान देती है, वह अनमोल होता है , मगर उसका दान बहुत दिनो तक उसकी सेवा किए बिना नही मिल सकता। और प्रकृति ईर्ष्यालु भी कितनी होती है—अगर आप उसे चाहते है, तो महज उसी को चाहते रहिए, कही दूसरी तरफ निगाह गई कि वह अपना घूँघट नही खोल सकती।

लेकिन प्रकृति में ही डूबे रहिए, तो उसके सर्वविध आनन्द का, सौन्दर्य का, अनोखी शाति का वरदान आप पर इतनी वर्षा करेगा, इतनी वर्षा करेगा कि आप पागल हो उठेगे। दिन-रात नाना रूपो मे उसकी मोहिनी प्रकृति आपको मुग्ध करती रहेगी, नई दृष्टि देगी, मन की आयु को बढा देगी, अमरलोक के आभास मे अमरत्व तक ले जायगी।

कुछेक बाते बताऊँ। इन अनुभूतियो के लिए पन्ने-पर-पन्ने लिख जाइए, पर वे पूरी नही लिखी जा सकती। कहने की बाते रह ही जाती है। और इन बातो के सुनने वाले भी कम ही होते है। हृदय से प्रकृति को प्यार करने वाले आज-कल है भी कितने ?

इस वनभूमि के नवटोलिया बैहार मे जहाँ-तहाँ दुधली के फूल बिखेर कर वसन्त अपने आगमन की सूचना देता। देखने मे ये फूल होते भी बडे खूबसूरत है—नक्षत्र-जैसी आकृति, पीला रग , लत्तर-जैसी उसकी डठले माटी को जकडे दूर तक फैली रहती है और उसकी गाँठ-गाँठ मे फूल उठते है ये फूल ! सुबह मैदान मे, रास्ते के दोनो किनारो पर इन फूलो से प्रकाश बिखरा रहता , लेकिन जैसे-जैसे धूप तेज होती जाती, सिमट कर ये फूल फिर कली की शक्ल मे आ जाते और दूसरे दिन फिर वही कलियाँ खिल पडती।

पलाशो की बहार मोहनपुरा रिजर्व फारेस्ट मे या अपनी जमीदारी की हद से बाहर महालिखारूप की तराई मे देखने योग्य होती। अपने यहाँ से ये जगहे काफी दूर थी—घोडे से जाने मे तीन-चार घटे लग जाते। उन जगहो मे सखुए के फूलो की खुशबू हवा को मतवाली बनाए रखती फूले सेमल के वन क्षितिज की रेखा को रगीन किए रहते , मगर कोयल की कूक, पपीहे की पुकार यहाँ सुनने को नही मिलती। इस वीरान, जन-हीन प्रान्तर मे रहना शायद नही भाता।

कभी-कभी बगाल के लिए मन तडप उठता। बगाल के गाँवो मे होने वाली बसत की शोभा कल्पना मे आती—याद आती पोखर से नहाकर भीगी कपडो मे लिपट कर लौटती हुई किसी तरुणी वधू की तसवीर—खेतो के पास फूलो से भरा घेटूवन, नीबू-फूलो की खुशबू से मोहमयी छाया भरा अपराह्न। बाहर जाकर अपने देश को कितना ज्यादा पहचान सका! देश मे रहते हुए उसके लिए ऐसी मनोवेदना का कभी अनुभव नही कर सका। यह अनुभूति जीवन की एक मूल्यवान अनुभूति है, जिसे इसका स्वाद न मिला, समझिए कि वह अभागा एक बहुत बडी अनुभूति से वचित रह गया।

लेकिन जो बात मै वास्तव मे बताना चाह रहा हूँ, तरह-तरह से कहकर भी उसे बता नही पा रहा हूँ। वह है इस प्रकृति की रहस्मययी असीमता, दुरधिगम्यता, विराटत्व और डर से वदन को छम-छम कराने वाले सौन्दर्य की बात। जिसने उसे नही देखा, उसे कैसे समझाऊँ कि वह क्या होता है ?

नवटोलिया बैहार के सुदूर व्यापी झाऊ और कसाल के जगल मे अकेले घोडे की पीठ पर जाते-जाते निस्तब्ध दुपहरिया के माहौल मे यहाँ की प्रकृति के इस रूप ने मेरे सारे हृदय को एक रहस्यमयी अनुभूति के आच्छन्न कर दिया है, कभी तो वह आई भय के रूप मे, कभी एक निस्पृह, उदास और गभीर मनोभाव के रूप मे, तो कभी आई जाने कैसे-कैसे मधुर सपनो एव देश-विदेश की नर-नारियो की वेदना के रूप मे। मानो वह कोई मौन

सगीत हो—नक्षत्रा की क्षीण ज्योति मे है जिसका ताल, चाँदनी रात की अलौकिकता, झीगुरो की तानो और वेगवान उल्कापुच्छ के प्रकाश मे है जिसकी लय-सगति।

जिन्हे अपनी दुनिया बसानी हो, उनके लिए उस रूप का न देखना ही बेहतर है। प्रकृति के उस मोहक रूप की माया मनुष्य को ससार-विरागी बना देती है, उसे लापरवाह, खानाबदोश, हैटी जान्सटन, मार्कोपोलो, हडसन, शैकलटन बना देती है—घर-गिरस्ती नही करने देती। जिसने भी एक बार उसकी पुकार सुनी, उस अनवगुठिता मोहिनी को एक बार आँखो देखा, उसके लिए घर-गिरस्ती करना नामुमकिन है, एकदम असम्भव।

काफी रात गए कमरे से बाहर निकल कर मैने अँधेरे प्रातर या छाया-हीन चाँदनी रात के रूप को प्राय देखा है। उसके उस सौन्दर्य पर पागल हो जाना पडता है—कहने मे मै अतिरजना नही कर रहा, मेरा खयाल है, कमजोर दिलवालो को वह रूप देखना ही नही चाहिए, वह रूप सर्व-नाशी है, सबके लिए उसका धक्का सँभालना सभव नही।

मगर यह बात भी सही है कि प्रकृति का वह रूप देखना एक सौभाग्य की बात है। जहाँ-तहाँ ऐसा सुनसान विशाल वन-प्रातर, पहाडियो की दूर प्रसारी पक्ति, झाऊ और कसाल के जगल मिलते भी कहाँ है? फिर कही मिले भी, तो उनके साथ गहरी निशीथिनी की नीरवता और उसके अधकार या ज्योत्स्ना का सयोग भी होना चाहिए। अगर इतने सुयोग सबको सुलभ होते, तो यह दुनिया कवि और पागलो से भर नही गई होती?

एक घटना सुनाऊँ कि मै ने एक दिन किस तरह प्रकृति के उस रूप के दर्शन किए। पूर्णियाँ से मुझे वकील का तर मिला कि दूसरे दिन मुझे वहाँ हाजिर रहना है, नही तो एक बहुत बडे मामले मे अपनी हार हो जायगी।

पूर्णियाँ वहाँ से पचपन मील दूर था। रात को गाडी सिर्फ एक ही जाती थी और जब तार मिला, उसके बाद कटोरिया स्टेशन जाकर उस गाडी को पकड सकना सभव ही नही था।

नै किया कि घोडे म तुरन्त रवाना हो जाऊँ। लेकिन एक तो बडी लम्बी दूरी, फिर खतरो मे भरी राह, खासकर रात को। लिहाजा यह भी निश्चय किया कि मेरे साथ तहसीलदार सुजनसिह भी चलेगा।

शाम होते ही दोनो घोडे से रवाना हो गए। कचहरी के अहाते से निकल कर जगल में पहुँचते ही जरा देर मे तीज वदी का चाँद उग आया।-मद्धिम चाँदनी में वन-प्रातर और भी अद्भुत दिखने लगा। मै और सुजन-सिह। दोनो पास-पास चल रहे थे। ऊबड-खाबड राह। सफेद बालू चाँदनी मे चिकिचिक कर रहा था। कही-कही झाडियाँ मिलती—झाऊ और कसाल का ही जगल यहाँ-वहाँ। सुजनसिह बाते करता जा रहा था। चाँदनी निखरती आ रही थी और जगल, रेती, धीरे-धीरे स्पष्ट होती जा रही थी। जगल का मस्तक-प्रदेश बडी दूर तक किसी एक सरल रेखा-सा दौड गया था, जहाँ तक निगाह जा रही थी, एक ओर धू-धू प्रातर ओर दूसरी ओर जगल और जगल। बाई तरफ पहाडियो की कतार। निर्जन, नीरव। आदमी का नाम तक कही नही। न कोई शोर, न कोई शब्द। मानो किसी अचीन्हे ग्रह की सूनी वन-वीथी मे हम दो, महज दो जीव चले जा रहे हो।

एक जगह अचानक ही सुजनसिह ने घोडे को खडा कर दिया। क्यो आखिर? बगल के जगल से एक सूअरी अपने नन्हे बच्चो की जमात लिए हमारा रास्ता काटकर सामने से दूसरी तरफ चली गई। सुजनसिह ने कहा—"फिर भी गनीमत है हुजूर, मैंने तो समझा था, जगली भैसा न हो कही।" हम मोहनपुरा जगल के करीब जा पहुँचे थे। यहाँ जगली भैसो का पल-पल पर खतरा था। उस दिन भी एक आदमी का काम तमाम कर दिया था भैसे ने।

जरा ही दूर गए होगे कि चाँदनी मे दूर पर काला-काला सा सचमुच ही कुछ दिखाई पडा।

सुजनसिह बोला—"घोडे को रोक ले हुजूर, भय से भडक जायगा।"

रुका। मगर देर तक देखकर पता चला, वह न तो हिलता है, न डुलता है। सँभल-सँभल कर समीप पहुँचा। देखा, वह कसाल की एक झोपडी

थी ! हमने घोडे को एड़ लगाई। निखरी-बिखरी चाँदनी से खिली दुनिया—न जाने कौन-सी साथी-विहीन चिडियाँ जगल मे या कही टी-टी पुकार रही थी—घोडो के खुर से बालू बेतरह बिखर रहा था , मगर रुकने की गुजा-इश न थी—दे दौड, दे दौड

देर तक लगातार बैठे रहने से रीढ की हड्डी दुखने लगी थी, जीन गरम हो गई थी, घोडा छाडतक से दुलकी चाल पर आ उतरा था। फिर मेरा घोडा डरता भी बहुत था, लिहाजा सावधानी से दूर तक निगाह रखते हुए चलना पड रहा था। कही एक-ब-एक अगर रुक पडे, तो उसकी पीठ से छिटक कर दूर न जा पडूँ इसकी आशका थी।

इस जगल मे राह का कोई ठीक-ठिकाना नही। कसाल के माथे पर गाँठे बाँध कर राह का निशान बना दिया गया था। उसी से राह का अदाज किया जाता। एक बार सुजनसिह ने कहा—"लगता है, राह यह नही है हुजूर, हम भटक गए है।"

मैने सतभैये को देखा और ध्रुवतारे का पता किया। पूर्णियाँ अपने यहाँ से ठीक उत्तर पडता था। सुजनसिह को समझा कर कहा—"हम ठीक जा रहे है।"

वह बोला—"जी नही, कोसी पार करनी है, पार करके तब उत्तर सीधे उत्तर जाना है। अभी हमे उत्तर-पूरब कोने से कनरा कर निकलना चाहिए।"

आखिर राह मिल गई।

चाँदनी और भी निखर आई थी। कैसी अद्भुत थी चाँदनी ! कैसा रूप रात का ! निर्जन रेती मे, जगली झाऊ की वनवाहिनी मे, जिसने कभी उसे नही देखा, वह जान भी कैसे सकता है कि क्या शक्ल होती है उस चाँदनी की ! ऐसे उन्मुक्त आकाश के नीचे—छायाविहीन उदास गभीर चाँदनी रात मे वन, पहाड और प्रातर के पथ पर, रेती मे इस ज्योत्स्ना को देखा ही कितनो ने है ? और उसमे जो दौड लगा रहा

था ! दोनो घोड़े दौडते-दौडते हॉफ उठे। सर्दियो की रात मे भी हमारे बदन मे पसीना छूट रहा था।

एक सेमल के नीचे दसेक मिनट रुक कर हमने साँस ली। सिर्फ दस मिनट। एक छोटी-सी नदी पास ही कोसी से जा मिली थी। सेमल का पेड फूलो से लदा था। यहाँ पर जगल ने हमे कुछ इस तरह घेर लिया था कि कही कोई राह नही दिखाई पड रही थी, यद्यपि वहाँ पेड-पौधे निहायत ही छोटे-छोटे थे। एक सेमल ही उन सब मे ज्यादा ऊँचा था और जगल मे सब से ऊँचा सिर किए खडा था। हम दोनो को बेहद प्यास लग आई थी।

चाँदनी फीकी पडने लगी थी। वन-वीथी मे अँधेरा—पश्चिम क्षितिज मे शैलमाला के पीछे आखिरी रात का चाँद छिपने लगा। छाया लम्बी हो आई। चिडियो चुनमुन की कोई काकली नही, केवल छाया और छाया। प्रातर अन्धकार—जगल अधकार। सुबह के आस-पास की हवा काफी सर्द हो उठी। रात के करीब चार बज रहे थे। शका हो रही थी कि इस अँधियारी मे कही जगली हाथियो की कोई टोली न आ धमके ! मधुवनी के जगल मे हाथी भी रहते हैं।

अब दो पहाडियो के बीच-बीच से राह थी। पहाडियो पर पत्र-विहीन पौधो की नगी डालो पर फूलो की बहार, कही-कही रक्तपलाश के पेडो की भीड। सुबह के समय चाँद डूबे अँधियारे मे अजीब-सा दीख रहा था जगल। पूरब की तरफ लाली हो आई। प्रभाती हवा, चिडियो का कल-रव सुनाई देने लगा। घोडे पसीने से लथ-पथ थे। वह तो गनीमत थी कि घोडे अच्छे थे, तब ही तो ऐसे रास्तो पर लगातार दौडते ही आए। साँझ के चले-चले सुबह हो आई, मगर राह का कही अन्त नही था। बस वैसे ही जगल और पहाड, पहाड और जगल।

सामने जो पहाड था, उसके पीछे से सिदूर के गोले-सा सूरज निकलने लगा। पास ही एक बस्ती मिली। वहाँ हमने थोडा-सा दूध खरीद कर पिया। और दो घटे चलकर हम पूर्णियाँ पहुँचे।

वहाँ मैंने काम अनमना-सा ही निबटाया, क्योकि चित्त तो लगा था राह की शोभा मे। सुजनसिंह काम खत्म होते ही चल पडना चाहता था ' मगर चाँदनी रात मे राह की विचित्र शोभा देखने के लोभ से मैंने उसे रोका।

आखिर शाम को ही रवाना हुआ। उस दिन चाँद जरा देर से उगा जरूर, मगर भोर-भोर तक चाँदनी रही। और क्या गजब की चाँदनी! कृष्णपक्ष के स्तिमित आलोक मे वनो, पहाडो पर चाँदनी ने मानो एक शात किन्तु अद्भुत और अजाने स्वप्नलोक की रचना कर दी हो! कास के वही, वैसे ही जगल, वही ऊँचे-नीचे रास्ते, पहाडो की तलहटी पर वही पीले-पीले फूलो का मेला—मानो बहुत दूर का कोई नक्षत्रलोक हो, मानो हम मृत्यु-पार के किसी अनचीन्हे देश मे अशरीरी होकर उडे जा रहे हो—उडे जा रहे हो भगवान् बुद्ध के उस निर्वाणलोक मे, जहाँ चाँद तो नही उगता, मगर जहाँ अँधेरा भी नही होता।

बहुत बहुत दिनो के बाद जब इस लापरवाह और आजाद जिन्दगी को छोडकर दुनियादारी मे पैठा, तो कलकत्ता की तग गलियो मे भाडे के मकान मे बैठा अपनी स्त्री की सिलाई की मशीन की घिच-घिच मे जाने कितनी ही बार इस रात की बात सोचता रहा, सोचता रहा इस अपूर्व आनन्द की, चाँदनी नहायी रहस्यमयी इन वन-पक्तियो की बात, रात के अतिम प्रहर मे चाँद-डूबे अँधियारे मे पहाड पर सफेद डठलो पर फूले इन फूलो की बात, सूखे कास-वन से उडकर आती हुई सौधी-सोधी महक की बात! जाने कितनी बार कल्पना मे घोडे की पीठ पर सवार होकर चाँदनी रात मे मैं पूर्णियाँ गया हूँगा।

[दो]

आधा चैत बीता होगा कि एक दिन समाचार मिला—सीतापुर बस्ती में कोई राखाल बाबू बगाली डॉक्टर थे, वे रात को एकाएक मर गए।

इसके पहले इनका नाम मैंने कभी नही सुना था, न ही यह पता था

कि ये उस बस्ती मे रहते थे। अब जाना कि वे बीस वर्षा से इसी गॉव मे है। इलाके मे उनका नाम-गाम अच्छा था, घर-द्वार भी बनवाया है न, बाल-बच्चे भी वही है।

अबगाली इलाके मे एक बगाली सज्जन का देहान्त हो गया। उनके बाल-बच्चो की क्या हालत है, कौन उन सबकी देख-भाल करता है, उनके सस्कार या श्राद्ध-शान्ति का क्या हो रहा है, इन बातो को जानने के लिए मेरा जी मचल उठा। वहॉ जाकर उस शोक-सतप्त परिवार की खोज-खबर लेना मुझे अपना कर्त्तव्य-सा लगा।

पता चला, वह बस्ती यहॉ से कोई बीस मील दूर है। तीसरे पहर मै वहॉ पहुँचा। पूछ ताछ करके डॉक्टर के घर तक गया। दो तो बडे-बडे कमरे थे, तीन छोटे-छोटे। बाहर एक बैठक थी, जैसी कि इधर आम तौर से होती है। उसके तीन ओर दीवारे न थी। देखकर जान सकना कठिन था कि यह किसी बगाली का घर है। बैठक की रस्सी की चारपाई से लेकर महावीरी झडा तक, सब इसी देश के ढग के थे।

मैने आवाज दी। एक बारह-तेरह साल का लडका बाहर निकला। मुझसे उसने ठेठ हिन्दी मे पूछा—"आप किसे ढूँढ रहे है ?"

उसकी शक्ल से जरा भी पता नही चलता था कि वह किसी बगाली का लडका है। माथे पर यह लम्बी चुटिया ! हाव-भाव तक बिहारी बालको-जैसा कैसे हो गया ?

मैने अपना परिचय दिया। कहा—"तुम्हारे घर मे जो बडे आदमी हो, उनको बुला लाओ।"

उसने बताया, "लडको मे बडा वही है। उससे छोटे और दो भाई है। घर मे दूसरा अभिभावक नही।"

मैने कहा—"मै तुम्हारी मॉ से कुछ बाते करना चाहता हूँ। उनसे पूछ आओ।"

जरा देर मे वह लडका बाहर आया। मुझे अन्दर लिवा ले गया। डॉक्टर बाब की पत्नी की उम्र कम ही लगी, कोई तीस के करीब। अभी-

अभी विधवा हुई है । रोते-रोते आँखे सूज गई थी । निहायत गरीब की गिरस्ती-जैसे सरो-सामान । एक तरफ अनाज रखने की छोटी-सी कोठी, बरामदे मे दो-एक खाट, फटी-पुरानी कथरी, पीतल की कलसी, एक गड-गडा, टीन का बक्स । मैंने कहा—"मै एक बगाली हूँ । पडोस मे ही रहता हूँ । राखाल बाबू के देहान्त की खबर सुनकर आया हूँ । यह मेरा कर्त्तव्य था । मेरे लायक कोई सेवा हो, तो आप नि सकोच कहे । किवाड की आड मे खडी हुई वह चुपचाप रोने लगी । मैंने उन्हे दिलासा दिया और फिर से अपने आने का कारण बताया । अब वह मेरे सामने आई । रोते-रोते बोली—"आप मेरे बडे भाई के समान है । हमारे इस घोर सकट काल मे ईश्वर ने आपको यहाँ भेजा है ।"

बातो-ही-बातो मे मैंने जाना कि यह परिवार यहाँ बिल्कुल असहाय है । राखाल बाबू साल-भर से ज्यादा बीमार रहे थे । जो भी कुछ घर की जमा-पूँजी थी, सब उनके इलाज और गिरस्ती के खर्च मे चुक गई । अब श्राद्ध हो सके, इसका भी ठिकाना नही ।

मैंने पूछा—"राखाल बाबू यहाँ है तो बरसो से, कुछ जोडा नही था क्या उन्होने ?"

उनकी स्त्री का लाज-सकोच बहुत हद तक जाता रहा था । उनके चेहरे से लगा, इस प्रयास मे और सकट मे मुझे पाकर उन्हे मानो मँझधार मे किनारा मिल गया हो ।

उन्होने कहा—"मै बता नही सकती, पहले वे क्या कमाते थे । मेरे ब्याह को पन्द्रह साल हुए । मेरी सौत के मरने के बाद उन्होने मुझसे शादी की थी । मैंने तो यही देखा कि किसी तरह गिरस्ती चल जाती है । यहाँ डॉक्टर को लोग शायद ही फीस के रुपये देते है । गेहूँ या मकई देते है । पिछले साल माघ मे उन्होने खाट पकडी थी । तब से फूटी पाई भी नही रही , लेकिन इधर के लोग भले है । जिनके भी पास जो पावना था, सब बदले मे गेहूँ, मकई, उडद पहुँचा गए । इसीसे अब तक गुजारा चला, नही तो भूखो मर जाने की नौबत थी ।"

—"आपका मैका कहाँ है ? वहाँ खबर भेज दी गई है क्या ?"

वह कुछ देर तक चुप रही। फिर बोली—"खबर देने लायक वहाँ कुछ भी नही है। मैने अपना मैका कभी नही देखा। सुना-भर था कि मुर्शिदाबाद जिले मे है। छुटपन से मै साहबगज मे अपने बहनोई के यहाँ रही। माता-पिता नही थे। मेरे ब्याह के बाद मेरी वह दीदी भी जाती रही। बहनोई ने दुबारा शादी की है। उनसे अब अपना नाता भी क्या ?"

—"राखाल बाबू के कोई सगे-सबधी कही नही है ?"

—"अपने सगे कुछ है तो, घर पर सुना था, पर न उन लोगो ने कभी खोज-खबर ली, और न यही कभी वहाँ जाते थे। उनसे बनती नही। लिहाजा उन्हे खबर देना-न-देना एक-जैसा है। शायद काशी मे मेरे कोई ममिया ससुर है, मगर मुझे उनका भी पता नही मालूम।"

बडी असहाय दशा। सगा-सबधी कोई नही। अपने-अपनो से रहित इस दूर देश मे कई नाबालिग लडको वाली इस औरत की दशा पर मै मर्माहत हो गया। तत्काल जो-कुछ करना चाहिए था, करके मै लौट आया। अपने सदर दफ्तर को लिखकर सौ रुपये की मदद मँगवाई और श्राद्ध का ठिकाना कर दिया।

इसके बाद भी मै वहाँ कई बार गया। स्टेट से उनके लिए दस रुपए माहवार की मदद दिलाई। पहली बार के दस रुपए लेकर मै स्वय उन्हे देने गया था। दीदी मेरी बडी खातिर करती, स्नेह-आत्मीयता की बाते करती। इसी लोभ से, मौका मिलते ही मै वहाँ जाया करता था।

[तीन]

लवटोलिया के उत्तर की तरफ एक बडा-सा जलाशय है। ऐसे जलाशय को इधर के लोग कुड कहते है। इस जलाशय का नाम था 'सरस्वती-कुड'।

इस कुड के उस पार तीन तरफ घना-जगल था, वैसा जगल अपने महाल या, लवटोलिया मे कही नही। इसमे विशाल-विशाल पेड थे।

पानी के पास होने की वजह से हो या और किसी कारण से भी हो, इस जगल मे अजीबोगरीब लताएँ और तरह-तरह के वन-फूलो की भरमार थी। इस जगल ने विशाल सरस्वती-कुड को तीन ओर से आधे चॉद के आकार मे घेर रक्खा था। एक ओर खाली पडा था, जहॉ से पूरब का दूर तक फैला नीला आसमान और पर्वतमाल दिखाई पडती थी। फलस्वरूप पूरब-पच्छिम कोने पर कही बैठकर दाएँ-बाएँ देखने से सरस्वती-कुड के सौदर्य की अपूर्वता ठीक समझ मे आ सकती थी। बाईं ओर देखने से नजर धीरे-धीरे घने जगल की गहरी श्यामलता मे अपने आपको भुला बैठती और दाएँ और देखने से निर्मल नील जल के उस पार का दूर प्रसारी आकाश तथा धुँधली गिरिमाला की छवि मन को गुब्बारे की तरह फुलाकर पृथ्वी से दूर उडा ले जाती।

बहुत बार मै यहॉ की एक चट्टान पर जाकर बैठा रहता। कभी-कभी दोपहर को जगल मे घूमा करता। बडे-बडे पेडो के नीचे बैठा-बैठा चिडियो का कल-कूजन सुना करता। पौधे बटोरा करता, तरह-तरह के वन-फूल चुना करता। जितनी तरह की चिडियो की बोली यहॉ सुनने को मिलती, अपने महाल मे उतनी कही भी नसीब न थी। इतनी चिडियॉ यहॉ शायद इसलिए थी कि यहाँ फलो की बहुतायत थी, या ऊँचे पेडो की फुनगियो पर घोसला बनाने की सहूलियत थी। इस जगल मे फूल भी बहुत प्रकार के खिलते थे।

कुड के किनारे का यह घना जगल लगभग तीन मील से ज्यादा लम्बा था। चौडाई कोई डेढ मील की होगी उसकी। कुड के किनारे-किनारे पेडो की सघन छाया मे शुरू से आखिर तक एक पगडडी थी। मै उसी पर घूमा करता। पेड-पौधो की फाँको से जहाँ-तहॉ कुड का सुनील जल और उस पर औधे पडे विशाल आकाश की परछाँई तथा दिगत मे खोई शैल-माला दिखाई पडती। फुर-फुर हवा बहती, चिडियो की ताने सुनाई पडती, वन-फलो की मीठी खुशबू आती रहती।

एक रोज मै पेड की एक डाल पर जा बैठा। इस आनन्द की तुलना

असभव है। माथे के ऊपर पत्रो की हरियाली का प्रसार, उनकी फाँको मे से झाँकता हुआ आसमान का एक टुकडा ! एक लत्तड मे फूलो के झूलते हुए गुच्छे। नीचे ओदी जमीन पर कुकुरमुत्ते ! ऐसी जगह, कि सिर्फ सोचते हो रहने का जी चाहता, कितनी अनुभूतियाँ जो भीड लगा बैठती मन मे ! मन के अतल मे डूबी एक प्रकार की अतिमानस चेतना अन्तस्तल की गहराई से ऊपर उफन आती—आती गहरे आनन्द के रूप मे। मानो एक-एक लता-वृक्ष के हृदय की धडकन को अपनी छाती के रक्त-स्पदन मे अनुभव कर रहा होऊँ।

अपनी जमीदारी के इलाके मे चिडियो की यह विविधता देखने को नही मिलती। वह जैसे एक दूसरी ही दुनिया हो। उसके पेड-पौधे, जीव-जन्तु सब जुदा ढग के। जब वसत के आगमन के प्रमाण प्रकट हो जाते है, तब लवटोलिया मे एक भी कोयल की कूक नही सुनाई पडती, चीन्हा-जाना कोई फूल खिला हुआ नजर नही आता। वह मानो एक रूखी और कठोर भैरवी मूर्ति हो। सौम्य और सुन्दर तो है, मगर उसमे माधुर्य नही। उसकी विशालता और रूखापन ही मन को अभिभूत करता। कोमल वर्जित मालकौस या चौताल का ध्रुपद, मिठास के पर्दे से कोई नाता नही रखता— स्वर के गभीर-उदात्त स्वरूप से मन को एक दूसरे ही स्तर पर ले जाता है।

इस हिसाब से सरस्वती-कुड को ठुमरी कहे, मीठे स्वर की मधुर और कोमल विलासिता से मन को आर्द्र और स्वप्नमय बना देता। फागुन-चैत की सूनी दोपहरी मे तीर-तरु की छाया मे बैठकर चिडियो के गीत सुनते हुए मन कहाँ और कितनी दूर जो चला जाता ! फूले जगली नीनो के फूल की खुशबू हवा मे खिर जाती, जलज लिली खिलते। जाने कब तक वहाँ बैठता और साँझ होने पर वहाँ से लौटता।

रैयतो को जमीन देनी थी, इसलिए नाढा बैहार मे नपाई का काम जारी था। अमीनो को काम समझाने के लिए मुझे वहाँ प्राय जाना पडता। लौटने समय सिर्फ सरस्वती-कुड की वनभूमि मे पेडो की छाया मे जरा

घूम लेने के लोभ से ही पूरब-दक्खिन की ओर से दो-तीन मील का चक्कर काट कर जाता ।

उस दिन कोई तीन बजे मै लौट रहा था। तीखी धूप से जले-तपे मैदान को पार करके पसीना-पसीना होकर मै उस जगल की घनी छाँह से होता हुआ, कुड के किनारे तक गया—मैदान जहाँ खत्म होता है, वहाँ से कुड का किनारा डेढ मील से कम न होगा, कही-कही तो बल्कि और ज्यादा पडता । घोडे को पेड की एक डाल से बाँध दिया और छाया सघन एक पेड की छाँह मे आयल क्लाथ बिछाकर सो गया । झुरमुटो से मै चारो तरफ से इस तरह घिरा था कि कोई मुझे देख नही सकता । दो ही एक हाथ ऊपर डाल-पत्ते । काठ-जैसी मोटी कोई लत्तड थी, जिसने खुद ही जगह-जगह जुडकर छत-सी बना रक्खी थी ।—जाने कौन-से पेड से सेम-जैसे बडे-बडे फल मेरी छाती से प्राय सटे-सटे झूल रहे थे । और भी एक पेड था, जाने कौन-सा पेड, उसके डाल-पत्तो ने उस कुज के प्राय आधे हिस्से को घेर रक्खा था, उसमे नन्हे-नन्हे फूलो की भरमार थी। इतने नन्हे फूल कि पास गए विना दीखते भी नही, मगर कितनी गहरी और मीठी सुवास ! उस अजाने फूल की खुशबू मे वह सूना कुज जैसे महमहा उठा था !

सरस्वती-कुड जगली चिडियो का बहुत बडा अड्डा है—यह पहले ही कह चुका हूँ । इस जगल मे चिडियाँ भी कितनी तरह की थी, कितने रग-ढग की ! श्यामा, हरट्टी, तोते, फेजन्ट-क्रो, पोडकी, हरियल—और भी जाने क्या-क्या ! पेडो पर चील, बाज, कुल्लो—कुड के पानी मे बगले, सिल्ली, बतखे, कौए, माणिक पछी जैसी जलचर चिडिया—कुड का ऊपरी भाग उनकी कल-काकली से मुखर हो उठा था । उनके उल्लास-भरे कूजन से कान बचाना मुहाल था ! बेहद तग करते । बहुत बार तो आदमी की परवाह भी न करते । देख रही है कि म वहाँ सोया हू, लेकिन दो-ही-एक हाथ के फासले पर जुटकर किच्-किच् शुरू कर दी, मेरी खाक भी परवाह न की !

उनकी यह लापरवाही मुझे बडी भली लगी । मैंने उठकर भी देखा, उन्हे कोई खौफ-खतरा नही । बहुत जोर मारा, तो जरा खिसक गई—खडी नही । जरा देर मे फिर नाचती-गाती करीब आ गई ।

जगली हिरन पहले-पहल मैंने यही देखा । मैंने सुना तो था कि अपने जगल मे हिरन है, मगर कभी आँखो से नही देख पाया था । लेटा था । अचानक कुछ आहट मिली । मैं उठ बैठा । सिरहाने की तरफ जो झाँका, तो देखा कि घनी झाडी के एकात मे एक हिरन खडा है । गौर से देखा, हिरन बडा नही था, हिरनौट था । मुझ पर निगाह पडते ही वह अपनी दो बडी-बडी आँखो मे अजीब विस्मय लिए देखता रहा, सोचने लगा—आखिर यह कौन-सा जीव है !

आध मिनट बाद और अच्छी तरह देखने के लिए वह जरा आगे बढ आया । उसकी आँखो मे मानव-शिशु-जैसी साग्रह कौतूहल-दृष्टि थी । कह नही सकता, वह और भी समीप आता या नही , मगर मेरे घोडे ने इतने मे अपना पैर झाड दिया । चकित और भीत हरिन -शावक भागकर झाडी मे घुस गया , शायद वह अपनी माँ को यह खबर देने चल दिया हो ।

मैं और भी कुछ देर तक वहाँ बैठा रहा । पेडो की फाँको मे से कुड का सुनील जल दिखाई पडता था, जो आधे चाँद के आकार मे सुदूर गिरि-माला के कदमो तक फैला था—आसमान खुला, कही भी बादल का नाम नही । जलचर पछियो ने आपस मे चोचबाजी करके बेहद शोर करना शुरू कर दिया । एक गभीर और प्रौढ माणिक पछी ने पेड की फुनगी पर से रह-रह कर आजिजी दिखानी शुरू की । बगुलो ने किनारे के पेडो की डाल पर पचायत-सी बिठाई थी—दूर से ऐसा लग रहा था मानो सफेद फूल खिले हो ।

धूप धीरे-धीरे लाल हो उठी ।

पहाडियो पर जैसे ताँबा बिखर गया हो । डैने फैलाकर बगले उडने लगे । धूप पेडो की फुनगी पर जा सिमटी ।

चिडियो की चहक बढ गई, साथ ही बढ गई उस अजाने वन-फूल

की मीठी खुशबू । तीसरे पहर की छाया में वह मुगध मानो और भी गहरी, और भी मधुर हो उठी । एक नेवला सिर उठाए हुए दूर खडा मुझे देख रहा था ।

कैसी निभृत शान्ति ! कैसा अजीब मुनसान ! कोई साढे तीन घटे तो मुझे यहाँ हो गए, लेकिन इन चिडियो की बोली के सिवाय दूसरा कोई शब्द ही नही, उनके पैरो की खरौच से पत्तो या सूखे पत्तो के गिरने की आवाज । बस । आदमी की कही गन्ध तक नही ।

पेडो की चोटियो की अजीबोगरीब बनावट । शाम की रगीन धूप से उनकी और भी अनोखी शोभा निखर आई । कितने पेडो से कितनी लताएँ लिपटी है , इस तरह की लता को इधर भियोटा लता कहते है, मैने उसका नाम रक्खा भौटा-लता । यह लता जिस पेड मे टिकेगी, उसकी गाँठ-गाँठ को लपेट लेगी । इन्ही दिनो इस लता मे फूल खिलते है । जगली जूही-जैसे छोटे-छोटे फूल , उतने बडे पेड को फूलो ने अपनी आभा से प्रकाशित कर रक्खा था । मजे की खुशबू, सरसो के फूल-जैसी, मगर उतनी तेज नही ।

हरसिगार के पेडो की भरमार । कही-कही तो तादाद मे इतना ज्यादा, कि लगता, यह हरसिगार का ही जगल है । शरत्काल के सबेरे नीचे की चट्टानो पर ढेर-के-ढेर हरसिगार के फूल चू-चू पडते थे । उन चट्टानो के आस-पास एक तरह की लम्बी और रूखी घास उनके साथ मैना-काँटा का गठबधन—काँटा, घास और चट्टान, सब पर ढेर-के-ढेर हरसिगार । सर्द और छायागहन स्थान होने के कारण सुबह को झरे फूल बिलकुल सूख नही गए थे ।

जाने कितनी तरह से इस कुड को मैने देखा ! लोग-बाग कहते थे, कुड के पास के जगल मे बाघ है । चाँदनी रात को उसकी ज्योत्स्ना-स्नात शोभा देखने के लोभ से कार्त्तिकी पूर्णिमा की रात को तहसीलदार बनवारीलाल की आँखो में धूल झोककर आजमाबाद कचहरी जाने के बहाने लवटोलिया डिहि होता हुआ मै वहाँ पहुँच गया ।

बाघ तो नही देख पाया, लेकिन मुझे सचमुच ही ऐसा लगा कि चाँदनी मे नहाए इस कुड मे मायाविनी वन-देवियाँ जल-केलि को आती होगी। चारो तरफ सन्नाटा, केवल पूर्वी किनारे के घने जगल मे सियार बोल रहे थे। दूर की गिरि-माला और जगल धुँधले दिखाई दे रहे थे। हिम-शीतल हवा मे पौधो और भ्रमर-लतिका के फूलो की भीनी खुशबू। मेरे सामने बिछी थी वन और पहाडो से घिरे कुड की तरग-विहीन छाती पर हेमन्ती पूनो की टह-टह चाँदनी, खुली, छायाहीन पानी पर पडी, नन्ही लहरो पर प्रतिफलित होनेवाली अपार्थिव देवलोक की चाँदनी। पेडो मे भ्रमर-लतिकाएँ लिपटी थीं, उनमे बेशुमार सफेद फूल खिले थे। लग रहा था जैसे परियो के श्वेत वस्त्र उड रहे हो।

झीगुर-जैसा ही कोई दूसरा कीडा लगातार चीख रहा था। कभी-कभी पत्ते गिरने की आवाज, कभी-कभी पत्ते हिलाते हुए जगली जीव-जन्तु के भागने की आहट

हम सबके सामने तो वन-देवियाँ नही आ सकती। कब, कितनी रात गए आती है, कौन जाने! उस सर्दी मे ज्यादा देर तक रुकना सभव नही था, सो लगभग घटा-भर रहकर मै लौट आया।

सरस्वती-कुड मे परियाँ आती है, यह मैने यही सुना था।

सावन के महीने मे उत्तरी सीमा के पैमाइश-कैंप मे मुझे एक रात बितानी पडी थी। मेरे साथ था रघुबरप्रसाद अमीन। वह पहले सरकारी नौकर था। इन जगलो मे उसका परिचय कोई बीस साल का था।

सरस्वती-कुड का जिक्र आते ही उसने कहा—"हुजूर, वह तो माया-कुड है। रात को उसमे हूर-परियाँ उतरती है। चाँदनी रात मे वे अपने कपडे पास की चट्टानो पर उतार कर रख देती है, फिर जल-केलि के लिए पानी मे उतरती है। ऐसे वक्त जो उन्हे देख लेते है, उन्हे भुला-फुसलाकर वे पानी मे डुबा मारती है। चाँदनी रात मे कभी-कभी उन परियो के मुख-मडल नील जल मे खिले कमलो के समान दिखाई पडते है। मैने तो अपनी आँखो से कभी नही देखा, पर हेड सर्वेयर फतहसिह ने एक बार देखा था।

एक दिन काफी रात बीते वे इसी कुड के पास से जगल की राह अपने कैंप को लौट रहे थे । दूसरे दिन सबेरे कुड मे उनकी लाश तैरती पाई गई । मछलियो ने उनके एक कान का ही सफाया कर दिया था । हुजूर, आप इस तरह वहाँ न जाया करे ।"

इसी कुड के किनारे एक रोज एक अजीब आदमी से मुलाकात हो गई । मै सर्वे-कैंप से इसी रास्ते से धीरे-धीरे लोट रहा था । देखा, जगल मे कोई आदमी मिट्टी खोदकर न जाने क्या कर रहा है । पहले तो सोचा, वह मिट्टी खोदकर भुँइ कोहडा निकाल रहा होगा । यह कोहडा लगता तो लत्तड ही मे है, लेकिन मिट्टी के अन्दर । ऊपर से उसका सुराग ही नही लग सकता । चूँकि वैदो को वह दवा के काम लगता है, इसलिए अच्छी कीमत पर बिक जाता है । मुझे कौतूहल हुआ । पास पहुँचकर मै घोडे से उतर पडा । कहाँ का कोहडा, वह तो माटी गोड कर कोई बीज बो रहा था ।

मुझे देखकर वह सकपका गया और अप्रतिभ होकर मेरी ओर ताकने लगा । काफी उम्रवाला आदमी था—सिर के बाल कच्चे-पक्के थे । उसके पास टाट की एक थैली थी, जिसमे से फावडे का जरा-सा हिस्सा बाहर झॉक रहा था । बगल मे खती पडी थी, जहाँ-तहाँ कागज के मुडे सिकुडे टुकडे पडे थे ।

मैने पूछा—"आप क्या कर रहे है यहाँ ?"

उसने पूछा—"हुजूर क्या मैनेजर बाबू है ?"

—"हाँ । और आप ?"

—"नमस्ते हुजूर ! मेरा नाम युगलप्रसाद है । नवटोलिया मे आपके जो पटवारी है बनवारीलाल, मै उनका चचेरा भाई हूँ ।"

मुझे याद आ गया , पटवारी ने कभी बातो-बातो मे अपने चचेरे भाई का जिक्र जरूर छेडा था । आजमाबाद कचहरी मे, यानी जहाँ मै था, मुहर्रिर की एक जगह खाली थी । उसी सिलसिले मे उसकी बात आई थी । मैने ही एक अच्छे आदमी की तलाश के लिए उससे कहा था । बनवारी-

लाल ने दुःख जाहिर करते हुए कहा था--"आदमी तो उसका अपना चचेरा भाई ही है, लेकिन अजीब-सा है। अजीब खयाली और लापरवाह। वरना कैथी का उतना सुन्दर हरूफ लिखने वाला और पढा-लिखा आदमी इस इलाके मे कम ही है।"

मैंने पूछा था—"क्यो, वह करता क्या है ?"

बनवारी ने कहा था—"वह कुछ न पूछिए हुजूर, जाने कितनी ऐसी आदते है उसकी। इधर-उधर भटकते चलना भी उसका एक मर्ज है। करता-धरता कुछ नही, शादी-ब्याह किया है, मगर गिरस्ती नही देखता, जगल की खाक छाना करता है, लेकिन साधु-सन्यासी भी नही है, जाने क्या है, कैसा है !"

ओह हो, तो यही बनवारी का चचेरा भाई है !

मेरा कौतूहल और भी बढ गया। पूछा—"यह क्या बो रहे हो ?"

वह लुक-छिप कर मानो काम कर रहा था और पकडाई मे आ गया, उसने कुछ शर्मिदा और अप्रतिभ होकर कहा—"कुछ नही हुजूर, एक पेड का बीज बो रहा था।"

मै अचरज मे आ गया। किस पेड का बीज ? जमीन उसकी अपनी नही—घनघोर जगल। इस जगल मे कौन-से पेड का बीज रोप रहा है और ऐसे रोपने की सार्थकता भी क्या है ? मैंने उससे यही पूछा।

बोला—"बीज बहुत तरह के है हुजूर। पूर्णिया मे मैंने एक साहब की कोठी मे एक खासी अच्छी लता देखी थी—बडे ही खूबसूरत फूल लगे थे उस पर ! उसके बीज भी है, और-और फल-फूलो के भी बीज दूर-दूर से खोज-ढूँढ कर लाया हूँ। इन जगलो मे ैसे पेड नही है, इसीलिए रोप रहा हूं। दो-एक साल मे उनकी शोभा निखर आयगी।"

उसके इस अच्छे मतलब से उस पर मुझे श्रद्धा हो आई। बिना किसी स्वार्थ के एक इतने बडे जगल की सुन्दरता को बढाने के लिए वह अपना समय और पैसा खर्च कर रहा है, जिस जमीन पर उसका जरा भी हक नही—अजीब है !

उसे मैने बुलाया और दोनो एक पेड के नीचे बैठे। उसने कहा—"यह काम मै आज से नही, बरसो से कर रहा हूँ हुजूर, लवटोलिया के जगल मे फूलो के जो पौधे या लत्तड आप देख रहे है, उन सब के बीज आज से दस-बारह साल पहले मैने कुछ तो पूर्णिया से और कुछ दक्खिन भागलपुर की लक्ष्मीपुर स्टेट के जगल से लाकर लगाए थे। अब तो उनके जगल ही हो गए है।"

—"तुम्हे यह काम बहुत पसन्द है, क्यो ?"

—"लवटोलिया के बैहार का जगल बहुत सुन्दर है हुजूर—इन छोटे-छोटे पहाडो और जगलो मे तरह-तरह के फूलो का मेला लगाने का मुझे बडा शौक रहा है।"

—"कौन-कौन से फूल लाते रहे ?"

—"पहले हुजूर को यह सुना लूँ कि मेरा जी इधर कैसे लगा। मेरा घर पडता है धरमपुर इलाके मे। वहाँ जगली भाँडी के फूल बिलकुल नही मिलते थे। मै छुटपन मे अपने गाँव से दस-पन्द्रह कोस दूर कोसी के किनारे-किनारे भैसे चराया करता था। उधर जहाँ-तहाँ उस फूल की निखरी हुई शोभा देखा करता था। मैने उसके बीज लाकर अपने यहाँ लगाए। अब यह हालत है कि अपने यहाँ रास्तो के किनारे, लोगो के घर के पिछवाडे, जगल-झाड मे, जहाँ देखिए इस फूल की भरमार हो गई है। बस, तभी से मेरे दिमाग मे यह बात घर कर गई कि यहाँ जो लता-फूल नही है, उन्हे ला-ला कर लगाऊँगा। तमाम जिन्दगी यही करता रहा हूँ, अब तो मै इस काम मे डूब ही गया हूँ।"

सचमुच युगलप्रसाद इधर होने वाले बहुतेरे फूलो और खूबसूरत लताओ की जानकारी रखता था। इसका वह एक विशेषज्ञ था, इसमे मुझे कोई सदेह नही रहा। मैने पूछा—"एरिस्टलोकिया लता को जानते हो तुम ?"

मैने उसे उस लत्तड के फूल का हवाला दिया। सुनकर वह बोला—

"हस-लता ? हस की शक्ल के फूल जिसमे लगते है ? वह लता इधर की नही है। मैने पटना मे बाबुओ के बाग मे उसे देखा है।"

उसकी जानकारी पर हैरत हुई। सौन्दर्य के ऐसे पुजारी मिलते ही कितने है ? जगलो मे लता और फूल के बीज बोने मे उसका अपना कोई स्वार्थ नही, कौडी की आमदनी नही होती इससे, आप बेचारा निहायत गरीब, फिर भी जगल की शोभा-सुषमा बढाने के लिए ऐसा अथक उत्साह और अटूट उद्योग !

उसने कहा—"सरस्वती-कुड-जैसा खूबसूरत जगल इस इलाके मे और कही नही है बाबूजी। बेहिसाब पेड है और कुड के पानी की शोभा ! क्या कहना है उसका ! अच्छा , यह तो बताए, कुड मे कमल लगाऊँ तो लगेगे ? धरमपुर के तो अनेक पोखरो मे कमल है। सोच रहा था, लाकर लगाऊँ।"

मैने मन-ही-मन उसकी सहायता का सकल्प किया। सोचा, हम दो जने मिलकर जगलो का नई-नई लताओ , पेडो और फूलो से शृगार करेगे। उस दिन से मुझे तो इसका नशा-सा सवार हो गया। मुझे खबर थी कि युगलप्रसाद को रोटी के भी लाले पडे है, गिरस्ती बेहद तकलीफ से चलती है। मैने सदर से लिखा-पढी की और आजमाबाद कचहरी मे उसे दस रुपये की मुहर्रिर की एक जगह दिलाई।

उसी साल मै कलकत्ता से साटन के विदेशी वन-फूलो के बीज ले आया। डूअर्स पहाड से जगली जूही की लता के टुकडे लाए और सरस्वती-कुड के आस-पास लगाए। युगलप्रसाद के उत्साह और आनन्द का क्या पूछना ! मैने उसे सिखलाया कि तुम्हारे इस आनन्द और उत्साह की खबर कचहरी के लोगो को न लग सके। नही तो तुम्हारा तो जो होगा, हो होगा, लोग मुझे भी पागल बना छोडेगे। दूसरे ही साल बरसात मे पेड और लताएँ गजब की बढ गई। कुड के पास की जमीन काफी उपजाऊ थी और जो पौधे मैने लगाए थे वे यहाँ की आब-हवा के अनुकूल थे। हाँ, साटन के बीजो की जो पुडियाँ थी , उनमे जरा गोलमाल हो गया। पुडियो पर फूलो

के नाम और किसी-किसी पर उसका मुख्तसर मे परिचय भी दिया था। रग और शकल मे अच्छा समझकर जिन बीजो को लगाया, उनमे से 'व्हाइट विम', 'रेड कैस्पियन' और 'स्ट्रिचवार्ट' ही बेतरह बढे। 'फॉक्सग्लाव' और 'उड्ऐनिमोन' भी बुरे नही हुए, लेकिन लाख प्रयत्न करने पर भी 'डॉग रोज' और 'हॉनीसाक्ल' के पौधे न बचाए जा सके।

पीले धतूरो जैसे एक प्रकार के पौधे कुड के किनारे-किनारे लगाए गए थे। उनमे बडी जल्दी फूल आए। युगल पूर्णियॉ के जगल से जो वैरा लता के बीज लाया था, सात ही महीने मे उनकी लताओ ने बहुतेरे पेडो को छा लिया। इसके फूल देखने मे जितने सुन्दर होते है, उतनी ही मीठी होती है उनकी खुशबू।

हेमत के शुरू-शुरू मे एक दिन नजर आया, उस लता मे बेशुमार कलियाँ लगी है। मैने युगल से यह जो कहा, तो उसने कलम फेकी और आजमाबाद से सात मील सरस्वती-कुड तक दौडा-दौडा गया।

मुझसे उसने कहा—"हुजूर, लोग कहते थे, यह लता बढेगी, फैलेगी सब होगा, पर फूल नही लगेगे। सब मे शायद फूल नही लगते, मगर देखिए, कितनी सुदर कलियाँ लगी है।

पानी मे 'वाटर क्रोफ्ट' की जडे लगाई थी। वह तो इस कदर फैलने लगा कि युगलप्रसाद को फिक्र हो आई, कही यह कमल को न दबोच बैठे।

इच्छा थी वोगेनविलिया लता मगाने की भी, लेकिन लगा, शहरो के बाग-बगीचो से उसका इतना घना सबध है कि कही कुड की वन्य प्रकृति को वह नष्ट न कर दे। युगल की भी यही राय हुई, उसने भी मना किया।

इसके लिए पैसे भी कुछ कम नही खरचे। एक दिन गनौरी तिवारी ने बताया—"कारो नदी के उस पार जयती पहाड पर एक अजीब किस्म के फूल होते है—इधर उन्हे दूधिया फूल कहते है। पत्ते उसके होते है हलदी के पौधे-जैसे चोडे-चौडे, पौधा भी करीब-करीब इतना ही बडा—लबे डठल कोई तीन-चार हाथ ऊपर तक जाते है। एक-एक पेड मे वैसे चार-पॉच डठल लगते है और एक-एक डठल मे चार-पॉच पीले-पीले फूल लगते

है। फूल देखने मे तो सुदर होते ही है, खुशबू भी बडी अच्छी होती है। रात को उससे दूर-दूर तक महमहा उठता है। इस फूल का एक भी झाड जहाँ लग गया कि देखते-ही-देखते वहाँ दो-तीन साल मे घनघोर जगल होगया समझिए।"

गनौरी तिवारी से सुना और मेरी नीद हराम हो गई। ये पौधे लाने ही पडेगे। उसने बताया, बरसात से पहले वह नही लाया जा सकता। उसकी जडे लानी है—पानी बिना वे मर जायँगी।

रुपये-पैसे देकर मैंने युगल को भेजा। उसने जयती पहाड के दुर्गम जगल मे बडी-बडी मुश्किल से दूधिया की दस-बारह गडे जडो का किसी तरह इतजाम किया।

नवाँ परिच्छेद

[एक]

लगभग तीन साल निकल गए।

इस तीन साल के अरसे मे मुझमे बहुत परिवर्तन आ गया। लवटोलिया और आजमाबाद की वन्य-प्रकृति ने मेरी आँखो मे न जाने कैसा माया-काजल आँज दिया कि शहर को मं करीब-करीब भूल ही गया। निर्जनता के मोह ने, तारो से भरे उदार आकाश के मोह ने मुझे इस बुरी तरह जकड लिया कि बीच मे एक बार कई दिनो के लिए पटना जो गया, तो वहाँ की कोलतार पुती बँधी-बँधाई सडको के सँकरे दायरे से लवटोलिया बैहार आ जाने के लिए जी छटपटाने लगा—प्याले के समान उलटे पडे नीले आसमान के नीचे, जहाँ मैदान और मैदान है, जगल और जगल है, जहाँ बनाई हुई सडके नही, ईटो के बने मकान नही, मोटर के भोपू की भद्दी आवाज नही, गहरी नीद के अवधान मे जहाँ दूर जगल मे सियारो की टोली प्रहर की सूचना देती है, या नीलगायो की भागती जमात के खुरो की आवाज या भैसो का गर्जन सुनाई पडता है।

ऊपर से बार-बार तकाजे आने लगे थे कि रैयतो को जमीन क्यो नही दी जा रही है। मै खूब समझता था कि मेरा यहाँ यही प्रमुख काम था , पर मेरी इच्छा रैयत बसा कर प्रकृति के ऐसे एकात निकुज को नष्ट करने की नही हो रही थी। आखिर जो जमीन लेगे, वे उसे पेड-पौधो से सजाने के लिए तो लेगे नही—लेगे और उसे साफ-सुथरी करेगे, अनाज उपजाएँगे, घर-द्वार बनाकर रहेगे—यह निर्जन शोभामय वन-प्रातर, जगल, कुड, पहाडियाँ, सब जनपद मे बदल जायँगी। लोगो की भीड से डरकर वन-लक्ष्मियाँ हाँफती हुई भाग खडी होगी। मनुष्य आकर इस माया-कानन की माया को भी मिटा देगे। इसकी सुदरता भी बर्बाद कर देगे।

उस जनपद की तसवीर मै अपनी आँखो से साफ देख रहा था। पटना, मुंगेर या पूर्णियाँ जाते हुए इधर-जैसे जनपद हर जगह मिलते थे। बदसूरत घरो की भीड, एकमजिला या दुमजिला, फूँस के छप्पर, सीझ के काँटे, गोबर के ढेर से घिनाये गोहाल, रहट से पानी निकालना, मैले कपडो से लिपटे नर-नारियो की भीड, मदिर मे उडते हुए महावीरी झडे, गले मे चाँदी की हँसुली डाले नग-धडग बालक-बालिकाओ के धूलि-धूसरित दल सडक पर खेल मे मस्त।

यह सब देकर बदले मे क्या मिलेगा!

ऐसी विशाल, रोक-बधन-हीन उद्दाम सौदर्यमयी अरण्यभूमि देश की बहुत बडी दौलत हुआ करती है। और कोई देश होता, तो कानून द्वारा यहाँ नेशनल पार्क बनाकर रखता। कामो से थके-हारे शहर के लोग समय-समय पर यहाँ आकर प्रकृति के साहचर्य से अपने श्रात-क्लात मन को ताजा बनाकर लौटते। मगर यहाँ तो ऐसा होने से रहा, जमीन जिसकी है, वह रैयतो को न देकर इसे यो कैसे छोड देगा?

मै यहाँ रैयत बसाने के लिए ही आया था—मगर इस अरण्य-प्रकृति को ध्वस करने के लिए आकर अनोखी सुदरी इस वन्य नायिका के प्रेम मे फँस गया। यदा-कदा घोडे पर जब मै छाया-गहन तीसरे पहर या मुक्ता-शुभ्र चाँदनी रात मे घूमने निकलता, तब चारो तरफ देखकर बार-बार यही जी मे आता कि ये सब मेरे ही हाथो से नष्ट होगे? चाँदनी मे खोया-खोया-सा उदास और सुनसान प्रातर! इस चतुरा सुदरी ने किस तरह से मुझे मोह रक्खा है!

मगर जो काम करने आया था, उसे करना ही था। माघ के अत मे पटना से छट्ठूसिंह नाम का एक रजपूत आया। उसने हजार बीघा जमीन के लिए अर्जी दी। मै काफी पेशोपेश मे पड गया। हजार बीघे मे तो काफी जगह बर्बाद हो जायगी, जाने कितनी सुदर झाडियाँ, और लता-वितान कट जायँगे!

छट्‌ठूसिंह कचहरी का चक्कर काटने लगा। मैंने उसकी दरखास्त को सदर मे भेज दिया—इस विनाश मे कुछ तो देर हो जाय।

[दो]

एक दिन दोपहर के बाद लवटोलिया के जगल से उत्तर नाढा बैहार होकर लौट रहा था। देखा, रास्ते के किनारे कोई पत्थर पर बैठा है।

मैंने उसके समीप जाकर घोडे को रोका। वह आदमी साठ से कम का न होगा। कपडे मैले, बदन पर एक फटी-सी चादर।

इस सुनसान मैदान मे आखिर वह कर क्या रहा है? उसने मुझसे पूछा—"आप?"

मैंने कहा—"मै यहाँ के जमीदार का एक कारिन्दा हूँ।"

—"तो क्या आप मैनेजर बाबू है?"

—"हाँ मै मैनेजर हूँ। कोई काम है?"

वह उठ बैठा। जैसे आशीर्वाद कर रहा हो, इस ढग मे उसने हाथ ऊपर उठाया। उसने कहा—"जी, मेरा नाम मटुकनाथ पाडे है। ब्राह्मण हूँ। हुजूर के ही पास जा रहा था।"

—"मेरे पास? क्यो?"

—"हुजूर मै बेहद गरीब हूँ। आपका नाम सुनकर बडी दूर से पैदल ही आ रहा हूँ। तीन दिनो तक चलता ही रहा हूँ—आपकी दया से जीविका का अगर कोई हीला हो जाय।"

मुझे कौतूहल हुआ। पूछा—"ये तीन दिन जो आप जगलो की राह चलते रहे, सो खाया क्या?"

मटुकनाथ की मैली चादर की कोर मे उडद का सत्तू बंधा था। उसे दिखाते हुए वह बोला—"सेरभर सत्तू लेकर घर से निकला था। वही खाता आ रहा हूँ। रोजी की खोज मे निकला हूँ हुजूर। सत्तू तो खत्म हो आया—ईश्वर फिर कुछ बदोबस्त कर देगे।"

चादर के कोने मे सत्तू बाँधकर आजमाबाद और नाढा बैहार के

जन-शून्य प्रातर मे वह किस रोजगार की उम्मीद लेकर आया है, मै यह नही समझ सका। मैंने कहा—"भागलपुर, मुगेर, पूर्णियाँ जैसे बडे-बडे शहरो के होते हुए इस जगल मे कैसे आ निकले पाडेजी ? यहाँ क्या होना है। आदमी कहाँ है यहाँ—कुछ देगा भी तो कौन ?"

उसने निराशा भरी निगाह से मुझे देखते हुए कहा—"यहाँ जीविका का कोई ठिकाना नही होगा बाबू ? फिर मै जाऊँ कहाँ ? शहर मे मै किसी को नही जानता, वहाँ की राह-बाट का भी पता नही, डर लगता है। इसीसे इधर आया हूँ।"

वह मुझे बडा भला, भोला और बेचारा लगा। मै उसे साथ-साथ कचहरी तक लिवा ले गया।

कई दिन बीत गए, मैं मटुकनाथ को कोई काम न दिला सका। देखा, वह कोई काम भी नही जानता, मामूली ही सस्कृत पढी थी। वह पडित-पुजारी का काम कर सकता था। टोल मे लडको को पढाया करता था। वह मेरे सामने सस्कृत के श्लोक पढकर मेरा मनोरजन करने की कोशिश करने लगा।

एक दिन उसने कहा—"हुजूर, मुझे कहरी के पास थोडी-सी जमीन देकर एक सस्कृत पाठशाला ही खुलवा दे।"

मैंने कहा—"उस पाठशाला मे आखिर पढेगा कौन पडितजी ? ये जगली भैसे और नीलगाएँ क्या भट्टी और रघुवश समझेगी ?"

मटुकनाथ बडा सीधा-सादा आदमी था। शायद बिना कुछ सोचे-समझे ही उसने यह बात कह दी थी। मैंने सोचा—अब समझकर वह इससे जरूर बाज आएगा। लेकिन दो-चार दिन मौन रखकर उसने फिर वही प्रस्ताव रक्खा। बोला—"मिहरबानी करके मुझे सस्कृत पाठशाला खुलवा दे हुजूर। एक बार कोशिश तो कर देखूँ। न होगा, तो मै जाऊँगा कहाँ ?"

अजीब मुसीबत। आदमी यह खब्ती तो नही है! उसके चेहरे को देखकर दया हो आती। बडा ही सरल आदमी—तीन-पाँच नही जानता।

अबोध-सा आदमी—मगर इतनी उम्मीदे लेकर जाने किसके भरोसे यह यहाँ आ गया है ?

मैंने उसे बहुतेरा समझाया कि मै जमीन देता हूँ, खेती करो, जैसे राजू पाँडे करता है। उसने निहोरा करके कहा—"परपरा से पडिताई करता आया हूँ, खेती का क-ख भी नही जानता, जमीन लेकर करूँ तो क्या करूँ ?"

यो मै कह सकता था कि पडिताई करने वाला आदमी यहाँ मरने को आ क्यो गया ? लेकिन कडवी बात कहते न बनी। वह मुझे बडा भला लगा था। आखिर उसे मैंने एक घर बनवा दिया। कहा—"यही पाठशाला हुई। अब आप जानो कि पढनेवाले मिलते भी है या नही।"

मटुकनाथ ने पूजा-पाठ किया, दो-तीन ब्राह्मणो को भोजन कराया। इस तरह सस्कृत पाठशाला की प्रतिष्ठा हुई। इस जगल मे वैसा कुछ मिलता-जुलता भी तो नही। मटुक ने मकई के आटे की मोटी-मोटी पूरियाँ बनाई। अपने हाथो, जगली तोरई भूनी, बथान से भैस का दूध लाकर दही जमाया। यही ब्राह्मण-भोजन की सामग्री। निमत्रितो मे अवश्य मै भी था।

पाठशाला खोलकर कुछ दिनो तक को मटुकनाथ ने बडा मजा किया। ऐसे-ऐसे जीव भी दुनिया मे रहते है।

सुबह की आह्निक-पूजा करके वह खजूर के पत्तो की चटाई बिछाकर पाठशाला मे बैठ जाता और 'मुग्धबोध' की प्रति सामने खोलकर सूत्रों की आवृत्ति करता जाता, ठीक जैसे किसी को पढा रहा हो। इतने-जोर-जोर से पढता कि अपने दफ्तर मे बैठा मै उसे साफ सुन लेता था।

तहसीलदार सज्जनसिह कहता—"ये पडितजी भी खासे पागल ही है। जरा रवैया देखिए हुजूर!"

इसी तरह दो महीने कटे। मटुकनाथ सूने घर मे उसी उत्साह से अपनी पाठशाला चलाता रहा। एक बार सुबह, एक बार तीसरे पहर। इतने में आ गई सरस्वती-पूजा। हर साल दावात-पूजा करके ही वाग्देवी की अर्चना कचहरी मे होती थी, मूर्ति यहाँ बनवाई भी कहाँ से जाती ? मुझे पता चला,

मटुकनाथ अपनी पाठशाला मे अलग से पूजा करेगा, अपने हाथो शायद सरस्वती की प्रतिमा भी बनाएगा।

इस साठ साल के बूढे के उत्साह और धीरज की बलिहारी!

हँसते हुए उसने कहा—"यह पूजा मेरी पैतृक पूजा है बाबूजी। मेरे पिताजी अपनी पाठशाला मे हरसाल मूर्ति बनवाकर पूजा किया करते थे। अब मेरी पाठशाला मे—" मगर पाठशाला कहाँ?

अवश्य मटुकनाथ ने यह बात कही नही।

[तीन]

सरस्वती-पूजा के कोई दस दिन बाद एक रोज मटुकनाथ ने आकर मुझे बताया—"पाठशाला मे एक छात्र भर्ती हुआ है। वह आज ही कही से आया है शायद!"

उसने छात्र को मेरे आगे लाकर खडा किया। चौदह-पद्रह साल का एक साँवला-दुबला-सा लडका, मैथिल ब्राह्मण, बडा ही गरीब, जो कपडे पहने था, उनको छोडकर दूसरा कोई कपडा ही न था उसके पास।

मटुकनाथ के उत्साह की न पूछिए। खुद को रोटी नही मिलती, मगर तुरत उसने उस छात्र के भरण-पोषण का भार उठा लिया। यह उसकी वशगत प्रथा थी। अब तक पढनेवाले छात्रो के अभाव उसके यहाँ की पाठशाला की तरफ से ही मिटाए जाते रहे थे, सो पढने के लिए आनेवाले छात्र को उससे लौटाते न बना।

एक-दो महीने के अदर और भी दो-एक छात्र आ जुटे। एक जून सब भोजन करते, एक जून नही। प्यादे चदे से लाकर मकई का सत्तू, आटा, माढा दिया करते। मैं भी कुछ मदद कर देता। छात्र जगल मे बथुए का साग ले आते और उसी को उबालकर उसी पर एक शाम काट लेते। मटुकनाथ का भी यही हाल था।

रात के दस-ग्यारह बजे तक पाठशाला के सामने एक बहेडे के पेड

के नीचे मैं मटुकनाथ को पढाते देखता। या तो अँधेरे मे या चॉदनी रात मे। तेल भी नही जुटता था रोशनी के लिए।

एक बात पर मुझे अवश्य ही अचरज हुआ कि पाठशाला के लिए जमीन और घर की प्रार्थना के सिवाय उसने कभी भी मुझसे पैसो की मदद नही मॉगी। यह भी कभी नही कहा कि हुजूर, गुजारा नही होता, आप कोई और उपाय करे। वह किसी से भी कुछ नही कहता था। प्यादे लोग अपनी मर्जी से जो चाहे दे देते थे।

बैसाख मे लेकर भादो तक उसकी पाठशाला मे छात्रो की सख्या काफी हो गई। मॉ-बाप द्वारा घर से निकाले कोई दस-बारह गरीब लडके—मुफ्त मे भोजन मिलेगा, इस लोभ से—जाने कहॉ-कहॉ से आकर उसमे दाखिल हो गए। इधर तो कौओ के मुह से ऐसी बात फैलती है! देखकर लगा, ये लडके पहले भैस चराते थे। बुद्धि का पैनापन किसी मे न था और वही पढने चले थे काव्य और व्याकरण! दरअसल बेचारे मटुकनाथ को सीधा पाकर उसके कधो पर सवार होकर मुफ्त खाने को आ गए थे वे, मगर मटुकनाथ को इन बातो का खयाल ही नही था, छात्र जुट गए, उसे इसीकी बेहद खुशी थी।

एक दिन खबर मिली, टोल के छात्र आज भूखे ही रह गए है, और मटुकनाथ भी। खाने को कुछ नही मिला।

मैंने बुलवाकर मटुकनाथ से पूछा।

खबर सही थी। सिपाहियो ने जो थोडा-सा आटा और सत्तू दिया था, वह कई दिन पहले ही चुक गया था। कई रोज रात को सीझे हुए बथुए के साग पर रहना पडा। आज वह भी नसीब नही हुआ। और बथुए का साग खा-खाकर कई छात्रो की तबीयत भी खराब हो गई थी। छात्र अब उसे खाना भी नही चाहते थे।

—"तो अब क्या कीजिएगा पॉडेजी?"

—"मेरी तो अक्ल काम नही करती हुजूर! इतने छोटे-छोटे लडके—भूखे रहेगे"

मैंने अपने यहाँ से उन लोगों के लायक दो-तीन दिन का सामान भिजवाया—चावल, दाल, आटा, घी। कहा—"ऐसे पाठशाला नहीं चलने की पाँडेजी। इसे बंद कर दीजिए। आप उन्हें खिलाएँगे क्या और खुद क्या खाएँगे ?"

मैंने समझा, मेरी बात से पाँडेजी का जी दुख गया। वह बोला—"ऐसा भी होता है हुजूर! चली-चलाई पाठशाला उठा दूँ ? यह तो मेरा बपौती रोजगार है।"

मटुकनाथ आदमी सदानंद है, ये बातें उसे समझाना बेकार है। मैंने देखा, उन छात्रों के साथ वह मजे में है।

मटुकनाथ की कृपा से हमारी वन-भूमि का एक हिस्सा मानो ऋषि का आश्रम हो उठा था। छात्रगण जोर-जोर से 'मुग्धबोध' के सूत्र रटा करते। कचहरी के मचान पर से फले कद्दू-कोहड़े चुरा ले जाते, डाल-पत्ते नष्ट करते हुए फूल चुरा ले जाते, यहाँ तक कि कचहरी के लोगों की दूसरी चीजें भी धीरे-धीरे गायब होनी शुरू हो गईं। प्यादे आपस में कहने-सुनने लगे कि यह कारगुजारी पाठशाला के लड़कों ही की है।

एक दिन नायब का बक्स खुला पाया गया। उसमें से किसीने कई-एक रुपए और घिसी-घिसी-सी सोने की एक जो अँगूठी थी, गायब कर दी थी। बड़ी हलचल मच गई। कई दिन बाद वह अँगूठी एक छात्र के पास पाई गई। उसने उसे कमर के एक बटुए में छिपाकर रक्खा था। किसी ने देख लिया और खबर कर दी। चोरी के माल सहित वह पकड़ा गया।

मैंने मटुकनाथ को बुलवाया। हकीकत में वह बेचारा बड़ा भला था। उसकी भलमनसाहत का लाभ उठाकर लड़के मनमानी कर रहे थे। सो पाठशाला तोड़ने की जरूरत तो नहीं थी, मगर दो-एक छात्रों को हटाए बिना भी काम नहीं चल सकता था। मैंने कहा—"जो छात्र रह जायँ, मैं उन्हें जमीन देता हूँ। एड़ी-चोटी का पसीना एक करके उसमें मकई, चीना—यह सब उपजाएँ। उसी से गुजारा करें।"

मटुकनाथ ने छात्रों से यह कहा। बारह लड़के थे, उनमें से आठ तो

यह मुनते ही चल दिए। चार रह गए। मेरा खयाल है, वे भी कुछ पढने के खयाल से नही रहे, रहे इसलिए कि और कोई चारा ही नही था। पहले भैस चराया करते थे, अब न होगा तो खेती कर लेगे। तब मे उसकी पाठशाला एक तरह मे अच्छी ही चलने लगी।

[चार]

छट्ठूसिह तथा दूसरे रैयतो को कोई डेढ हजार बीघा जमीन दे दी गई। नाढा बैहार की भूमि ही ज्यादा उपजाऊ थी, इसलिए यह मारी जमीन लोगो को उसी मे से दी गई। यहॉ की प्रातर-सीमा के वन बडे रम्य थे। बहुत बार उधर मे गुजरते हुए मेरे जी मे होता था, नाढा बैहार का यह जगल दुनिया का एक ब्यूटी स्पाट है—वह ब्यूटी स्पाट अब गया!

दूर से ही नजर आता, जगल मे आग लगाई गई है। बिना थोडा-बहुत जलाए उस घने जगल को काटना मुश्किल था, लेकिन वन भी सभी जगह तो नही था, दिगत-व्यापी प्रातर के किनारे-किनारे था जगल, प्रातर के बीच क्वचित्-किचित् कही-कही झाडियॉ, जाने कैसी-कैमी लताएँ कौन-कौन-से जगली फूल।

मै बैठा-बैठा जगल के जलने की चट्-चट् आवाज सुनने लगा। कितनी शोभामयी लताएँ खाक हो गई—यही सोचता रहा। न जाने कैमी तकलीफ होती थी, इसीलिए उस तरफ को नही जाता। देश की एक इतनी बडी दौलत, जो चिरकाल तक मनुष्य के मन को शाति और आनद दे मकती थी, एक मुट्ठी गेहूँ के बदले उसे विसर्जन कर देना पडा!

कातिक के आरभ मे एक दिन मै उस जगह को देखने गया। सारे मैदान मे सरसो बोया गया था, बीच-बीच मे बस्ती बस गई थी। इसी बीच मे गाय-भैस और स्त्री-पुत्रो के साथ लोग-बाग गॉव बमाकर रहने लगे थे।

जाडे के बीचो बीच जब उस फूली हुई सरसो से चारो तरफ उजाला-सा फैल गया, तब आँखो के आगे जो अपूरब नजारा पेश हुआ, उसकी तुलना नही हो सकती। डेढ हजार बीघे का वह विशाल प्रातर सुदूर क्षितिज के

छोर तक पीले गलीचे से जैसे ढंक गया हो, न कही फाॅक, न कोई व्यवधान——ऊपर इद्रनीलमणि-सा फैला नीला आसमान, उसके नीचे पीली-पीली धरती, जहाँ तक नजर जा सके। मैने सोचा——चलो, यह भी बुरा नही हुआ।

एक रोज मै उन नए गाँवो को देखने गया। एक छट्ठूसिह को छोडकर बाकी सब गरीब लोग। एक रात्रि-पाठशाला खोलने की बात सोची। सरसो के खेतो के पास बहुतेरे लडके-लडकियो को खेलते देखकर उसकी जरूरत महसूस हो आई।

लेकिन कुछ ही दिनो मे नए रैयतो ने गोल-माल शुरू कर दिया। ये जरा भी शातिप्रिय नही थे। एक दिन मैं अपनी कचहरी मे था। खबर मिली कि नाढा बैहार के रैयतो ने आपस मे दगा-फिसाद शुरू कर दिया है। चूँकि खेतो मे मेड न थी, इसीलिए झगडे की शुरूआत हुई। जिसके नाम पाँच बीघे जमीन थी, उसने दस बीघे पर दखल जमाना चाहा। यह भी पता चला कि सरसो की फसल तैयार होने के कुछ दिन पहले ही छट्ठू-सिह ने अपने यहाँ बहु-से रजपूत लठैत बुलवाकर रक्खे थे। क्यो बुलवाए इसका असली मतलब अब समझ मे आया। तीन-चार सौ बीघे मे तो उसकी अपनी फसल थी, उसके सिवा नाढा बैहार के डेढ हजार बीघे की खेती मे से जितना भी हो सके, वह लाठी के जोर से हथिया लेना चाहता था।

अमलो ने मुझे बताया——"यहाँ का यही रवैया है हुजूर, 'जिसकी लाठी, उसकी फसल।'"

जो बेचारे कमजोर पडते थे, वे मेरे पास आकर रोने लगे। गरीब गगोते थे ये। इन्होने जगल काटकर महज दस-पाच बीघे जमीन मे खेती की थी और उसी के भरोसे बाल-बच्चो सहित खेतो के आस-पास ही घर-द्वार बनाकर बस गए थे। अब एक प्रबल व्यक्ति के जुल्म से उनके सारे वर्ष की मिहनत का फल जा रहा था।

मामला क्या है, यह देखने के लिए मैने कचहरी के दो प्यादो को वहाँ भेजा था। वे भागे-भागे आए और बोले——"भीमदास टोला की उत्तरी सीमा पर जोरो का दगा हो रहा है।"

तहसीलदार सज्जनसिह तथा कचहरी के सभी सिपाहियो को लेकर मै उसी दम रवाना हो गया। दूर से ही हो-हल्ला सुनाई पडा। बैहार के बीच मे एक पतली-सी नदी बहती थी। लगा, यह हो-हल्ला ज्यादा उसी तरफ हो रहा था।

नदी के किनारे पहुँचकर देखा—उसके दोनो ही किनारो पर लोग इकट्ठे हैं। साठ-सत्तर आदमी इस पार और उस पार छट्ठूसिह के तीस-चालीस रजपूत लठैत। लठैत इस पार आने की ताक मे थे। इस पार के लोगो ने उन्हे रोकने की कोशिश की थी। इस पार के दो-एक आदमी इस कोशिश मे घायल भी हो चुके थे। घायल होकर वे नदी मे गिर पडे थे। छट्ठूसिह के लोगो ने उनमे से एक की गर्दन को गँडासे से काट लेना चाहा था। ये लोग भिडकर उसे छीन लाए थे। नदी मे नाम को ही पानी था, फिल्ली भी नही डूबती थी। एक तो पहाडी नदी, फिर जाडा खत्म हो रहा था।

हम लोगो को देखकर लोगो ने दगा बद किया। दोनो तरफ के लोग मेरे पास आए। दोनो ही पक्षो ने अपने को युधिष्ठिर और दूसरे को दुर्योधन बनाया। उस गुलगपाडे मे न्याय-अन्याय समझ सकना कठिन था। मैने दोनो ही दलो के लोगो को इसके लिए अपनी कचहरी मे आने को कहा। जो घायल थे, उन्हे लाठी की मामूली-सी चोट लगी थी—जख्म गहरा न था। उन्हें भी मै कचहरी ले आया।

छट्ठूसिह के दलवालो ने बताया, वे लोग दोपहर के बाद कचहरी मे हाजिर होगे। मैने समझा—बात आई-गई हो गई, लेकिन हकीकत मे तब भी मै उन्हे पहचान नही पाया था। दोपहर के जरा देर बाद ही खबर मिली वहाँ फिर से दगा शुरू हो गया है। सिपाहियो को लेकर फिर मै दौडा। नौगछिया थाना वहाँ से पन्द्रह मिल पर था। थाने मे खबर देने के लिए घोडे से एक आदमी को भेज दिया। पहुँचकर मैने देखा, जैसा सबेरे था, वैसा ही हाल। छट्ठूसिह ने इस समय और भी बहुत-से लोग जुटा रक्खे थे। मालूम हुआ कि रासबिहारीसिह राजपूत और नदलाल गोलावाला छट्ठूसिह की

मदद कर रहे थे। छट्ठूसिह खुद सरजमीन पर मौजूद न था, उसका भाई गजाधरसिंह कुछ दूर पर घोडे पर सवार खडा था। उसने मुझे जो देखा, सो खिसक पडा। अबकी बार मैने राजपूत दल के दो आदमियो के हाथो मे बदूके देखी।

उस पार से राजपूतो ने चिल्लाकर कहा—"आप हट जाएँ हुजूर, हम जरा इन गगोतो को सबक सिखा दे।"

मेरे हुक्म से मेरे साथ के लोग दोनो दलो के बीच जा खडे हुए। मैने बता दिया कि थाने मे खबर भेज दी गई है। अब तक दारोगा-सिपाही आधी दूर आ गए होगे। और ये बदूके किनकी है? अगर बदूक छोडी गई, तो उन्हे जेल जाना ही पडेगा, खैर नही।

जिनके हाथो मे बदूके थी, वे दोनो आदमी पीछे हट गए। गगोतो को बुलाकर मैने कहा—"देखो, झगडा फिसाद की कोई जरूरत नही, अपने-अपने घरो को लौट जाओ। मै यहाँ हूँ। मेरे आदमी यहाँ रहेगे। अगर तुम्हारी फसल लूटी जायगी, तो मै जिम्मेदार हूंगा।

गगोतो के सरदार ने मेरी बात मानी। अपने लोगो के साथ वह कुछ दूर पर एक बकाइन के पेड के नीचे जा खडा हुआ। मैनेकहा—"वहाँ भी मत रुको—सीधे घर चले जाओ। पुलिस आ ही धमकी समझो।"

मगर राजपूत इतने से मानने वाले न थे। वे उस पार आपस मे न जाने क्या राय-मशविरा करने लगे। मैने तहसीलदार से पूछा—"सज्जन-सिंह, माजरा क्या है? हम पर तो धावा नही होनेवाला है?"

तहसीलदार ने कहा—"हुजूर, यह जो नदलाल ओझा आ जुटा है खतरा उसीका है। वह कबख्त पूरा डाकू है, डाकू!"

—"तो सावधान रहो। किसी को उस पार मत जाने दो। किसी कदर दो घटे सँभाल लो, इतने मे पुलिस आ पहुँचेगी।"

राजपूतो ने आपस में तै क्या किया, पता नही। कुछ लोग मेरे पास आए। बोले—"हुजूर, हम लोग उस पार जायँगे।"

मैने पूछा—"क्यो?"

—"क्यो क्या, हमारी क्या उस पार जमीन नही है ?"

—"ये सारी बाते पुलिस को बताना, आ ही रही है। मैं इधर आने की इजाजत नही दे सकता।"

—"हमने ढेर-के-ढेर रुपए सलामी देकर जो जमीन ली है, वह क्या बर्बाद होने देने के लिए ही ? यह तो आपका अन्याय है, जुल्म है।"

—"इस जुल्म की शिकायत भी पुलिस से करना।"

—"तो हमे आप उस पार बिलकुल भी नही जाने देगे ?"

—"पुलिस के आने से पहले नही। अपने इलाके मे मै मार-पीट की नौबत नही आने दूँगा।"

इतने मे हमारी कचहरी के और भी आदमी आ जुटे और उन्होने अफवाह उडा दी कि पुलिस के लोग आ रहे है। एक-दो करके धीरे-धीरे छट्ठूसिह की जमात के लोग खिसकने लगे। उस समय के लिए तो झगडा-लडाई समाप्त हो गया। मगर वही जो उसका सूत्रपात हुआ, सो दिन-दिन बढता ही चला गया। मै समझ गया कि छट्ठूसिह-जैसे जालिम राजपूत के हाथो इतनी ज्यादा जमीन बेच देने का ही यह नतीजा है। सारे झगडे-फिसाद की जड यही है। मैने एक दिन उसे बुलवाया। वह साफ इनकार कर गया कि इन बातो की उसे कतई जानकारी नही। बोला—"मेरा ज्यादा समय छपरे मे बीतता है। मेरे कारिन्दे क्या करते है, उसको मै क्या जानूँ ?"

मै ताड गया, आदमी यह एक ही काइयाँ है। सीधी तौर से काम बनने का नही। अगर उसे सबक देना है, तो और ही उपायो की शरण लेनी पडेगी।

तब से मैने गगोतो के सिवा किसी भी दूसरे रैयत को जमीन देना बिलकुल बद कर दिया, लेकिन जो गलती एक बार कर चुका था, उसका कोई प्रतिकार किए न हो सका। नाढा बैहार की शाति सदा के लिए जाती रही।

[पाँच]

अपने बारह मील के रकबे मे फैले जगली मौजे के उत्तर मे कोई छै सौ एकड जमीन मे रैयत बस गए थे। पूस के आखिरी दिनो एक बार उधर जाने की जरूरत पडी। गया। देखा—लोगो ने इलाके की शकल ही बदल डाली है।

फुलकिया बैहार से बाहर निकला कि सामने क्षितिज तक फैला हुआ फूली हुई सरसो का खेत नजर आया। जहाँ तक आँख जा पाती थी, सामने दाएँ-बाएँ ऐसा मालूम होता था, मानो किसी ने पीला फूल कढा हुआ गलीचा बिछा दिया हो—न ओर-छोर, न बाधा-बधन। जगल के छोर से लेकर वह क्षितिज के समीप तक की नीलगिरि-माला मे जाकर मिल गया था। ऊपर शीतकाल का निर्मेघ नील गगन। ऐसे अनोखे खेतो के बीच-बीच मे रैयतो के कसाल के झोपडे खडे थे। पता नही, ऐसी करारी सर्दी मे ये बाल-बच्चो के साथ इन झीने झोपडो मे कैसे रह लेते थे।

फसल पकने मे देर नही थी। जगह-जगह से कटनियो की जमात इसी बीच मे जुटने लगी थी। इन मजूरो की जिदगी भी अजीब होती है। ये पूर्णियाँ तराई तथा जयती पहाड के आस-पास और उत्तरी भागलपुर से यहाँ आते है और बाल-बच्चो सहित आते है। झोपडे डालकर रहते है, खेतो मे फसल काटते है, उसी की जो मजूरी मिलती है, उससे गुजर-बसर करते है। कटनी खत्म हो जाने पर वापस चले जाते है, अगले साल फिर आते है। कटनी मजूरो मे अनेक जाति के लोग रहते है, लेकिन सबसे ज्यादा रहते है गगोते। छत्री, भूमिहार और मैथिल ब्राह्मण भी इनमे होते है।

यहाँ फसल कटते समय खेतो मे ही मालगुजारी वसूलने का रिवाज है , इसलिए कि यहाँ के लोग इतने गरीब है कि फसल घर उठ जाने के बाद मालगुजारी चुकाना उनके लिए मुमकिन नही होता। इसी सिलसिले मे मुझे खुद भी कई दिनो तक फुलकिया बैहार मे रहना पडा।

तहसीलदार ने कहा—" तो आपके लिए वहाँ तबू खडा करवा दू ? "

—"दिन-भर मे कसाल का एक झोपडा क्यो नही बनवा देते ?"

—"ऐसी सर्दी मे उसमे रह सकेगे हुजूर ?"

—"बखूबी रहूँगा। बनवा दो।"

वही किया गया। पास-पास कसाल के तीन-चार छोटे-छोटे झोपडे डाले गए। एक मेरे सोने के लिए, एक रसोई और एक दो-तीन प्यादो के रहने के लिए। इस तरह के झोपडो को इधर के लोग 'खोपडी' कहते है। इसमे न तो होता है दरवाजा, न होती है खिडकी। अदर जाने-आने के लिए सामने की तरफ खुला होता है। बद करने की गुजाइश नही होती। हू-हू करके हिम-शीतल हवा के झोके आते रहते है। दरवाजे के बदले जो खुली जगह होती है, वह इतनी नीची होती है कि सिकुड कर अदर दाखिल होना पडता है। सूखा कसाल गाढा करके बिछा दिया गया, उस पर दरी और दरी पर डाल दिया गया मेरा बिछावन। मेरे लिए जो झोपडा बना, वह सात हाथ लबा और तीन हाथ चौडा था, मगर ऊँचाई उसकी मुश्किल मे तीन हाथ की होगी। खडा होना मुहाल।

मगर मुझे यह झोपडा अच्छा लगा। इतना आराम तो मुझे कलकत्ता मे तीन या चार मजिल के मकान मे रहकर भी नही मिला। यह हो सकता है कि बहुत दिन से यहाँ रहते-रहते मै जगली होता जा रहा हूँ। मेरी रुचि, मेरा दृष्टिकोण, भला-बुरा लगना, सब पर इस खुली वन्य प्रकृति का थोडा-बहुत प्रभाव पडा था। कौन कह सकता है कि मेरा यह अच्छा लगना उसी की बदौलत था या नही ?

उस झोपडे मे दाखिल होते ही जो चीज मुझे अच्छी लगी, वह थी ताजे कसाल की बू, जिससे झोपडा बना था। दूसरी चीज थी, झोपडे के झरोखो से सोये-सोये दीखते रहनेवाले सरसो के दिगत-विस्तृत पीले फूलो से भरे खेत। यह दृश्य अनोखा ही था। लगता था कि जैसे मै किसी ससार-व्यापी पीले गलीचे पर पडा हूँ। तेज हवा मे सरसो के फूलो की तीखी गध भरी थी।

सर्दी भी खासी पडी। पछुआ एक दिन को भी बद नही हुई। उससे जलती धूप भी गल कर ठढा पानी हो जाती थी। बैहार मे जो बेर का जगल

था उसके पास से घोडे पर लौटते हुए मै सुदूर तिरासी-चौंका की नील चोटी पर जाडे का सूर्यास्त देखा करता। अग्नि कोण से नैऋत्यकोण तक सारा पश्चिमी आसमान रग उठता। ऐसा लगता, जैसे पिघली आग के समुद्र मे प्रकाड अग्नि गोलक-जैसा सूरज उतर पडता। मै मानो पृथ्वी की आह्निक गति को प्रत्यक्ष देख रहा हूँ, यह विशाल धरती जैसे पूरब से पश्चिम को घूमती चली आ रही है। ज्यादा देर तक ताकते रहने से भ्रम होता। सचमुच ही लगता कि पश्चिमी क्षितिज के छोर की धरती उस विदु की तरफ घूमती आ रही है, जिस पर मै खडा हूँ।

धूप के मिटते ही कडाके की सर्दी पडने लगती। तमाम दिन कडी मेहनत करने और घोडे से यहाँ-वहाँ जाने-आने के कारण हम भी थक जाते। शाम को झोपडे के आगे आग जलाकर उसी के पास बैठा करते।

अधकार से ढँके वनो के ऊपर जलनेवाले अनगिन तारे न जाने कितनी दूर-दूर के विश्व के ज्योति-दूत के रूप मे धरती के लोगो की आँखो के आगे प्रकट होते। ये नक्षत्र बिजलीबत्ती-से झकमक जलते—बगाल मे मैने वैसी कृत्तिका, वैसा सप्तर्षिमडल कभी नही देखा था। बराबर देखते-देखते उनसे मेरा गहरा परिचय हो गया था। नीचे गाढा अँधेरा, जगल, सूनापन, रहस्यमयी रात और सिर के ऊपर मेरे रोज-रोज का साथी ज्योतिर्लोक! कभी-कभी अधकार के समुद्र मे चाँद का टुकडा ऐसा दिखाई देता, जैसा कि बहुत दूर के रोशनी-घर मे प्रकाश! और उस गाढे अँधियारे को आग के तीर से चाक-चाक करता हुआ यहाँ-वहाँ उल्का-पात। जिधर देखो, उधर ही, दक्खिन, उत्तर, ईषाण, नैऋत्य, पूरब, पश्चिम—हर तरफ। यह एक, वह एक और फिर वह एक—हर मिनट पर, हर सेकिड पर।

कभी-कभी गनौरी तिवारी या और बहुत-से लोग मेरे झोपडे मे आ जुटते। तरह-तरह की बाते छिडती। यही एक दिन मैने एक गजब की कहानी सुनी। बातो-ही-बातो मे उस रोज शिकार के किस्से शुरू हो गए। अचानक मोहनपुरा रिजर्व फारेस्ट के जंगली भैसे की बात उठ आई। इत्तिफाक से चरी की डाक बोलने के लिए दशरथसिह झडावाला उस

दिन वही आया हुआ था। कभी इस आदमी ने जंगलो की खूब खाक छानी थी। उसका नाम अच्छे शिकारियो मे था। उसने बताया—भैंसो के शिकार में मैंने एक बार 'टाँडबारो' देखा था हुजूर!

मुझे याद आया, गोनू महतो ने एकबार टाँडबारो का जिक्र किया था। मैंने पूछा—"वह क्या?"

—"बात बहुत पहले की है हुजूर—उस समय कोसी वाला पुल नही बना था। कटोरिया मे जोडा खेप लगा करता था, पैसेजर और माल, दोनो एक साथ पार होते थे। मै और छपरा का छट्ठूसिह, उन दिनो दोनो घोडे के नाच के पीछे पागल थे। छट्ठूसिह छत्तर (सोनपुर) के मेले से घोडा लाया करता और उन्हे नाच सिखा कर हम ज्यादा दाम पर बेचा करते थे। घोडे का नाच दो तरह का होता है—जमैती और फौजी। जो घोडा जमैती में पक्का होता, उसकी कीमत ज्यादा मिलती। जमैती नाच सिखाने में माहिर था छट्ठूसिह। तीन-चार वर्षों में हम दोनो ने इससे अच्छा कमाया।

"एक बार छट्ठूसिह की राय हुई कि लाइसेंस लेकर ढोलबज्जा जगल से भैसे पकडे जायँ और उसी का कारोबार करें। ढोलबज्जा दर-भगा महाराज का रिजर्व फारेस्ट था। सब इन्तजाम किया गया। जगल का जो अमला था, उसकी जेब गरम करके परमिट अदा किया। सब हो-हवा जाने के बाद मैं कई दिनों तक घनघोर जगल की खाक छानता रहा, सिर्फ यह जानने के लिए कि भैसो के जाने-आने की राह किधर और कौन-सी है। उतना बडा जगल, मगर क्या मजाल कि एक भी भैंसा दिखाई पड़ता! हार-थक कर एक सथाल की मदद ली। उसने हमे बाँसो की एक झाडी दिखा कर कहा—'देखिए, गहरी रात हुए भैसे इसी रास्ते से पानी पीने जाते है।' हमने उस रास्ते को दूर तक काफी गहरा खोदा और उस पर बाँस और मिट्टी डाल कर फंदा तैयार किया। अगर इससे होकर भैसो की टोली जायगी, तो वह गिर कर गढ़े में फँस जायगी।

"उस सथाल ने हमारे फन्दे देखे और कहा—'तुमने हिकमत तो खूब

लगाई, मगर मै कहे देता हूँ, ढोलबज्जा जगल के भैसो को तुम हर्गिज नही मार सकते। यहाँ टाँडबारो है।'

"हम तो अवाक् रह गए—'यह टाँडबारो क्या बला है?'

"उस बुड्ढे सथाल ने बताया—'टाँडबारो, जगली भैसो का देवता है। उसके रहते भैसो का बाल भी बाँका नही हो सकता।'

"छट्ठूसिह अड गया—'ये बेकार की बाते है, हम नही मानने के। हम रजपूत है, सथाल नही है।'

"उसके बाद हम पर जो गुजरी, उसे सुनकर आप दग रह जायँगे हुजूर! आज भी उसकी याद आते ही मेरे रोगटे खडे हो जाते है। हम गहरी रात को बाँसो की एक झाडी के पास दुबके खडे थे, चुपचाप—चूँ तक भी नही की हमने। हमे भैसो के पैरो की आहट सुनाई दी, वे फदो की तरफ आ रहे थे। बहुत ही करीब आ गए, कोई पचास हाथ के फासले तक। अचानक फदे के पास, करीब दस हाथ की दूरी पर एक काला-कलूटा, बेहिसाब लम्बा आदमी हाथ उठाए खडा दीख पडा। इतना लम्बा था वह कि लगा उसका सिर बाँस की फुनगी से जा सटा है। उस पर नजर पडते ही भैसे ठिठक गए और वे धीरे-धीरे बिखर कर जिधर-तिधर चले गए। फदे की सीमा तक भी कोई न आया। अब आप यकीन करें या न करें हुजूर, आँखो देखी बात है।"

उसके बाद भी हमने दूसरे शिकारियो से पूछ-ताछ की। उन्होने भी साफ कह दिया—"ढोलबज्जा में भैसो को पकडने की उम्मीद छोड दो। टाँडबारो एक का भी रोआ तक न छूने देगा।" हमारे परमिट के रुपए पानी में गए, भैंसा हम एक भी न फँसा सके।

उसका किस्सा खत्म हो जाने पर लवटोलिया के पटवारी ने कहा—"टाँडबारो के किस्से तो हम भी बचपन से सुनते आ रहे है। वह जगली भैसो का देवता है और सदा इसके लिए सतर्क रहता है कि भैसो के प्राण अकारथ न जायँ।"

कहानी सच्ची है या झूठी, मुझे यह जानना जरूरी न था। मै तो ऊपर

निगाह उठाए अँधेरे आसमान पर प्रकाश के खड्गवाले काल्पुरुष को देखने लगा , स्तब्ध पडे जगल के ऊपर अँधेरा आकाश औधा पडा था। दूर कही जगल मे से वनकुक्कुट बोल उठा—अधेरा और निस्तब्ध आकाश, अँधेरी और निस्तब्ध पृथ्वी—जाडे की इस रात मे दोनो एक दूसरे के पास पहुँच कर मानो कुछ कानाफूसी कर रहे हो—दूर मोहनपुरा जगल की श्याम सीमा-रेखा की ओर ताकते हुए इस अनोखे वन-देवता की बात याद आते ही मेरा शरीर सिहर उठता। इस तरह के किस्से ऐसे ही जगलो मे जाडे की रातो मे आग तापते हुए ही सुनने मे अच्छे लगते है।

दसवाँ परिच्छेद

[एक]

पूरे पन्द्रह दिन तक यहाँ मैंने जगली जीवन बिताया, जैसा कि गगोते या इधर के गरीब भूमिहार बिताया करते थे। स्वेच्छा से कहना तो गलत होगा, बहुत कुछ लाचारी से ही इस तरह रहना पडा। आखिर इस जगल मे मिलता भी क्या, और लाया भी कहाँ से जाता ? रूखा भात और जगली परोल की तरकारी पर गुजर। प्यादे मीठे आलू ले आते जगल से, कभी-कभी उसी की भुजिया। न मछली, न माँस, न दूध—कुछ नही।

इस जगल मे सिल्ली और मोर की कमी जरूर नही थी , मगर उन्हे मारने को जी नही चाहता था। बदूक थी, फिर भी निरामिष भोजन ही चलाता रहा।

फुलकिया बैहार मे बाघ का खतरा था। एक दिन की घटना सुनाऊँ।

हड्डी तोडने वाली सर्दी की रात। दस बजे तक मैंने सारे काम-काज खत्म कर दिए और जरा जल्दी ही सो गया। अचानक जाने कितनी रात गए लोगो की चीख-पुकार से नीद उचट गई। जगल के किनारे कही इकट्ठे होकर लोग शोर मचा रहे थे। मैं उठ बैठा। रोशनी की। प्यादे पास के झोपडे मे सोए थे—वे भी बाहर निकल आए। सब मिलकर सोचने लगे—आखिर माजरा क्या है ? इतने मे एक आदमी दौडा-दौडा आया और बोला—"मैनेजर बाबू, जरा अपनी बदूक लेकर जल्दी चले, बाघ एक नन्हे-से बच्चे को उठा ले भागा है।"

जगल के पास ही एक खेत मे डोमन गगोता की झोपडी थी। उसकी स्त्री छै महीने के बच्चे को लेकर झोपडी मे सोई हुई थी। जाडा बेतरह पड रहा था, सो अन्दर आग जला रक्खी थी। धुआँ भीतर घुमड न उठे , इसलिए

झोंपडी का दरवाजा जरा खोल दिया गया था। उसी से बाघ अन्दर दाखिल हो गया और बच्चे को ले भागा।

मगर बाघ ही था, यह कैसे पता चला ? गीदड भी तो हो सकता है ! जहाँ यह घटना हुई थी, वहाँ पहुँच कर जरा भी शक नही रह गया। खेतों की नर्म मिट्टी पर बाघ के पजो की छाप पडी थी।

मेरे प्यादे और पटवारी अपने गाँव की बदनामी नही फैलने देना चाहते थे। उन्होने विश्वासपूर्वक कहा—"यह बाघ यहाँ का नही हो सकता हुजूर, यह रिजर्व फारेस्ट का बाघ है, बेशक वही का है। जरा पजा देखिए, कितना बडा है ! "

बाघ कही का हो, उससे क्या आता-जाता है। मैंने कहा—"लोगों को इकट्ठा करो। मशाल लेकर चलो, जगल में देखें।" रात का आलम, बाघ का वह खौफनाक पजा जो देखा, तो सब मारे डर के थर-थर काँपने लगे थे। जगल मे कौन जाय, किसे अपनी जान भारी है। मैंने गरज-बिगड़ कर मुश्किल से दसेक आदमियो को तैयार किया। उनके हाथो मे मशालें दी और कनस्तर पीटते हुए जगल मे खोज-ढूँढ की ; मगर सब बेकार।

दूसरे दिन, दिन के दस बजे वहाँ से कोई दो मील की दूरी पर उस बच्चे की लहू-लहान लाश एक आसान पेड के नीचे पडी पाई गई।

उसके बाद उतरी अँधियारी पाख की भयावनी काली-काली रातें !

मैंने बाँकेसिंह जमादार को बुलवा लिया। वह शिकारी था और बाघो का अता-पता जानता था। उसने बताया—"आदमखोर बाघ एक नम्बर का धूर्त्त होता है हुजूर। देखिएगा, और कई लोगो को मार खाएगा। सावधानी से रहना चाहिए।"

इसके ठीक तीन दिन बाद बाघ जगल के किनारे से एक चरवाहे को ले भागा। अब तो लोगो ने सोना भी हराम कर लिया। रात को एक अजीब तमाशा ! इतने बडे बैहार के झोपडो मे तमाम रात कनस्टर पीटने की आवाज , कसाल की सुलगती हुई आग। मैं और बाँकेसिंह एक-एक पहर पर बन्दूक की आवाज करने लगे। और उत्पात क्या केवल बाघ ही का था ?

एक दिन रिजर्व फारेस्ट से जगली भैसो की जमात आकर खेतो में पिल पड़ी और फसल को तहस-नहस करके चली गई।

मेरे झोपडे के आगे सिपाहियो ने आग जला रक्खी थी। मै जब-तब उसमें लकडी डाल दिया करता। बगल के झोपडे मे प्यादे आपस में बातें कर रहे थे। मै झोपडे मे सोया हुआ था। सिरहाने की तरफ के झरोखे से अधकार से ढँका दूर तक फैला प्रातर और तारो की मद जोत मे जगल की धुँधली सीमा-रेखा दीख रही थी। ऊपर आसमान की तरफ देखकर ऐसा लगा, मानो मृत नक्षत्रलोक से तुषारवर्षी हिमशीतल बयार की लहरें पृथ्वी की ओर लपकी चली आ रही है। तोशक-तकिया जैसे पानी हो गया हो, आग ठडी पडती आ रही थी, ऐसी करारी सर्दी! और ऊपर से बैहार से आने वाली कन्कन् हवा के प्रबल झोके!

लेकिन इधर के लोग इस सर्दी मे कैसे रह लेते हैं, खुले आसमान के नीचे मामूली-से झोपडो के अन्दर सीली हुई जमीन पर रात कैसे गुजारते हैं? फिर फसल जोगने की यह जिम्मेदारी, जगली भैसो का उत्पात, जगली सूअरो की हरकतें—बाघ का भी खतरा। बगाल के किसान भला इतनी तकलीफ उठा सकते है? उतनी उपजाऊ जमीन और उत्पातरहित परिवेश के होते हुए भी उनके कष्ट नही कटते।

दक्खिन भागलपुर से कुछ कटनिए आए हुए थे। वे मजूर बाल-बच्चो सहित मेरे झोपडे से जरा ही दूर पर टिके थे। मै एक दिन साँझ को उधर से लौट रहा था। देखा—झोपडे के सामने बैठकर सब लोग आग ताप रहे हैं।

मेरे लिए इन लोगो की दुनिया बिल्कुल अपरिचित और अज्ञात थी। सोचा—जरा इसे भी क्यो न देख ले।

मै उनके पास गया। पूछा—"क्यो भैया, क्या हो रहा है?"

उनमे से एक बूढा था, मेरा सवाल उसी से था। वह उठ खडा हुआ। सलाम करके उसने मुझसे आग तापने का अनुरोध किया। ऐसा रिवाज था इधर का। जाड़ो मे आग तापने के लिए कहना भद्रता मानी जाती।

बैठ गया मै। झोपडे मे झॉक कर देखा—बिछावन या असबाब नाम की कोई चीज उनके पास नही थी। झोपडे के अन्दर जमीन पर थोडी-सी सूखी घास पडी थी। बर्त्तन के नाम पर कॉसे का एक बडा-सा कटोरा और एक लोटा था। कपडे जो उनके बदन पर थे, उतने ही , उसके सिवाय एक टुकडा भी नही। खैर, कपडा इतना ही सही, मगर रजाई-कथरी कहाँ है ? इस भयकर जाडे मे ये रात को ओढते क्या है ?

मैंने उनसे यही सवाल किया।

बूढे का नाम था नकछेदी भगत। जात का वह गगोता था। उसने कहा—"रजाई क्या, झोपडे के कोने मे वह उडद का भूसा जो ढेर लगा पडा है। "

मै कुछ समझ नही सका। पूछा—"क्या रात को भूसे से आग जलाते हो ? "

नकछेदी मेरे सीधेपन पर हँसा।

—"जी नही। बच्चे रात को उसी मे घुस कर सो रहते है और हम-लोग भी उसी को अपने ऊपर डाल लेते है। देखिये न, न भी होगा, तो पाँच मन भूसा है कम-से-कम। बडी गर्मी होती है इसमे, दो कबलो मे भी इतनी गर्मी नही होती। फिर हमे कबल नसीब भी कहाँ होता है ? "

इतने मे एक बच्चे को उसकी माँ भूसे के उसी ढेर मे गर्दन तक घुसा कर सुला आई। केवल उसके मुँह को बाहर रहने दिया। मै सोचने लगा—वास्तव मे एक आदमी आदमी के बारे मे जानता भी कितना है ? मै ही क्या कभी इन बातो की जानकारी रखता था ? आज मानो मै वास्तविक भारत के स्वरूप को पहचान रहा हूँ।

आग के दूसरी ओर एक जवान लडकी कुछ पका रही थी। मैने पूछा—"क्या रसोई बन रही है ? "

नकछेदी ने कहा—"घाटा। "

—"यह घाटा क्या होता है ? "

वह लडकी न जाने मेरे बारे मे क्या सोचने लगी कि शाम को अचा-

नक ये बगाली बाबू कहाँ से आ टपके—कुछ जानते ही नही ! इन्हे दुनिया की खाक भी खबर नही ! वह खिलखिला कर हँस पडी। बोली—"घाटा क्या होता है, यह भी नही जानते आप बाबूजी ? घाटा उबली मकई। चावल उबालने मे जैसे भात तैयार होता है, वैसे ही मकई उबाल कर घाटा बनता है।

मेरी अज्ञता पर उसे दया आई। उसने थोडा-सा घाटा हॉडी में से निकाल कर मुझे दिखलाया।

—"इसे कैसे खाते है ?"

अब तो मेरे प्रश्नो का जवाब वह लडकी ही देने लगी। हॅसती हुई वह बोली—"नमक के साथ, साग के साथ . और कैसे ?"

—"साग बन गया ?"

—"इसके बाद साग चढाऊँगी। मटर का साग तोड कर रक्खा है।"

वह लडकी थी खूब सप्रतिभ। पूछा—"आप कलकत्ता रहते है ?"

—"हॉ।"

—"कैसी जगह है कलकत्ता ? अच्छा, सुनते है वहॉ कोई पेड नही है ? वहॉ सारे ही पेड-पौधे काट डाले गए है ?"

—"यह किसने कहा तुमसे ?"

—"हमारी तरफ का एक आदमी वहॉ काम करता है, उसी ने कहा था। अच्छा, है कैसी जगह वह ?"

मैंने उस सरल बालिका को यह समझाने की भरसक कोशिश की कि आधुनिक युग का एक बडा शहर क्या होता है। वह कितना समझ सकी, यह नही कह सकता। बोली—"कलकत्ता देखने की इच्छा तो बडी होती है, मगर कौन दिखायगा ?"

उसके साथ मैंने और भी बाते की। रात ज्यादा हो गई, अँधेरा गाढा हो आया। उन लोगो की रसोई तैयार हो गई। उस लडकी ने झोपडे के अन्दर से कॉसे के उस बड़े कटोरे को निकाला और उसी मे माड-भात-जैसी

उस चीज को ढाल दिया। ऊपर से उस पर थोडा-सा नमक भुरभुरा दिया। चारो तरफ से बैठकर बच्चे खाने लगे।

मैंने पूछा—"यहाँ से तुम लोग अपने घर वापिस जाओगे?" नकछेदी बोला—"घर लौटने मे अभी काफी देर है। यहाँ से धान काटने के लिए धरमपुर जायँगे। धरमपुर मे धान होता है, यहाँ नही होता। धान की कटाई खत्म हो जायगी, तो गेहूँ काटने के लिए मुगेर जायँगे। गेहूँ की कटाई समाप्त होते-होते जेठ का महीना आ जायगा। तब खेडी काटने के लिए फिर आपही के इलाके मे लौटेगे। उसके बाद कुछ दिनो की छुट्टी। सावन-भादो में फिर मकई। मकई के बाद उडद और उडद के बाद धरमपुर-पूर्णियाँ मे कतिकी धान। हम साल-भर इसी तरह यहाँ से वहाँ वहाँ से यहाँ चक्कर काटा करते है। जब जहाँ जो फसल होती है, जाते है। न जाएँ, तो पेट का गुजारा कैसे चले बाबूजी?"

—"तुम्हारे घर-द्वार नही है?"

अबकी बार वह लडकी बोली। चौबीस-पच्चीस की उम्र। तन्दुरुस्त, पालिश किया हुआ-सा काला रग, सुडौल बनावट। बात करने में चुस्त, दक्खिनी बिहार की गँवई भाषा उसके मुँह से बडी फबती थी।

वह बोली—"घर-द्वार है क्यो नही बाबूजी, है सब-कुछ, मगर वही बैठे रहने से तो अपना गुजारा नही चल सकता। अपने घर हम गर्मियो के अन्त में जायँगे और आधे सावन तक रहेगे। फिर परदेश का चक्कर. चाकरी ठहरी परदेश की। और परदेश के मजे भी बहुत है। फसल कट जाने दीजिए न, यही जाने कहाँ-कहाँ के लोग आयँगे—गाने-बजाने वाले, नचनिए, बहुरूपिए, आपने क्या नही देखा? देखे भी कहाँ से भला, आपका सारा इलाका तो जगल था, महज इसी बार तो यहाँ खेती हुई है। बस और पन्द्रह दिन की देर है, यही तो उनके कमाने-खाने का समय है।"

चारो ओर सन्नाटा। दूर की किसी बस्ती मे लोग अँधेरे में कनस्तर पीट रहे थे। मैं सोचने लगा—जंगली जानवरो से भरे इस जंगल के खुले झोपड़ो मे ये बाल-बच्चो को लेकर कैसे रह लेते है, इनके साहस की बलि-

हारी है ! कई दिन पहले की तो बात है, बाघ एक औरत के बगल से बच्चे को उठा ले गया—फिर इन्हे कैसा भरोसा है ? मगर एक बात मैंने पाई इनमें, इन्होने उस घटना को कुछ महत्त्व ही नही दिया, जैसे कुछ हुआ ही न हो। वैसा डर भी न था उनमे। मैंने कहा—"जरा होशियार रहना। पता है तुम्हे कि आदमखोर बाघ का खतरा बढ गया है ? ये आदमखोर बाघ बडे खौफनाक होते है, बडे चालाक। दरवाजे पर आग जला कर रक्खो और अन्दर रहो। जगल करीब ही है, रात का वक्त जो ठहरा—"

वह लडकी बोली—"इसके हम अब आदी हो गए है बाबूजी, पूर्णियाँ मे, जहाँ हम हर साल धान काटने जाया करते है, पहाड से जगली हाथी उतरा करते है। वह जगल तो और भी भयकर है। धान के दिनो में तो हाथी की हरकतें ज्यादा बढ जाती हैं।"

उसने आग मे झाऊ की कुछ और सूखी टुकडियाँ डाल दी और सामने की तरफ सरक कर बैठती हुई बोली—"उस बार हम लोग अखिलकूचा पहाड के नीचे ठहरे थे। एक रात को मै झोपडे के बाहर रसोई बना रही थी। अचानक सामने नजर जो गई, तो देखा कि महज पचास हाथ के फासले पर चार-पाँच जगली हाथी खडे है—अँधेरे मे खडे हुए देखने मे काले पहाड-से लग रहे थे। मालूम होता था, मानो वे झोपडे की तरफ ही आ रहे हो। मैने नन्हे को गोदी मे उठाया, बडी बच्ची का हाथ थामा, और रसोई छोड कर उन्हे झोपडे के अन्दर रख आई। आस-पास न कोई आदमी था, न आदमजाद। बाहर निकली, तो हाथी जैसे ठिठक कर खडे हो गए थे। मारे डर के मेरी बोलती बन्द। हाथी ज्यादा देख नही पाते, इसी से खैरियत हुई, वे गंध से दूर के लोगो का अदाजा लगा लेते है। उस समय हवा का रुख शायद दूसरी तरफ को था। जो भी हो, हाथी दूसरी तरफ चले गए। पूछिए मत बाबूजी, वहाँ भी तमाम रात हाथी के डर से लोग इसी तरह कनस्तर पीटते रहते है, आग जलाए रहते हैं। यहाँ जगली भैसों का भय, वहाँ बनैले हाथियो का खतरा। अब तो इस सबके हम आदी हो गए है बाबूजी !"

रात ज्यादा हो गई थी मै लौट आया।

दो हफ्ते के अन्दर फुलकिया बैहार की शकल ही बदल गई। सरसो पकी और न जाने कहॉ-कहॉ से विभिन्न वर्ग के लोग वहॉ आ-आकर जुटने लगे। बोरे और तराजू बाट लिए पूर्णियॉ, मुगेर और छपरा से मारवाडी खरीदार आए। उनके साथ कुलियो और गाडीवानी करने वालो का दल भी आया। हलवाइयो ने झोपडे डाल कर दूकान खोल दी। वे तेज भाव मे पूरी-कचौरी, लड्डू और कलाकद बेचने लगे। तरह-तरह की मनिहारी की चीजे, कॉच के बर्त्तन, खिलौने, सिगरेट, छीट, साबुन ले-ले कर फेरीवाले आए।

नाच-तमाशा दिखाकर पैसा कमाने वाले न जाने कितनी तरह के लोग पहुँच गए। नाचवाले नाच दिखाते, राम-सीता बनकर भक्तो की भेट लेते, पडाजी हाथ मे सिन्दूर पुती हनुमानजी की मूर्ति लिए दक्षिणा वसूलते। यह समय हर किसी के रोजगार का समय था।

पिछले साल जिस फुलकिया बैहार के जगली मैदान से शाम होते ही लौटने मे डर लगता था, अबकी बार उसी की यह आनन्द से खिली मूर्ति देखकर तबीअत बाग-बाग हो गई। चारो तरफ बालक-बालिकाओ की खुशी की किलकारी, कलरव, सस्ते भोपू की पो-पो, झुनझुने की आवाज, नाचवालो के घुँघरुओ की ध्वनि—मानो बैहार-भर मे एक विशाल मेला लग गया हो।

बैहार की आबादी भी बहुत बढ गई थी। रातो-रात वहॉ न जाने कितने झोपडे और छप्पर वाले घर खडे हो गए। घर बनाने मे यहॉ खास कोई लागत नही लगती। कसाल, झाऊ या केद की लकडियॉ तो जगल से मिल ही जाती है। कसाल बॉट कर रस्सी बन जाती है, काफी मजबूत रस्सी, और मेहनत तो लोग-बाग खुद ही कर लेते है।

तहसीलदार ने आकर कहा—"बाहर से जो लोग आकर यहॉ पैसे पैदा कर रहे है, उनसे जमीदार का लगान अद करना चाहिए। आप

बाजाब्ता दफ्तर लगाएं, मैं एक-एक करके सब को आपके सामने हाजिर करूँगा। आप जैसा भी उचित समझे, उसी हिसाब से कुछ लगान बाँध दे।

इस सिलसिले मे कितने ही प्रकार के आदमी देखने का सुयोग मिला। सुबह से दस बजे तक और तीन बजे से शाम तक रोज कचहरी करता।

तहसीलदार ने बताया—"ये लोग यहाँ ज्यादा दिनो तक नही रहेगे हुजूर! फसल तैयार होने पर खरीद-बिक्री खत्म हुई नही कि ये चलते बनेगे। इनसे लगान पहले ही वसूल कर लेना पडेगा।"

एक दिन मैंने एक मारवाडी महाजन को खलिहान मे अनाज तौलते देखा। मुझे ऐसा लगा कि ये भोले रैयतो को तौल मे ठगा करते हैं। मैंने पटवारी-प्यादो से उनके बाटो की जाँच करने को कहा। फिर क्या था, रोज वे दो-चार महाजनो को मेरे सामने पकड कर लाने लगे। किसी के बाट गलत थे, तो किसी की तराजू मे जालसाजी थी। मैंने वैसे लोगो को इलाके से बाहर निकलवा दिया। कम-से-कम मेरे यहाँ तो गरीबो की इतनी मसक्कत की कमाई को लोग न लूटे, इसी खयाल से मैंने ऐसा किया था।

और केवल ये महाजन ही क्यो, देखा, बहुत तरह के लोग इन्हे लूट खाने के लिए घात लगाए बैठे रहते है।

नकद कारोबार तो यहाँ बहुत ही कम होता था। फेरीवालो से इन्हे कुछ लेना होता, तो ये बदले में सरसो देते और बहुत ज्यादा सरसो दे देते, खासकर औरते। इनकी औरते बडी सीधी और सरल होती, उन्हे झूठ-सच बताकर एक का चार वसूल कर लेना बहुत ही आसान काम था।

मर्द लोग भी पक्के दुनियादार नही थे। वे विलायती सिगरेट खरीदते, जूता-कुरता लेते। फसल की कीमत घर आते ही उनके और औरतो के दिमाग फिर जाते। औरते रगीन कपडो, काँच और एनामेल के बर्त्तनो की फरमाइश करती। हलवाई के यहाँ से लड्डुओ के दौने-पर-दौने जाने लगते। नाच-गीत मे ही वे न जाने कितने पैसे फूँक देते। ऊपर से रामजी और हनुमानजी की दडवत ! उसके सिवाय जमीदार और महाजन के अमले अलग। मैंने यह देखा कि घोर जाडे की राते जग-जग कर, बनैले सूअर

और भैसो के उत्पात से बडे-बडे कष्टो से बचाकर, बाघ और साँप के खतरे में अपनी जिन्दगी डाल कर साल-भर में ये जो भी कमाते, उसे इन पन्द्रह दिनो मे उडा देने मे इन्हे कुछ नही खलता। मजे मे फूँक देते।

एक ही अच्छी बात मुझे इनमे दीखी कि ये लोग ताडी या शराब नहीं पीते थे। नशे का रिवाज भूमिहार या गगोतो मे नही था। हाँ, भग इनमे से बहुत-से लोग पीते थे। मगर भग खरीदने की इन्हे जरूरत नही थी, लवटोलिया और फुलकिया बैहार मे भग का जगल था, उसी के पत्ते ये लोग नोच लाते थे। कौन देखता है ?

मुनेश्वरसिह ने एक दिन खबर दी—"लगान देने के डर से एक आदमी भागा जा रहा है। हुक्म हो, तो उसे पकडवा मँगाएँ।"

मुझे अचरज हुआ—"दौड कर भागा जा रहा है ?"

—"घोडे की तरह बेतहाशा भागा जा रहा है हुजूर! अब तक तो बड़े कुड को पार करके जगल के किनारे जा पहुँचा होगा।"

मैंने उस धूर्त को पकड लाने का आदेश दिया। कोई घटे-भर में चार-पाँच आदमी मिलकर उसे मेरे सामने ले आए।

उस पर नजर जो पडी, तो मेरे मुँह से बोल न निकला। साठ से कम तो किसी हालत मे उसकी उम्र न होगी। सारा सिर सफेद हो गया था, गाल की खाल सिकुड गई थी। देखकर ऐसा लग रहा था, जाने कब से उसे दाना नही नसीब हुआ। यही शायद उसे बहुत दिनो के बाद भरपेट खाने को मिला था।

पता चला, वह 'माखनचोर नटुआ' बनता था। इन्ही दिनो में उसने बहुत पैसे कमाए थे। वह ग्राट साहब के बरगद के नीचे झोपडे में रहता था। इधर कई दिनो से प्यादो ने लगातार तकाजे किए, क्योकि फसल तैयारी का समय बीत चला था। उसने आज ही पैसे चुकाने का वायदा किया था। दोपहर को एकाएक प्यादो को खबर मिली कि वह अपना बोरिया-बधना समेटे नौ-दो-ग्यारह हो रहा है। मुनेश्वरसिह सुराग लेने निकला। देखा—वह तो बैहार पार कर चुका है। पूर्णियाँ की तरफ

रवाना हो गया है। इसे देखते ही उसने दौड लगाई। बाद मे जो हुआ, वह सामने है।

मुझे प्यादो के बयान पर जरा सन्देह हुआ। सन्देह यह कि 'माखन-चोर नटुआ' के मानी तो हुए बालकृष्ण, भला यह बुड्ढा कैसे बनता होगा? फिर यह झुलफुल बुड्ढा बेतहाशा दौड भी कैसे रहा होगा?

मगर सबने हलफ उठाकर बताया कि बात सही है। मैंने उससे कडक कर पूछा—"तुमने यह दगाबाजी की बात कैसे सोची? तुम्हे पता नही था कि जमीदार का लगान भी देना पडता है? क्या नाम है तुम्हारा?"

हवा के झोके से ताड का सूखा पत्ता जैसे काँपता है, भय के मारे वह वैसा ही काँप रहा था। फिर प्यादे तो एक की ग्यारह करने वाले, पकड़ लाने को कहो तो बाँध लाए। मैं समझ गया कि इस बूढे से उन लोगो ने भद्र और नम्र व्यवहार बिल्कुल नही किया। उसकी हालत ही यह बता रही थी।

उसने काँपते हुए अपना नाम बताया दशरथ।

—"जात? घर कहाँ है?"

—मैं भूमिहार ब्राह्मण हूँ हुजूर। घर मुगेर जिला पडता है—साहब-पुर कमाल।"

—"तुम आखिर भाग क्यो रहे थे?"

—"जी नही हुजूर, भागूँ क्यो भला?"

—"खैर, लगान दे दो।"

—"कुछ बचा नही हुजूर, लगान कहाँ से दूँ? नाच दिखाकर सरसो मिली थी। उसी को बेचकर खाना-खूराक चलाता रहा। हनुमानजी की किरिया।"

प्यादो ने कहा—"सरासर झूठ हुजूर, इसकी बातो में न आएँ। पैसे इसने खासे कमाए है और इसके पास ही मे हैं। आज्ञा हो, तो तलाशी लें इसकी?" उसने हाथ बाँधकर, गिडगिडा कर कहा—"हुजूर, मैं खुद ही बताए देता हूँ कि मेरे पास कितने पैसे है।"

उसने कमर मे से एक बटुआ निकाल कर उँडेल दिया और बोला—"देख ले हुजूर, कुल तेरह आने पैसे है। अपना कोई नही है, मुझे दे भी कौन ? खलिहानो मे नाच दिखा-दिखा कर जो थोडा-सा जोड लिया है, बस। अब जब तक गेहूँ नही कटते, तब तक यही सबल है। गेहूँ कटने के अभी तीन महीने हैं। कमाई से दो मुट्ठी खाने भर को मिल जाता है। प्यादे लगान के आठ आने माँग रहे थे। फिर तो मेरे पास सिर्फ पाँच ही आने रह जाते है। इन पाँच आनो पर तीन महीने कैसे कटेगे हुजूर ?"

मैने कहा—"हाथ मे तुम्हारे जो पोटली है, उसमे क्या है, निकालो।"

उसने पोटली खोलकर दिखाई। उसमे से निकला टीन मे मुडा एक छोटा-सा आईना, पन्नी का मुकुट—मोरपखीवाला, गाल रँगने का रग, नकली मोती की माला—सारे ही सामान उसके कृष्ण बनने के थे।

वह कहने लगा—"बाँसुरी तो है ही नही हुजूर। टीन की भी एक बाँसुरी लूँ, तो आठ आने से कम की नही आती। यहाँ तो मैने सरपत की बाँसुरी से ही काम चलाया। ये गगोते है, इनकी आँखो मे धूल झोकना आसान है, मगर हमारे मुगेर के लोग बडे इल्मवाले है, बाँसुरी न रहे तो हँसेगे और पैसे न देगे।'

मैने कहा—"खैर, लगान नही दे सकते, तो उसके बदले मे तुम नाच ही दिखा जाओ।"

बूढे को मानो मुट्ठी मे स्वर्ग मिल गया। उसने साज-सिगार किया—मुँह मे रग मला, माथे मे मोरपखेवाला मुकुट पहना और फिर जब वह बारह साल के बालक-जैसी भाव-भंगिमा दिखाता हुआ नाचने और गाने लगा, तो मै सोच न सका कि हँसू या रोऊँ।

मेरे प्यादे मुँह पर कपडे डाल कर हँसी रोक रहे थे। यह 'माखन-चोर नटुआ' का नाच उनकी निगाह मे एक जानमारू तमाशा हो गया। सामने रहे मैनेजर बाबू, उनके सामने न तो जी खोलकर हँसते बन रहा था, न हँसी का दुर्दम आवेग दबाए दब रहा था। बुरा हाल था सब का।

ऐसा अजीब नाच मैने अपने जीवन मे नही देखा था। साठ साल का

बढा बालक की तरह कभी तो रूठ कर मुँह फुलाए जननी यशोदा से दूर हट जाता, कभी भर-पेट हँसकर चुराए हुए मक्खन को साथियो मे बाँटता, चूँकि यशोदा ने उसके हाथ बाँध दिए, इसलिए कभी आँखे पोछता हुआ सिसक-सिसक कर रोता। यह सब देख कर हँसते-हँसते उनके पेट मे बल पड गए। सचमुच ही देखने की चीज थी वह नाच।

बूढे का नाच खत्म हो गया। मैंने तालियाँ पीटी और उसकी भरपूर प्रशसा की। कहा—"दशरथ, अपनी जिन्दगी मे मैंने ऐसा नाच नही देखा, बडा ही अच्छा नाचते हो तुम। जाओ तुम्हारा लगान माफ कर दिया गया और ये दो रुपए मेरी तरफ से लो, बख्शीश। वाह, खूब नाच दिखाया!"

दस-बारह दिन के अन्दर-अन्दर फसल की खरीद-फरोख्त खत्म हो गई। जो जहाँ से आए थे, चले गए। केवल वे जोतदार लोग ही रह गए, जिन्होने यहाँ घर बना लिया था। जो दूकाने आई थी, उठ गई। नाचवाले, फेरीवाले कही और चले गए रोजगार की तलाश मे। जो कटाई करने वाले अब तक इन नाच-तमाशो के लुत्फ उठाने को ही रुक गए थे, उन्होने भी कूच करने की तैयारी कर ली।

[दो]

एक दिन टहल कर लौटते समय मै नकछेदी तिवारी के झोपडे मे उससे मिलने गया।

साँझ हो चली थी। दूर-दूर तक फैली हुई फुलकिया बैहार की हरी वन-रेखा मे सूरज का लाल गोला डूब रहा था। यहाँ का सूर्यास्त, खास तौर से जाडे के मौसम मे ऐसा सुन्दर और अपूर्व होता कि बहुत बार मै महालिखारूप के पहाड पर जाकर इस अद्भुत दृश्य को देखने की प्रतीक्षा मे बैठा रहता।

नकछेदी तुरन्त खडा हो गया और कपाल तक हाथ ले जाकर मुझे सलाम करके बोला—"अरी मची, बाबू साहब के बैठने के लिए कुछ बिछा दे।"

नकछेदी के यहाँ एक प्रौढा स्त्री थी, वह उसकी स्त्री होगी, ऐसा अनुमान कर लेना स्वाभाविक था , मगर वह हमेशा बाहर के ही काम-काज़ो मे जुटी रहती। लकडी काट लाना, भीमदास टोले के कुएँ से पानी भर लाना—यही सब काम थे उसके। मची उस लडकी का नाम था, जिसने उस दिन मुझे जगली हाथी का किस्सा सुनाया था। उसने मेरे लिए कसाल की बुनी एक चटाई लाकर डाल दी। और, गर्दन हिला-हिला कर अपनी दक्खिनी बिहार की 'छिकाछिकी' भाषा के सुन्दर लहजे मे बोली—"बैहार का मेला कैना लगा बाबूजी ? मैंने कहा था कि तरह-तरह के नाच-तमाशे आएँगे, तरह-तरह की चीजे आएँगी, देख लिया न आपने ? बहुत दिनो के बाद आए आप, बैठिए। हम तो अब जाने ही वाले है यहाँ से।"

मै झोपडे के सामने अधसूखी घास पर चटाई खीच कर बैठा, जिससे ठीक सामने से सूर्यास्त को देख सकूँ। चारो तरफ के जगल पर एक हलकी रगीन आभा पड रही थी—सारे बैहार मे फैली थी एक अवर्णनीय शाति, नीरवता।

मची को उत्तर देने मे शायद जरा देर हो गई मुझे। न जाने उसने फिर मुझसे क्या पूछा। उसकी 'छिकाछिकी' पूरी तरह समझ मे नही आती थी, सो मैंने एक दूसरे प्रश्न से उसे दबाने की कोशिश करते हुए कहा— "तुम लोग कल ही जा रहे हो ?"

—"जी हाँ।"

—"कहाँ ?"

—"पूर्णियाँ-किसनगज।"

वह फिर बोली—"नाच-तमाशा कैसा लगा आपको ? अब की बार तो खासे अच्छे-अच्छे गाने वाले आए थे। एक दिन झल्लू टोले के उस बडी बकाईन के नीचे बैठकर एक आदमी ने मुँह से ही ढोलक बजाई थी। सुनी थी आपने ? बडी बेहतरीन बजाई थी।"

मैंने गौर किया—मची को नाच-तमाशे मे महज बच्चो-जैसा मजा

आता ह। उमने खुशी और उत्साह के मारे जो-जो देखा था, सब सुनाना शुरू कर दिया।

नकछेदी बोला—"रहने भी दे अपना पचडा, बाबूजी कलकत्ता रहते है, तुझसे बहुत-बहुत ज्यादा देखा है इन्होने। इसे ये नाच-तमाशे बहुत पसन्द है बाबूजी, इसी के लिए तो हम लोग यहाँ अब तक रुक गए थे। इसने कहा—'यह सब कुछ देख लेगे, फिर चलेगे।' निहायत बचपना है इसमे अब भी।"

आज तक मैने पूछा नही था कि मची नकछेदी की कौन होती है, सोचता था, लडकी ही होगी। अभी जो उसने कहा, तो फिर कोई सन्देह ही नही रह गया।

मैने पूछा—"तुमने अपनी बेटी को ब्याहा कहाँ है?" नकछेदी ताज्जुब से बोला—"बेटी! मेरे बेटी कहाँ हुजूर?"

—"और यह मची? मची तुम्हारी बेटी नही है?"

मेरी बात पर सबमे पहले मची खिलखिला कर हँस पडी। नकछेदी की प्रौढा स्त्री भी मुँह मे अँचरा डाले झोपडे के अन्दर चली गई।

नकछेदी अपमानित-से स्वर मे बोला—बेटी क्या हुजूर? यह तो मेरी दूसरी बीबी है!"

मैने कहा—"ओह!"

फिर कुछ देर सभी चुप रहे। मै तो ऐसा अप्रतिभ हो गया कि क्या कहूँ, कोई बात ढूँढे न मिलने लगी।

मची ने पूछा—"आग जला दूँ, जाडा बहुत है।"

जाडा सचमुच ही ज्यादा था। चक्का अस्त होते-होते जैसे हिमालय टूट पडता था। पूरब के आकाश का निचला भाग सूर्यास्त की आभा से रँग गया था, ऊपर घना नील।

झोपडे से जरा दूर पर कसाल की झाडी थी, मची ने उसमे आग लगा दी। झाडी धाँय-धाँय करके जल उठी। हम लोग उसी जलती हुई झाडी के पास जा बैठे।

नकछेदी ने कहा—"अभी निहायत बच्ची है हुजूर, चीजे खरीदने का शौक तो बेहद है इसे। यही समझिए कि मजूरी की कोई आठ-दस मन सरसो मिली थी इस बार। उसमे से तीन मन तो इसने शौक की चीजे खरीदने मे ही खत्म कर दी। मैंने कहा—'इतनी मसक्कत की कमाई तू इन चीजो मे क्यो बर्बाद करती है?' औरत की जात, सुनती नही। रो पडती है, ऑसू बहाने लगती है। लाचार कह देता हूँ—'लो बाबा, लो'।"

मैंने मन-ही-मन सोचा, जवान बीबी के बूढे पति के लिए इसके सिवाय दूसरा चारा भी क्या है?

मची ने कहा—"क्यो, मैंने तो कह दिया है कि गेहूँ की कटाई के समय मेले मे मैं कुछ भी न लूँगी। उम्दा चीजे कुछ सस्ती मिल गईं—"

नकछेदी ने नाराज होकर कहा—"सस्ती मिली? काइयाँ दूकान-दार और फेरीवालो ने बेवकूफ औरत समझ कर ठग लिया है तुझे—सस्ती मिल गई है? पाँच सेर सरसो मे एक कघी दी है, बाबूजी। पिछले साल तिरासी रतनगज के खलिहान मे—"

मची ने कहा—"खैर, मैं चीजे ही आपके सामने ले आती हूँ बाबूजी, आप ही बताएँ, सस्ती मिली है या नही—"

और वह लपक कर झोपडे मे गई और कसाल की एक बन्द पिटारी लेकर बाहर आई। उसमे से एक-एक चीज निकाल कर मेरे सामने करीने से रखने लगी।

—"यह रही कघी। कितनी बडी है! ऐसी कघी क्या पाँच सेर सरसो से कम मे भी मिल सकती है! जरा रग तो देखिए, कितना उमदा है इसका! मजे की चीज है न बाबूजी! यह साबुन है, कितनी बेहतरीन खुशबू है इसमे! इसकी भी पाँच सेर सरसो ली थी। आप ही कहे, सस्ती है या नही?"

सस्ती कहाँ थी चीजे? ऐसा रद्दी साबुन, कलकत्ता मे एक आने से ज्यादा नही लगेगा एक टिकिया का और पाँच सेर सरसो की कीमत सस्ती

भी हो, तो साढे सात आने से कम नही। असल मे ये गँवई औरते चीजो की कीमत तो जानती नही, जो चाहे, इन्हे आसानी से ठग सकता है।

मची ने और भी बहुत-सी चीजे दिखलाई, खुशी से कभी यह, तो कभी वह, दिखाने लगी। जूडे की कीले, नकली पत्थर की अँगूठी, चीनी मिट्टी के खिलौने, एनामेल की तश्तरी, लाल फीते—ऐसी ही चीजे। औरतो की प्रिय वस्तुओ की सूची सभी जगह , सभी समाज मे प्राय एक ही-सी होती है। गँवई मची और उसकी पढी-लिखी बहनो मे ज्यादा फर्क नही। चीजो के सचय और उन पर अधिकार करने की प्रवृत्ति दोनो की ही प्रकृति-प्रदत्त है। बूढा नकछेदी गुस्सा भी हो तो क्या हुआ ?

मगर मुझे इसकी थोडे ही खबर थी कि दिखाने लायक जो सबसे बेह-तरीन चीज थी, उसे आखिर मे दिखाने के लिए मची ने दबा रक्खा था।

अब उसने उसी चीज को नाज-भरे आनन्द आग्रह के साथ मेरे सामने रख दिया—वह थी नीले-पीले हिलाज की एक माला।

उसके चेहरे पर खुशी और गर्व की देखने लायक हँसी निखर आई। अपनी पढी-लिखी दूसरी बहनो की तरह उसने मन के भावो को छिपाना तो सीखा नही था, सो इन सारी मामूली चीजो के अधिकारजनित उच्छ्वसित आनन्द मे एक निर्मल और बनावट-विहीन नारी-आत्मा झाँकने लगी। हमारे सभ्य समाज मे नारी-मन की ऐसी स्वच्छ अभिव्यक्ति देखने का सुयोग शायद ही मिलता हो।

—"अच्छा बताइए तो, ये सब चीजे कैसी है ?"

—"निहायत अच्छी !"

—"क्या कीमत हो सकती है इसकी ? आप लोग कलकत्ता मे पहनते तो होगे इसे ?"

कलकत्ता मे इसके व्यवहार की हमे जरूरत नही पडती, कोई नही पहनता, फिर भी मुझे लगा, ज्यादा-से-ज्यादा भी होगा, तो इसका दाम छै आने से हर्गिज अधिक न होगा। मैने पूछा—"कितना लिया उसने, सो बताओ।"

—"सत्रह सेर सरसो। इसमे बाजी मेरी रही कि नही?"

वह बेतरह ठगी गई है, अब यह बताने से लाभ क्या था? ऐसा ही होता है। नाहक ही नकछेदी की झिडकियाँ खिलाकर उसके मन की इस अनोखी खुशी को बर्बाद करने की मुझे क्या गरज पडी थी।

दरअसल यह सब कुछ मेरी ही अनभिज्ञता की बदौलत मभव हो सका है। मुझे चाहिए था कि फेरीवालो के दर-दाम का खास खयाल रक्खूँ। लेकिन मै था नया, यहाँ की इन बातो की मुझे जानकारी भी क्या थी? मुझे तो इतना भी मालूम नही था कि फसल तैयार होते समय ऐसा मेला लगता है। आइदा ऐसी धाँधली न हो, इसका प्रबन्ध करने का मैंने निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन सबेरे नकछेदी अपनी दोनो स्त्रियो और बाल-बच्चो के साथ यहाँ से चला गया। जाने से पहले लगान चुकाने के लिए वह मेरे झोपडे मे आया था, साथ मची भी आई थी। मैंने देखा—मची के गले मे वही माला है। उसने मुस्कुराकर कहा—"भादो मे मकई काटने को फिर आऊँगी बाबूजी। आप रहेगे तो? हम जगली बहेडे का अचार डाला करते है—आपके लिए मै लेती आऊँगी।"

मची मुझे अच्छी लगी थी। उसके चले जाने से मै दुखी हुआ।

———

ग्यारहवाँ परिच्छेद

[एक]

अबकी बार मुझे एक अजीब जानकारी प्राप्त हुई।

खबर मिली कि मोहनपुरा रिजर्व फारेस्ट से दक्खिन मे पन्द्रह-बीस मील पर सखुए और बीडी के पत्ते का बडा-सा जगल कलक्टरी से नीलाम किया जायगा। मैंने अपने हेड आफिस को इसकी सूचना दी। तार द्वारा आदेश मिला, जैसे भी हो, उस जगल को नीलामी मे बडी-से-बडी बोली बोल कर ले लो।

लेने के पहले जगल को एक बार अपनी आँखो से देखना जरूरी था। क्या है, नही है—यह जाने बिना बोली बोलना मुझे मजूर नही था। नीलाम की तारीख भी समीप थी, सो तार पाने के दूसरे ही दिन मै वहाँ से चल पडा।

मेरे कुली वगैरह मेरा सामान लेकर पहले ही चल पडे थे। मोहनपुरा की हद पर कारो नदी पार करते समय उनसे भेट हो गई। साथ मे बनवारी लाल पटवारी था।

पतली-सी पहाडी नदी। घुटने-भर पानी पत्थरो पर से झिर-झिर कर बह रहा था। हम दोनो घोडे पर से उतर पडे। पत्थरो पर घोडे के फिसलने का खतरा था। दोनो किनारो पर बालू के ऊँचे कगारे थे। उन पर भी घोडो से चढते नही बनता था—घुटने तक वे बालू मे डूब जाते। जब तक मै उस पार की सख्त समतल जमीन पर पहुँचा, दिन के ग्यारह बज रहे थे। बनवारी पटवारी बोला—"रसोई यही बन जाती, तो अच्छा था हुजूर, आगे पता नही, पानी मिलेगा भी कि नही।"

नदी के दोनो किनारो पर जनहीन जगल था। यही गनीमत थी कि जगल बडा नही था, छोटे-छोटे केद, पलास और सखुए के पेड चट्टानो की भरमार, आबादी का कही नामोनिशान भी नही।

भोजन का काम जल्दी ही खत्म कर लिया गया, लेकिन फिर भी वहाँ से रवाना होने मे मुझे एक बज गया।

बेला खत्म होने को आई, मगर जगल का फिर भी खात्मा नही हो रहा था। मेरे जी मे आया—'और आगे जाने की बेकार कोशिश न करके किसी बडे पेड के नीचे पडाव डाल देना ही बेहतर है।' बीच मे दो जगली बस्तियाँ मिली जरूर थी, एक कुल पाल और दूसरी बुरुडि , लेकिन उस समय दिन के लगभग तीन बजे थे। अगर यह मालूम होता कि शाम तक इस जगल का अन्त नही होने का, तो रात वही बिताने की सोची जाती।

शाम होते-होते जगल और भी घना मिलने लगा। पहले जरा छिछला-छिछला-सा था, अब ऐसा मालूम होने लगा, मानो चारो तरफ से बडे-बडे पेडो की भीड ने पतली पगडडी को दबोच दिया हो। अभी-अभी जहाँ मै खडा हूँ, वहाँ चारो तरफ ऊँचे-ऊँचे पेड खडे है, आसमान नही दिखाई पडता, रात का अँधेरा अभी से ही घनीभूत हो उठा।

कही-कही जगल की शोभा देखने ही योग्य थी! जाने कौन-से सफेद फूलो के गुच्छो से जगल प्रकाशित हो उठा था। नीले आसमान के नीचे छाया-सघन अपराह्न मे ये फूल वन के माथे पर निखर आए थे, मनुष्य की नजरो की ओट मे सभ्य जगत् से दूर। पता नही, यह इतना सौन्दर्य किसके लिए बिछाया गया था! बनवारी ने बताया—'यह जगली तेउडी के फूल है—इसी समय खिलते है।' जिधर देखता, उधर ही पेडो और झाडियो के ऊपर नीलापन लिये तेउडी के श्वेत फूलो ने अपनी शोभा बिखेर रखी थी, जैसे किसी ने धुनी हुई नीलाभ रुई पेडो पर बिखेर दी हो। पता नही घोडे को रोक कर वहाँ कितनी देर तक रुका रहा गया। कही-कही की शोभा ऐसी अद्भुत थी कि देख कर मन अजीब-सा हो उठता था। लगता, जाने कहाँ आ गया हूँ, कितनी दूर, सभ्य ससार से बहुत दूर किसी जन-विहीन अजाने जगत् की उदास और अनुपम वन्य-सुषमा के बीच, जिससे मनुष्य का कोई सम्बन्ध ही नही, और न ही मनुष्यो को वहाँ प्रवेश करने का अधिकार है, जो सिर्फ जीव-जन्तु और पेड-पौधो की ही दुनिया है।

बार-बार अवाक् होकर जगल के दृश्य देखते रहने के कारण शायद और भी देर हो गई। बनवारी मेरे मातहत काम करता था, लिहाजा वह मुझे कुछ कह तो सकता नही था, लेकिन वह भी जरूर अपने मन मे यही सोच रहा होगा कि 'इन बगाली बाबू के दिमाग का कोई पुर्जा जरूर खराब है। इनसे जमीदारी का काम-धाम भला कब तक चल सकेगा ?' आखिर हम एक बडे-से आसन पेड के नीचे ठहर गए। सब मिलाकर हम, आठ दस आदमी थे। बनवारी ने कहा—"काफी आग जला ले और सब पास-पास रहे। बिखर कर कोई न रहे, बहुत तरह का खतरा है।"

मै कैप-चेयर डाल कर बैठा। ऊपर दूर तक फैला हुआ खुला आकाश, अभी तक अँधेरा तरा नही था , दूर, पास तमाम जगल मे तेउडी के सफेद फूलो का मेला, ढेरो फूल, अनगिनती ! मेरी कुर्सी के पास ही सुनहले रंग की अधसूखी और लम्बी-लम्बी घास थी। धूप से तपी मिट्टी की सोधी गध, सूखी घास की गध, किसी अनचीन्हे वनफूल की गध—जैसे दुर्गा-प्रतिमा के राँगे के साजो की बू हो ! इस उन्मुक्त और वन्य जीवन ने मेरे मन मे मुक्ति और आनन्द की अनुभूति भर दी—वह अनुभूति, जो ऐसे विराट् सूने प्रातर और मानवहीन स्थान के सिवाय और कही नही आ सकती। अपना अनुभव न हो, तो किसी को मुक्त जीवन का वह उल्लास समझा सकना कठिन है।

इतने मे एक कुली ने आकर पटवारी से कहा कि वह सूखे डाल-पत्ते बीनने के लिए जरा दूर निकल गया था, वहाँ उसने कोई चीज देखी। यह जगह अच्छी नही, भूत या परियो का अड्डा मालूम होता है , यदि यहाँ पडाव न ही डाला जाता तो अच्छा था।

पटवारी ने कहा—"हुजूर, जरा चलकर देख ही आएँ कि क्या है।"

जगल मे थोडी दूर तक चलकर कुली ने दूर से वह जगह दिखाकर कहा—"हुजूर वहाँ जाकर देखे, मै तो और आगे नही जा सकता।"

कँटीली लताओ की झाडी मे एक स्तम्भ पर भयानक-सा चेहरा खुदा था। साँझ को उसे देखकर डर जाना स्वाभाविक ही था।

वह चेहरा हाथ का बना हुआ बेशक था, मगर मै समझ नही सका कि इस घोर जगल मे यह स्तम्भ आया कहाँ से। यह भी नही समझ सका कि यह है कितना पुराना।

आखिर ज्यो-त्यो करके रात बीती। सुबह के नौ बजे तक हम अपनी जगह पहुँच गए।

वहाँ जगल के मालिक के एक कर्मचारी से भेट हुई। उसने मुझे जगल दिखाना शुरू किया। अचानक एक सूखे नाले के उस पार पत्थर के खभे की चोटी झाँक उठी, ठीक वैसा ही स्तम्भ, जैसा कल शाम को देखा था। इसमे भी वैसी ही एक भयानक आकृति खुदी हुई थी।

बनवारी मेरे साथ था। उसे भी मैने दिखाया। कर्मचारी उसी इलाके का रहने वाला था। उसने बताया—इस इलाके मे ऐसे और भी चार-पाच स्तम्भ है। इधर पहले असभ्य जगली जातियो का निवास था। यहाँ राज्य भी इन्ही का था। ये स्तम्भ उन्ही के हाथो के बने है। ये है सीमा-निर्देशक खभे।

मैने पूछा—"तुमने यह कैसे जाना कि ये खभे है ?"

वह बोला—"सदा से यही सुनता आ रहा हूँ बाबूजी। इसके सिवाय उस राजा के वशधर अभी तक जीवित है।"

मुझे बडा कौतूहल हुआ। पूछा—"कहाँ है ?"

उसने उँगली से दिखाते हुए कहा—"इस जगल की उत्तरी सीमा पर एक छोटी-सी बस्ती है, वही। हमने तो सुना है कि उत्तर मे हिमा-लय, दक्खिन मे छोटानागपुर की सीमा, पूरब मे कोसी नदी और पच्छिम मे मुगेर—इस चौहद्दी के अन्दर के सभी पहाडी जगलो के राजा इन्ही के पुरखे थे।"

स्कूल मास्टर गनौरी तिवारी ने भी मुझसे एक बार यही कहा था कि यहाँ के आदिम जातीय राजा के वशधर अभी भी जीवित है। इधर की पहाडी जातियो के सभी लोग अभी भी उन्हे राजा मानते है। मुझे वह बात याद आ गई। जगल वाले कर्मचारी का नाम तो श्रा

बुद्धूसिंह , किन्तु वह बहुत होशियार था। बहुत दिनो मे यहाँ काम कर रहा था , वह यहाँ के जगल-पहाडो की अच्छी जानकारी रखता था।

बुद्धूसिंह ने बताया—" मुगलो के जमाने मे इन लोगो ने उनसे लडाइयाँ लडी थी। इधर से जब उनकी सेना बगाल को जाती थी, तब ये लोग तीर-कमानो से उन्हे रोका करते थे। आखिरकार जब राजमहल मे मुगल सूबेदार रहने लगे, तब इन लोगो की रियासत चली गई। बडे बहादुर थे ये। अब तो कुछ रहा नही। रहा-सहा भी जो था, सो सन् १८६२ के सथाल-विद्रोह मे जाता रहा। उस विद्रोह के नेता अभी जीवित है। वही वर्तमान राजा है। नाम है उनका दोबरू पन्ना वीरवर्दी। बहुत बूढे हो गए है और बडे ही गरीब है। इतना होने पर भी यहाँ की आदिम जातियाँ उन्हे राजा का ही सम्मान देती है। राज-पाट न होते हुए भा सब उन्हे राजा ही मानते है। "

राजा से मिलने की मुझे बडी उत्कठा हुई।

राजा के दर्शनो के लिए योग्य भेट की जरूरत थी। जिसका जो प्राप्य सम्मान है, वह न दो तो कर्त्तव्य की हानि होती है।

एक बजते-बजते पास के गाँव से मैने कुछ फल-मूल और दो बडे-बडे मुर्गे खरीद लिये। यहाँ का जो काम-काज था, उसे समाप्त किया और लगभग दो बजे मैने बुद्धूसिह से कहा—" चलो, जरा राजा से मिल आएँ। "

बुद्धूसिह मे मुझे वैसा उत्साह नही दिखा। वह बोला—" आप जायँगे वहाँ ? आपसे मिलने लायक नही है वह। असभ्य पहाडियो के राजा है सही, तो क्या आपसे बराबरी की बात करने योग्य हो सकते है बाबूजी ? कोई खास बात नही। "

मैने उसकी अनसुनी कर दी। मै और बनवारीलाल राजधानी की तरफ चले। उसे भी अपने साथ ले लिया।

राजधानी एक निहायत मामूली बस्ती, बीस-पच्चीस घर के लोगो की आबादी थी वह।

मिट्टी के छोटे-छोटे घर, खपडापोश। खूब साफ-सुथरे—लिपे-पुते। दीवारो पर सॉप, कमल, लताएँ बनी। छोटे-छोटे बच्चे खेल-कूद मे मश-गूल थे, औरते घर के काम-धधे करती थी। युवतियो के बदन की खूब-सूरत बनावट, अच्छी तनदुरुस्ती, प्रत्येक के चेहरे पर कितना सुन्दर लावण्य! सब हम लोगो की तरफ अवाक् देखते रहे।

एक स्त्री से बनवारीलाल ने पूछा—"राजा छै रे?"

उसने जवाब दिया—"मैंने देखा तो नही, मगर घर ही होगे, जायँगे कहाँ?"

[दो]

बस्ती मे जहाँ हम सब जाकर रुके, वही राजप्रासाद है, ऐसा बुद्धू-सिह के भाव से जाहिर हुआ। गॉव के दूसरे घरो से इसमे इतना ही फर्क था कि इसके चारो तरफ पत्थर की चहारदीवारी थी। गॉव के पीछे ही पहाडी थी, पत्थर वही से लाए गए थे। राजभवन मे बच्चे बहुत थे, कई तो बहुत ही छोटे। उनके गले मे कॉच के दानो की और फलो के लाल-नील बीजो की मालाएँ थी। दो-एक बच्चे देखने मे बडे ही खूबसूरत लगे। बुद्धूसिंह ने पुकारा, तो सोलह-सत्रह साल की एक लडकी दौडकर बाहर निकली और हमे देखकर अवाक् रह गई। उसकी निगाहो से लगा कि वह डर भी गई है।

बुद्धूसिह ने पूछा—"राजा कहाँ है?"

बुद्धूसिह से मैंने उस लडकी के बारे मे पूछा। उसने बताया—"यह राजा के पोते की लडकी है।"

यानी राजा ने बहुत दिनो तक स्वय जीवित रहकर बेशक बहुतेरे युवक और प्रौढो को गद्दी के हक से वचित किया है!

माने चाहे न माने, मैंने अपने मन मे सोचा कि यह जो लडकी हमें राह दिखाती चल रही है, वह वास्तव मे राजकुमारी है—इसके

पुरखो ने बहुत दिनो तक इस जगली इलाके पर शासन किया है—उसी शासक-वश की यह लडकी है।

मैने लडकी का नाम पूछने को कहा।

बुद्धूसिह ने बताया—"उसका नाम है भानुमती।"

—"वाह, नाम तो बडा सुन्दर है—भानुमती! राजकुमारी भानुमती!"

भानुमती की तन्दुरुस्ती अच्छी थी, गठा हुआ शरीर। लावण्यभरा मुखमडल। हाँ, जो कपडे वह पहने थी, वह सभ्य समाज के मानदड के अनरूप नही थे। सिर के बाल रूखे। गले मे कॉच और कौडी के दाने। दूर ही से एक बडी बकाईन की ओर इशारा करते हुए उसने कहा—"वहाँ जाओ, वही बाबा गाय चरा रहे है।"

'गाय चरा रहे है!' मै तो चौक पडा—'इलाके भर के राजा, सथाल विद्रोह के नेता दोबरू पन्ना वीरवर्दी, और गाय चरा रहे है? यह कैसी बात!'

कुछ पूछने के पहले ही भानुमती वहाँ से जा चुकी थी। हम लोग आगे बढे। देखा—बकाईन के नीचे बैठकर एक बूढा आदमी सखुए के पत्ते मे तम्बाखू भरकर पी रहा है।

बुद्धूसिह बोला—"सलाम राजा साहब!"

ऐसा लगा, दोबरू पन्ना कानो से सुन तो लेते है, पर आँखो से भली तरह देख नही पाते।

बोले—"कौन, बुद्धूसिह? साथ मे और कौन है?"

वह बोला—"एक बगाली बाबू है, आपसे मिलने के लिए आए है। वे कुछ भेट लाए है, आपको वह भेट कबूल करनी पडेगी।"

मैने बूढे के सामने खुद ले जाकर मुर्गे और फल रक्खे और कहा—"आप इस इलाके के राजा है। मै आपके दर्शनो के लिए बडी दूर से आया हूँ।"

बूढे की लम्बी-चौडी बनावट से ही मुझे लगा—जवानी मे दोबरू

पन्ना देखने ही लायक जवान रहे होगे। चेहरे पर बुद्धि की छाप साफ झलकती थी। वे बहुत खुश हुए। मेरी तरफ गौर से देखकर उन्होने पूछा—"आपका घर ?"

मैने कहा—"कलकत्ता !"

—"ओहहो, बडी दूर है। सुना है, कलकत्ता बहुत बडी जगह है।"

—"आप वहाँ कभी नही गए क्या ?"

—"नही-नही। हम शहर कहाँ जाते। हमारे लिए यह जगल ही ठीक है। बैठिए। भान्मती कहाँ गई, अरी ओ भान्मती !"

वह दौडी-दौडी आई। पूछा—"क्या है बाबा ?"

—"देखो, ये बगाली बाबू और इनके साथ के आदमी आज यही रहेगे, खाएँगे-पिएँगे।"

मैने प्रतिवाद किया—"जी नही, हम तो आपसे भेट करने आए थे, तुरन्त चले जाएँगे। रहने के लिए आप "

उन्होने कहा—"यह हर्गिज नही हो सकता। भान्मती, यहाँ से ये चीजे उठा ले जा !"

मैने इशारा किया। बनवारीलाल भान्मती के पीछे-पीछे गया और सब चीजे पहुँचा आया। मै बूढे की बात को टाल नही सका, उन्हे देख कर ही मेरा हृदय भर आया था। सथाल-विद्रोह के नेता, पुराने अभिजात-बंश के वीर दोबरू पन्ना (आदिम जाति के ही हुए तो क्या हुआ) मुझे रहने का आग्रह कर रहे है, उस आग्रह को आदेश ही समझना चाहिए।

मै देखते ही समझ गया था कि राजा साहब है बडे ही गरीब। उन्हे गाय चराते हुए देखकर पहले मै चकित तो हो गया, पर बाद मे खयाल आया कि भारत के इतिहास मे इनसे भी बहुत बडे-बडे राजा परिस्थिति-वश इससे भी हीन ृत्ति करने को मजबूर हुए थे।

उन्होने अपने हाथो से सरपुए के पत्ते का चुरुट बनाकर मुझे दिया। दियासलाई नही थी। पास ही आग जल रही थी। उसी मे से एक पत्ता सुलगा कर उन्होने मेरी तरफ बढाया।

मैंने कहा—"आप भारत के प्राचीन राजवश के है, आपके दर्शन से पुण्य होता है।"

दोबरू पन्ना बोले—"अब क्या रहा ? हमारा वश सूर्यवश है। यह पहाड-जगल, सारी पृथ्वी अपना ही राज्य थी। जवानी मे मैंने कपनी से लडाई लडी थी। अब अपनी उम्र काफी हो गई। लडाई मे मै हार गया। फिर कुछ रह नही गया।

ऐसा नही मालूम हुआ कि इस जगली भूभाग के सिवा बाहरी किसी पृथ्वी की उन्हे खबर है। उनकी किसी बात का मै जवाब देने जा रहा था कि वहाँ एक युवक आकर खडा हुआ।

दोबरू ने कहा—"यह मेरा छोटा पोता है, जगरू पन्ना। इसका बाप अभी यहाँ नही है, लछमीपुर की रानी साहिबा से भेट करने गया है। अरे, जगरू, बाबू साहब के लिए खाने का इन्तजाम कर।"

नए सखुए के तने-सा जवान का बदन, उभरी हुई पेशियाँ। उसने पूछा—"आप साही का माँस खाते है ?"

फिर अपने पितामह की तरफ ताक कर कहा—"कल पहाड के उस पार फदा डाला था, दो साही फँसे है।"

सुना, राजा के तीन बेटे, उनके आठ-दस बच्चे-बच्चियाँ है। इतने बडे राज-परिवार के सभी लोग एक साथ इसी गाँव मे रहते है। शिकार करना और गाय चराना, यही इनकी आजीविका है। इसके सिवाय आपसी झगडे के फैसले के लिए जो पहाडी लोग आते, वे कुछ-न-कुछ भेट अवश्य देते—दूध, मुरगी, बकरी, चिडिया या फल-मूल।

मैंने पूछा—"खेती-बारी भी है कि नही ?"

उन्होंने गर्व के साथ कहा—"खेती अपने वश का कार्य नही। अपने यहाँ शिकार की इज्जत सबसे ज्यादा है, वह भी कभी भाले से शिकार करने का गर्व सबसे बडा समझा जाता था। तीर-कमान से किया हुआ शिकार देवता के काम नही आता। वह वीर का काम भी नही। लेकिन अब सभी चलने लगा है। मेरा बडा लडका मुगेर से एक बन्दूक

खरीद लाया है। मैंने उसे कभी छुआ तक नही। भाले का शिकार ही यहाँ शिकार है।"

भानुमती मिट्टी का बर्त्तन लेकर फिर आई।

राजा साहब बोले—"लीजिए, तेल लगा लीजिए। पास ही एक झरना है, सुन्दर झरना, उसमे नहा लीजिए।"

हम नहा कर लौटे, तो राजा ने हमे राजभवन के एक कमरे मे ले जाने को कहा।

भानुमती चावल और आलू ले आई। जगरू ने साही का माँस बना कर सखुए के पत्ते पर दिया। भानुमती दूध और शहद ले आई। मेरे साथ रसोइया नही था। बनवारी को आलू छीलने को कहा और मैं चूल्हा जलाने की चेष्टा मे गया, लेकिन मोटी-मोटी लकडियो से चूल्हा सुलगाना बडा कष्टदायक था। कई बार चेष्टा की, पर मुझसे न सुलग सका। इतने मे भानुमती ने चिडिया का एक घोसला लाकर चूल्हे मे डाल दिया और आग जल उठी। फिर वह दूर हट कर खडी हो गई। भानुमती है तो राजकन्या, मगर खासे अच्छे स्वभाव की। बडा ही सहज और सरल मर्यादा-ज्ञान।

स्वय राजा दोबरू पन्ना शुरू से आखिर तक रसोई घर के दरवाजे पर बैठे रहे, जिससे आतिथ्य मे किसी बात की त्रुटि न हो। भोजनादि कर चुकने के बाद वे बोले—"मेरे पास उतने कमरे तो है नही, आप लोगो को बडी तकलीफ हुई। इसी जगल मे पहाड पर अपने खानदान का बहुत बडा मकान था, आज भी उसके चिह्न मौजूद है। अपने बाप-दादो के मुँह से मैंने सुना है, पुराने समय मे हमारे पुरखे वहाँ रहते थे। अब क्या वे दिन रह गए है! हमारे पुरखो द्वारा प्रतिष्ठित देवता आज भी वहाँ है।"

मुझे बडा कौतूहल हुआ। कहा—"अगर हम उसे एक बार देख आएँ, तो आपको कोई एतराज तो न होगा?"

—"एतराज किस बात का ? हाँ, असल मे वहाँ अब कुछ खास बात तो है नही। चलिए, मै भी चलता हूँ। जगरू, हमारे साथ चलो।"

मैने आपत्ति की—बानवे साल के बूढे को पहाड पर चढाने को जी नही चाहा, मगर मेरी आपत्ति टिक नही सकी। हँस कर उन्होंने कहा—"पहाड पर तो अक्सर मुझे चढना ही पडता है। हमारे वंश की समाधियाँ वही है। प्रत्येक पूर्णिमा को मुझे वहाँ जाना पडता है। चलिए, आपको वह जगह भी दिखाऊँगा।"

उत्तर पूरब के कोने से यह छोटी-सी पहाडी—यहाँ उसे धनझरी कहते है—एक जगह अचानक पूरब की तरफ घूम गई है, जिससे एक कोना-सा बन गया है। उसके नीचे है उपत्यका, इस उपत्यका मे हरियाली की तरग-सा उतर आया है जगल, जैसे पहाड पर से झरना उतरता हो। जगल बहुत घना नही, छिछला-सा है। जगल के माथे पर दूर की क्षितिज-रेखा से लगी धुँधली शैलमाला, शायद गया या रामगढ की तरफ की हो—जहाँ तक नजर जा रही थी, जगल-ही-जगल था, कही बडे-बडे पेडो के ऊँचे जगल और कही सखुए और पलाश के नए पौधो के कम ऊँचे। जगल की पतली पगडडी पकड कर हम पहाड पर पहुँचे।

एक जगह पत्थर की एक चट्टान, ढेंकी के आकार की, गडी थी। उसके पास ही एक बहुत बडे गढे का मुँह था, वैसा ही गढा जैसा कि कुम्हारो के बर्तन पकाने का आवा होता है, या लोमडी जमीन में बनाती है। गढे के मुँह पर सखुए के पौधे उगे थे।

राजा दोबरू बोले—"इस गढे के अन्दर जाना होगा। डरने की बात नही, मेरे साथ चलिए। जगरू, तुम आगे-आगे चलो।"

जान हथेली पर लेकर मे अन्दर धँसा। बाघ-भालू का खतरा हो सकता है। यदि वह न हुए तो साँप के होने मे तो कोई शक ही नही।

गढे मे कुछ दूर तक तो झुक कर चलना पडता है, तब खडे होने की गुजाइश मिलती है। पहले तो भीतर बडा अँधेरा लगा, पर कुछ

देर मे अभ्यस्त हो जाने पर कोई असुविधा न हुई। यह एक गुफा थी। होगी कोई बीस-बाईस हाथ लम्बी और पन्द्रह हाथ चौडी। उत्तर की दीवार मे लोमडी के गढे-सा एक दूसरा गढा भी था। उससे कुछ दूर आगे जाने पर शायद ऐसी ही दूसरी गुफा है, मगर उसके अन्दर जाने की इच्छा मैंने नही जाहिर की। गुफा की छत ज्यादा ऊँची न थी। खडा होकर कोई भी व्यक्ति हाथ से उसे छू सकता। अजीब बू आ रही थी अन्दर। चमगादडो का अड्डा। सुना है यहाँ गीदड और बनबिलाव भी रहते है। बनवारी ने मुझसे चुपके से कहा—"हुजूर, यहाँ और ज्यादा न ठहरे, चले बाहर।"

दोबरू पन्ना के पुरखो का किला-भवन यही है!

हकीकत मे यह एक प्राकृतिक गुफा थी—पुराने जमाने मे पहाड के ऊपर की तरफ मुँह वाली गुफा में छिप जाने से दुश्मनो से सहज ही जान बच सकती थी।

राजा ने कहा—"इसका एक और भी द्वार है, गुप्त द्वार। उसका पता किसी को नही दिया जाता। उसे हमारे खानदान के लोगो को छोड कर और कोई नही जानता। यद्यपि आज-कल इसमे कोई नही रहता, फिर भी उस नियम का पालन किया जाता है।"

गुफा से निकल कर जान मे जान आई।

थोडी और चढाई चढने के बाद पहाड पर एक बहुत बडा बरगद का पेड बीघे भर तक अपनी झुरियाँ फैलाए खडा था।

राजा ने कहा—"कृपया जूते उतार कर चले।"

पेड के नीचे, मसाला पीसने के जैसे पत्थर होते है, वैसे ही बहुत-से पत्थर वहाँ भी बिखरे पडे थे।

राजा ने बताया कि उनके वंश की समाधि-स्थान यही है। वहाँ का एक-एक पत्थर राजवंश के एक-एक व्यक्ति की समाधि का द्योतक था। बरगद के नीचे तमाम वैसी चट्टाने बिखरी पडी थी। कोई-कोई समाधि बडी ही पुरानी थी। बरगद की झुरियो ने दो तरफ से उसे

गुलामी की तरह जकड रक्खा था। और वे झुरियाँ पेड की जडो-जैसी ही मोटी हो गई थी। कई चट्टाने तो झुरियो से बिल्कुल ढँक गई थी। उनकी प्राचीनता इसी से समझी जा सकती थी।

राजा दोबरू ने कहा—"यह बरगद पहले यहाँ नही था। दूसरे-दूसरे पेड थे। काल-क्रम से एक नन्हे-से पौधे ने फैल कर दूसरे सभी पेडो को मार डाला। यह बरगद इतना पुराना है कि असली जड अब नही रही। जो झुरियाँ ऊपर से उतरी है, वही जड बन गई है। इन झुरियो को उखाड फेके तो पता चले कि इनके नीचे ऐसे कितने पत्थर दबे पडे है। अब आपही समझे, यह समाधि-स्थान कितना पुराना है।

वास्तव मे उस पेड के नीचे खडे-खडे मेरे मन में ऐसा एक भाव जगा, जो अब तक कही नही जगा था, राजा को देख कर भी नही (वह तो एक बूढे सथाल मे लगे), राजकुमारी को देखकर भी नही (किसी तन्दुरुस्त हो या मुडा तरुणी से राजकुमारी का कोई भेद नही था), और राजप्रासाद को देखकर तो बिल्कुल ही नही (वह तो साँपो का अड्डा या किसी भूतिया महल-सा लगा), मगर बरगद और उसके नीचे के जाने कितने दिनो के इस समाधि-स्थान ने मेरे हृदय में एक अननुभूत और अपूर्व अनुभूति जगा दी।

उस जगह की गभीरता, रहस्य और प्राचीनता का भाव अवर्णनीय है। दिन ढल रहा था, पीली धूप पत्तो, डालो और झुरियो पर, जगल और धनझरी की विभिन्न चोटियो पर पडने लगी। अपराह्न की उस घनीभूत छाया ने तो मानो उस समाधि-स्थान को और भी गभीर, रहस्य-मय सौन्दर्य से मडित कर दिया था।

मिस्र के प्राचीन राजाओ के समाधि-स्थल थिब्स के पास जो 'वैली आव दि किंग्स' है, वह आज ससार-भर के पर्यटको की लीलाभूमि हो उठी है, उसका जितना ढोल पीटा गया है, जितना प्रचार किया गया है कि मौसम मे उसके होटलो मे तिल धरने की जगह नही मिलती—'वैली आव दि किंग्स' अतीत के कुहरे से जितना अधकाराच्छन्न नही

हुआ था, उतना हो जाता है सिगरेट के धुएँ से, मगर प्राचीन अनार्य राजाओ का यह समाधि-स्थल रहस्य और महिमा मे उससे किसी भाँति कम नही है, जो वन की सघन छाया मे गिरि-माला की ओट मे युग-युग से अपने को छिपाए है, सदा छिपाए रहेगा। मिस्र के धनी फेरावों की कीर्ति के समान इनके समाधि-स्थान मे आडम्बर नही है, पालिस और वैभव नही है, क्योकि ये बेचारे नितान्त गरीब थे, इनकी सभ्यता और सस्कृति मनुष्य के आदिम युग की सभ्यता और सस्कृति थी। इन्होने गुफाओ मे अपना राजमहल, राजसमाधि और सीमाज्ञापक जो खभे बनाए, वे शिशु मानव के मन से बनाए। अपराह्न की छाया मे पहाड के ऊपर उस विशाल बरगद के नीचे खडे होकर मै सर्वव्यापी शाश्वत काल के दूर अतीत मे अभिज्ञता की एक नई ही दुनिया देख पाया—जिसकी तुलना मे पौराणिक और वैदिक युग भी वर्तमान के पर्याय मे आ पडते है।

मै देखने लगा—उत्तर-पच्छिम की घाटी को पार करके यायावर आर्यगण स्रोत के वेग से अनार्य आदिम जाति द्वारा शासित भारत में प्रवेश कर रहे है—भारत का जो परवर्त्ती इतिहास है, वह इसी आर्य-सभ्यता का इतिहास है—अनार्य जातियो का कही कोई इतिहास नही, और अगर लिखा भी है, तो इन्ही गुप्तगिरि-गह्वरो में, जगलो के अन्धकार मे और टूट कर बिखरने वाली ककाल-रेखाओ मे। उन अक्षरों को पढने की विजयी आर्य-जाति को कभी चिन्ता ही नही हुई। हारे हुए अभागे आदिम लोग आज भी उसी तरह उपेक्षित और अवमानित है। सभ्यता के गर्व मे चूर आर्यों ने उनकी ओर कभी उलट कर भी नही ताका, उनकी सभ्यता को समझने की कभी कोशिश नही की और आज भी नही करते। मै और बनवारी उसी विजयी जाति के और बूढे दोबरू पन्ना, युवक जगरू और तरुणी भानुमती उस विजित, पद-दलित जाति के प्रतिनिधि है—हम दोनो ही जाति के लोग सध्या के अन्धेरे में आमने-सामने खडे है, सभ्यता के गर्व से ऊँची नाक लिये, आर्यकाति के गर्व से हम प्राचीन अभिजात-वशीय दोबरू पन्ना को बूढा सथाल समझ रहे

हूं, राजकुमारी भानुमती को मुडा मजदूरिन समझ रहे है , उन्होने जिस प्रासाद को बडे आग्रह और गर्व के साथ मुझे दिखाया, उसे अनार्य सुलभ हवा-धूप-रहित गुफा, साँपो और भूतो का अड्डा समझ रहा हूँ। शाम के अँधेरे मे इतिहास की यह महान् करुण नाटिका मानो मेरी आँखो के आगे अभिनीत हुई—उस नाटक के कुशीलव हैं हारे, उपेक्षित और दरिद्र अनार्य राजा दोबरू पन्ना, तरुणी अनार्य राज कन्या भानुमती, तरुण राज-पुत्र जगरू पन्ना—दूसरी तरफ मै, मेरा पटवारी बनवारीलाल और मेरा मार्ग-दर्शक बुद्धूसिंह ।

साँझ के उतरते हुए अँन्धेरे से राज-समाधि और बरगद के ढँक जाने के पहले ही हम लोग पहाड से उतर आए।

उतरते हुए रास्ते में सिन्दूर से पुता एक पत्थर मिला। उसके आस-पास मनुष्य के बोए हुए गेंदे और सध्यामणि फूल के पौधे थे। उसी के सामने दूसरा पत्थर खडा था, वह भी सिन्दूर से पुता था। यह देव-स्थान बहुत पुराना था, यही राजवश के कुल-देवता है। पहले यहाँ नर-बलि होती थी, बडा पत्थर यूप के काम आता था। अब यहाँ पर कबूतर और मुर्गे चढाए जाते है ।

मैंने पूछा—"ये कौन-से देवता है ?"

राजा दोबरू बोले—"टॉडबारो, जगली भैसो के देवता ।"

पिछले जाडो मे गोनू महतो से सुनी हुई कहानी याद आ गई ।

दोबरू बोले—"टॉडबारो बडे जाग्रत देवता है। ये न होते, तो चमडे और सीग के लोभ मे शिकारियो ने भैसो के वश का खातमा ही कर दिया होता। ये उनके रक्षक है। जब भैसे फदे मे फँसने लगते है, तब ये सामने खडे होकर हाथ के इशारे से उन्हे बचा लेते है। बहुतो ने आँखो से देखा है।"

जगली आदिम जाति के इस देवता को सभ्य जगत् मे कोई नही मानता और नही जानता है , किन्तु ये जो काल्पनिक नही ह, सचमुच

ही है, यह बात वन-जन्तु-बहुल जगल और पर्वतो के निविड सौदर्य एवं रहस्यो के बीच रहकर मन मे स्वत आ गई थी।

बहुत दिनो के बाद जब कलकत्ता लौटा, तब एक बार बडा बाजार मे जेठ के जलते हुए दिनो मे एक गाडीवान को भारी बोझा खीन्चने वाले गाडी मे जुते भैंसो को चमडे के कोडे से बडी बेरहमी से पीटते हुए देखा था। उस दिन मन में अनायास ही यह आया था—'हाय देवता टाँडबारो, यह न तो छोटानागपुर है, न मध्यप्रदेश का जगल, यहाँ तुम्हारे हाथ इस पीडित पशु की रक्षा कैसे कर सकते है ? यह बीसवी सदी की आर्य-सभ्यता से गर्वित कलकत्ता नगरी है—यहाँ हारे हुए राजा दोबरू पन्ना-जैसे ही तुम असहाय हो।'

मुझे गया जाना था, इसलिए साँझ से पहले ही रवाना हो गया। बनवारी घोडो को लेकर खेमे मे लौटा। लौटते समय फिर राजकुमारी भानुमती से मुलाकात हो गई। वह कटोरे मे मेरे लिए दूध लेकर राज-महल के द्वार पर खडी थी।

बारहवाँ परिच्छेद

[एक]

एक रोज राजू पाँडे ने खबर दी—"बनैले सूअर खेतो की खड़ी फसल को रोज रात को बर्बाद कर देते है। उनमें कुछ दाँतवाले खूँखार पट्ठे भी है। लिहाजा कनस्तर पीटने के अलावा और कुछ करते नही बनता। अगर कचहरी की ओर से इसका कोई उपाय नही किया जायगा, तो मेरी सारी फसल नष्ट हो जायगी।"

तीसरे पहर बन्दूक लेकर मै खुद ही वहाँ गया। राजू की जमीन नाढा बैहार के घने जगल मे पडती थी। उधर अभी लोग बहुत कम बसे थे, खेत भी कम थे, अत जानवरो के उपद्रव ज्यादा होते थे।

राजू अपने खेत मे काम कर रहा था। मुझे देखकर सब छोड-छाडकर लपका। मेरे हाथ से उसने घोडे की लगाम ले ली और घोडे को बहेडे के पेड से बाँध दिया।

मैने कहा—"अब तो तुम्हारे दर्शन दुर्लभ होगए है—कचहरी की तरफ कभी आते क्यो नही ?"

राजू के झोपडे के चारो ओर कसाल का जगल था—बीच-बीच मे केद और बहेडे के पेड भी थे। पता नही, इस जन-मानवहीन जगल मे वह अकेला कैसे रहता था। साँझ हुए किसी से यहाँ बात कर सकना भी असभव था—अजीब आदमी था वह!

राजू ने कहा—"समय ही कहाँ मिलता है कि कही जाऊँ हुजूर, फसल सँभालते-सँभालते ही जान चली गई। फिर भैस है।"

मैं पूछने ही जा रहा था कि तीन भैस चराने और डेढ बीघे की खेती मे क्या ऐसी व्यस्तता हो सकती है कि कही जाने का समय ही नही मिलता, मगर तब तक राजू ने खुद अपने कामो की एक ऐसी सूची पेश

की कि देखकर लगा---सचमुच ही उसे साँस लेने की फुर्सत नही। खेत-खलिहान के काम, भैस चराना, दूध दुहना, मक्खन निकालना, पूजा-पाठ करना, रामायण पढना, रसोई, भोजन—सुनते-सुनते मै ही मानो हाँफ उठा। बेशक राजू बडे जीवट का आदमी है! इस पर भी तमाम रात जागकर उसे कनस्तर पीटना पडता था।

मैंने पूछा—"सूअर कब आते है ?"

---उनके आने का कोई ठिकाना तो नही हुजूर—"हाँ, रात होते ही निकल पडते है। जरा देर बैठकर तो देखे। तब पता चले कि कितने आते है।"

मेरे लिए सबसे बडा कौतूहल यह था कि राजू यहाँ अकेला रहता कैसे है ? मैंने उससे यही पूछा।

वह बोला—"आदत पड गई है हुजूर। जमाने से इसी तरह रहता आया हूँ, कष्ट तो खैर नही होता, बल्कि यो खुशी से ही रहता हूँ। दिन भर करारी मेहनत, शाम को भगवद्भजन—दिन मजे मे कट जाते हैं।"

मुझे पता था कि एक खास सासारिक विषय से राजू को बडी आसक्ति है कि वह चाय खूब पीता है। मगर इस घने जगल मे चाय की सामग्रियाँ मिलती कहाँ से होगी, यह सोचकर मै अपने साथ चाय और चीनी लेकर गया था। मैंने कहा—"राजू, जरा चाय बना लो। चाय का सब सामान मेरे साथ है।"

उसने बडी खुशी से तीन सेर पानी आने वाले लोटे मे पानी चढा दिया। चाय तैयार हो गई, लेकिन काँसे के एक छोटे कटोरे के सिवा वहाँ कोई दूसरा बर्तन ही नही था। मुझे उसी कटोरे मे चाय देकर वह खुद लोटे से पीने लगा।

राजू को हिन्दी पढना-लिखना आता है, मगर बाहरी दुनिया की उसे कोई जानकारी नही। कलकत्ता का नाम तो उसने सुन रक्खा है, लेकिन वह किधर है, सो नही जानता। बम्बई या दिल्ली के बारे मे उसकी धारणा चन्द्रलोक की धारणा-जैसी ही काल्पनिक और धुँधली है।

शहरो मे से सिर्फ पूर्णियाँ को ही उसने देखा है, वह भी कई बरस पहले एक बार वहाँ गया था और सिर्फ थोडे ही दिन वहाँ रहा था।

मैने पूछा—"मोटर देखी है ?"

—"नही हुजूर, सुना है कि बैल या घोडे के बिना ही चलती है—धुँआ निकलता है। आजकल पूर्णियाँ मे शायद बहुत-सी आ गई है। बहुत दिनो से पूर्णियाँ भी नही जा पाया हूँ। गरीब आदमी, शहर जाने को पैसे भी तो चाहिएँ।"

मैने उससे पूछा—"कलकत्ता जाने की इच्छा है क्या ? अगर जाना चाहो, तो मै घुमा लाऊँ, पैसे नही लगेगे।"

राजू ने कहा—"शहर बडी बुरी जगह है हुजूर! चोर, उचक्को-गुडो का वहाँ अड्डा है। सुनते है, वहाँ जाने से जात नही बचती। वहाँ के लोग बदमाश होते है। हमारी तरफ का एक आदमी था, उसके पाँव मे कुछ हुआ था, इसलिए वह किसी शहर के अस्पताल मे गया था। डाक्टर छुरी से उसके पाँव को चीरता जाता और पूछता जाता था कि 'बताओ, कितने रुपए दोगे ?' उसने कहा—'दस रुपये दूँगा।' डाक्टर ने पाँव को और चीरा। फिर पूछा—'अभी भी बताओ, कितना दोगे ?' उसने गिडगिडाकर कहा—'डाक्टर साहब, पाँच रुपये मैं और दूँगा, आप दया करके पाँव को ज्यादा न चीरे।' डाक्टर ने कहा—'उतने से नही होने का।' और उसने पाँव को फिर चीरना शुरू किया। वह बेचारा गरीब जितना रोता जाता, डाक्टर उतना ही पाँव को चीरता जाता। चीरते-चीरते काट ही डाला उसके पाँव को। आप ही सोचें, कैसी खतर-नाक बात है!"

राजू की बाते सुनकर हँसी को रोकना मुश्किल हो गया। मुझे याद आया, इन्द्रधनुष को देखकर एक बार इसी राजू ने कहा था—'यह इन्द्रधनुष जो देखते है बाबूजी, यह दीमक के टीले से उगता है, मैने अपनी आँखो से देखा है।'

राजू के झोपडे के सामने ही आसान का एक बहुत बडा पेड है।

हम लोग उसी के नीचे बैठकर चाय पी रहे थे। चारो तरफ घना जगल केद, ऑवले, बहेडे के पेड-पौधे। फूल की भीनी-भीनी गन्ध ने साझ की हवा को बडा ही मधुर बना रक्खा था। ऐसी जगह मे इस तरह बैठ कर चाय पीना मुझे जीवन मे एक सौन्दर्यमय अभिज्ञता प्रतीत हुई। ऐसे अरण्य-प्रातर कहाँ है, कहाँ है कास-वन से घिरा ऐसा झोपडा और राजू जैसा आदमी ही यहाँ कहाँ है? यह अभिज्ञता जितनी अनोखी थी, उतनी ही दुष्प्राप्य भी।

मैंने कहा—"अच्छा राजू, तुम अपनी स्त्री को क्यो नही ले आते? उसे लाने से तुम्हे खुद बनाकर खाने का कष्ट नही रह जायगा।"

राजू बोला—"वह जिन्दा नही रही हुजूर—सत्रह-अठारह साल हुए गुजर गई। तब से घर मे मन को टिका नही पाता हूँ।"

राजू की स्त्री का नाम सरजू (यानी सरयू) था। जब राजू अठारह साल का और सरयू चौदह साल की थी, तब राजू कुछ दिनो के लिए उत्तम-धरमपुर, श्यामला टोला मे सरयू के पिताजी की पाठशाला मे व्याकरण पढने गया था।

राजू से पूछा—"कितने दिनो तक पढा था?"

—"कितने दिन क्या, साल-भर के करीब पढा था, पर इम्तहान नही दिया। वही हम दोनो की देखा-देखी हुई और धीरे-धीरे—"

और जरा खॉस कर राजू चुप हो गया।

मैंने उत्साह देकर कहा—"हाँ, उसके बाद?"

—"मगर करूँ तो क्या, उसके पिताजी मेरे अध्यापक थे, उनसे यह बात कहता भी कैसे? कातिक का महीना, छठ का तेवहार—औरतो के एक दल के साथ पीली साडी पहने सरयू कोसी नहाने जा रही थी, मैं—"

राजू फिर खॉसकर चुप हो गया।

मैंने उत्साह देकर कहा—"हर्ज क्या है? कहो।"

—"उसे देखने के लिए मैं एक पेड की आड मे छिपा रहा। उस-

लिए कि उनमे इन दिनो मेरी देखा-सुनी बहुत कम ही हो पाती थी—कहीं उसके रिश्ते की बात चल रही थी। जब औरते गाती-गाती—आप जरूर जानते होगे कि छठ के त्योहार मे औरते गाती हुई नदी को जाती है ?—गाती-गाती औरते जब मेरे पास पहुँची, तब सरयू ने मुझे पेड की ओट मे छिपा देख लिया। वह भी हँसी, मै भी हँसा। मैने इशारे से उसे टोली से पिछड जाने को कहा। उसने भी इशारे से बताया—लौटते समय, अभी नही।"

कहते-कहते बावन वर्ष वाले राजू के मुखड़े पर बीस वर्ष के नवयुवक प्रेमी-जैसी लज्जाशीलता और आँखो मे एक स्वप्नमय दृष्टि जाग पडी—मानो जीवन के बहुत पीछे प्रथम यौवन के दिनो मे जो कल्याणी तरुणी चौदह साल की थी, उसके सगीहीन प्रौढ प्राण उसी को ढूँढने के लिए निकल पडे है। अकेले इस घने जगल मे रहते-रहते वह थक गया है। ऐसे मे जिसकी बात सोचना उसे भाता है, जिसके सग के लिए उसका मन उन्मुख है, वह बहुत पहले की वही बालिका सरयू है, जो कि आज इस दुनिया मे कही नही है।

उसकी कहानी भली लग रही थी। मैने कहा—"फिर ?"

—"लौटते समय उससे भेट हुई। वह दल से पीछे हो गई। मैने कहा—'सरयू, मुझे अब तकलीफ हो रही है। तुमसे मिलना-जुलना बन्द हो गया है। मै जानता हूँ कि मुझसे अब पढना न होगा, फिर यह कष्ट बेकार ढोना है। सोचता हूँ, इसी महीने यहाँ से चला जाऊँ।' सरयू रो पडी। बोली—'तुम पिताजी से कहते क्यो नही ?' उसके रोने से मै मर्माहत हो गया और जिस बात को अपने अध्यापक से कहने की मुझमें कभी जुर्रत नही थी, वही कह बैठा। ब्याह मे यो कोई बाधा नही थी। जात-घर सब अनुकूल ही था। ब्याह हो भी गया।"

रोमास महज मामूली-सा था, शहर की हलचल मे यदि कोई इसे सुनता, तो निहायत घरेलू और गँवई मामला, जरा-सा पूर्वराग भर कहकर शायद उडा भी देता, मगर वहाँ इसकी अभिनवता और सौन्दर्य से मन

मुग्ध हो गया । दो हृदयो ने किस तरह एक दूसरे को पाया था अपने जीवन मे, यह जो कितना बडा रहस्यमय इतिहास है, इसे उस दिन समझा था ।

चाय पीते-पीते साँझ बीत गई, आसमान मे हल्की चाँदनी निखरी छठी या सातवी तिथि थी ।

मैंने बन्दूक उठाई । बोला—"चलिए पाँडेजी, देखूँ आपके खेत मे सूअर कहाँ है ?"

खेत के पास ही शहतूत का एक बडा-सा पेड था । राजू ने कहा—"इस पेड पर चढना है हुजूर—उसकी दो डाली पर सुबह मैंने मचान बाँध दिया था ।"

अजीब मुसीबत । जमाने से पेड पर चढने की आदत नही रही, फिर इस रात को । राजू ने उत्साह देकर कहा—"चढने मे तकलीफ नही होगी हुजूर । बाँस है, डाल-पत्ते भी है । आसानी से चढ सकते है ।"

मैंने राजू को बन्दूक थमाई और चढकर मचान पर बैठ गया । मेरे बाद राजू भी ऊपर आ गया । दोनो नीचे की तरफ निगाह किए पास-पास बैठे थे ।

चाँदनी और भी खिल पडी । गाछ की दो डाली से चाँदनी मे कुछ साफ और कुछ धुँधला दीखनेवाला जगल का उपरी हिस्सा मन मे एक अनोखा ही भाव जगा रहा था । जीवन मे यह भी एक नया ही अनुभव था ।

जरा-सी ही देर बाद जगल मे सियार बोल उठे और उसी समय काला-सा कोई जानवर जगल के दक्खिन से निकलकर राजू के खेत मे घुसा ।

राजू बोला—"वह रहा हुजूर —"

मैंने बन्दूक सँभाल ली । कुछ और पास आने पर पता चला, वह सूअर नही, बल्कि नीलगाय है ।

नीलगाय को मारने की इच्छा नही हुई । राजू ने दुरदुराया और नीलगाय जगल की तरफ चली गई । मैंने यो ही बन्दूक की आवाज की ।

दो घटे बीत गए । दक्खिन की ओर जगल मे वनमुर्गा बोल उठा । दाँतवाले सूअर को मारने का मनसूबा गाँठा था , मगर सूअर का बाल भी देखना नसीब न हुआ । बन्दूक की आवाज से ही सारा गुड गोबर हो गया ।

राजू बोला—"उतर चलिए हुज़ूर, आपके खाने का भी प्रबन्ध करना है ।"

मैंने कहा—"भोजन ? मै अपनी कचहरी जाऊँगा—अभी तो रात के दस भी नही बजे । जाना ही पडेगा । सबेरे सर्वे-कैंप की निगरानी मे जाना है ।"

—"तो खाकर जाइए ।"

—"नही-नही, ज्यादा रात गए जगल से जाना ठीक न होगा—अभी ही चल दूँ । तुम बुरा न मानना ।"

घोडे पर चढते समय मैंने पूछा—"कभी-कभी तुम्हारे यहाँ चाय पीने को आ जाया करूँ, तो ऊब तो नही होगी तुम्हे ?"

राजू बोला—"आप भी कैसी बाते करते है बाबूजी । इस जगल मे अकेला रहता हूँ, मै गरीब ठहरा, मुझे आप प्यार करते है, इसीलिए अपनी चाय-चीनी साथ लाकर मेरे साथ चाय पीते है । यो शर्मिन्दा न कीजिए हुजूर !"

राजू अभी भी देखने मे सुन्दर लग रहा था, जवानी के दिनो मे निस्सदेह वह देखने मे बडा खूबसूरत रहा होगा । अध्यापक की कन्या ने पिता के तरुण छात्र के प्रति प्यार जताकर अपनी सुरुचि का ही परिचय दिया था ।

काफी रात हो चुकी थी । मै मैदान की राह अकेला जा रहा था । कही रोशनी नही, अद्भुत एक स्तब्धता—मानो मै किसी जनहीन अजाने ग्रहलोक मे पृथ्वी से निर्वासित किया गया होऊँ—दिगत-रेखा पर दम-

कता हुआ वृश्चिक का उदय हो रहा था, ऊपर अंधेरे आकाश मे असख्य जोतिर्लोक, नीचे लवटोलिया बैहार का सुनसान जगल, नक्षत्रो की हल्की जोत मे जगली झाऊ की फुनगियाँ दिखाई दे रही थी—कही दूर पर सियारो ने पहर की घोषणा की, और भी आगे मोहनपुरा जगल की सीमा-रेखा अन्धेरे मे काले पहाड-सी दिखाई पड रही थी। किसी कीडे की लगातार टी-टी-टी को छोडकर कही कोई आवाज नही था। कान लगा कर सुनने से उसी आवाज मे और तरह के कीडो के भी शब्द मिले मालूम पडते थे। इस मुक्त जीवन का कैसा अनोखा रोमास! प्रकृति से घनिष्ठता का कैसा अपूर्व आनन्द! सब कुछ न जाने कैसा एक अनिर्दिष्ट, अव्यक्त रहस्य, पता नही, वह रहस्य क्या था, किन्तु इतना जरूर कह सकता हूँ कि वहाँ से लौट आने के बाद वैसे रहस्य का भाव मन में फिर कभी नही जागा।

मानो इस नीरव-निर्जन रात्रि में देवतागण नक्षत्रो मे सृष्टि की कल्पना मे लीन हो, जिस कल्पना मे कि सुदूर भविष्यत् के नये-नये विश्वो का आविर्भाव, नये-नये सौन्दर्यों का जन्म, विभिन्न नए प्राणो का विकास बीज-रूप मे निहित है। उनके इस रहस्य-रूप को केवल वही आत्माएँ देख पाती है जो ज्ञान की आकुल पिपासा मे निरलस जीवन यापन करती है, जिनके प्राण विश्व की विराटता और क्षुद्रता के संबध मे सजग आनन्द से उल्लसित है और जिसके तुच्छ और क्षुद्र वर्त्तमान के दुख-शोक जन्म-जन्मान्तर के पथ से होने वाली दूर-यात्रा की आशा मे बिन्दु के समान खो गए है। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य।'

जिन लोगो ने एवरेस्ट के शिखर पर चढकर बर्फ की आँधी और बाढ मे अपने प्राणो की बलि चढाई थी, उन लोगो ने विश्वदेवता के उस विराट् रूप को देखा है अथवा जब कोलम्बस ने अजोरस द्वीप के उपकूल मे तैरते हुए तख्ते पर बहते हुए महासमुद्र पार के अजाने महादेश के बारे में जानना चाहा था, तब विश्व की यह लीला-शक्ति उनके मन मे प्रकट हुई थी, जो घर बैठे तबाखू का धुआँ उडाते हुए

पड़ोसी की बेटी की शादी और उसके धोबी-नाई का काम किया करते हैं, इस स्वरूप को हृदयगम करना उनके वश की बात नही ।

[दो]

भिछी नदी के उत्तरी किनारे पर जगल-पहाड़ो के बीच नाप-जोख चल रही थी । कोई दस दिन से मै खेमे मे यही रह रहा था, शायद और भी दस-बारह दिन रहना पडे, ऐसी आशा थी ।

यह जगह अपने स्थान से बहुत दूर पडती थी। राजा दोबरू पन्ना की रियासत के आस-पास । मै ने रियासत तो कह दी, मगर दोबरू पन्ना तो राज्य-विहीन राजा है—उनके घर के आस-पास कहना चाहिए ।

बडी बेहतरीन जगह । एक उपत्यका, सामने की तरफ चौडी, पीछे की ओर सँकरी । पूरब-पच्छिम मे पहाडियो की श्रेणी-बीच में थी यह अश्वमुखी उपत्यका । जगलो से भरी, जहाँ-तहाँ बिखरी पडी थी चट्टाने, कँटीले बाँस की झाडियाँ, और भी न जाने क्या-क्या पेड-पौधे । बहुत-से पहाडी झरने उत्तर की तरफ से उतर कर इस उन्मुक्त उपत्यका से होते हुए बाहर को बह रहे थे । इन झरनो के दोनो ओर के जगल खासे घने थे और इस इलाके मे इतने दिनो तक रहने के अनुभव से मै समझ सकता था कि ऐसी ही जगहो मे बाघ का ज्यादा खतरा रहता है । हिरन थे, वनमुर्गों को रात के दूसरे पहर मे बोलते सुना था। लोमडी की बोली सुनी थी, मगर बाघ नही देखा था, न उसकी आवाज यहाँ सुनी ।

पूरब की तरफ के पहाड मे एक बहुत बडी गुफा थी। गुफा के सामने ही एक पुराना और घना बरगद था—जो हरदम सन्-सन् करता रहता था । दोपहर की धूप मे नीले आसमान के नीचे की यह जनहीन उपत्यका और गुफा मन मे बहुत ही पुराने युग की स्मृतियाँ ले आती, जिस युग मे आदिम जाति के राजाओ का राजमहल रही होगी यह गुफा, जैसी कि दोबरू पन्ना के पुरखो की थी । गुफा की दीवारो मे एक जगह न जाने क्या खुदा हुआ था, शायद कोई तस्वीर थी—अब बिल्कुल धुँधली हो गई

थी, समझ मे नही आती थी । जगली आदिम जाति की कितने ही नर-नारियो की कल हास्य ध्वनि, कितने सुख-दुःख, बर्बर समाज के जुल्मो-सितम के आँसू से लिखे हुए कितने इतिहास उस गुफा की माटी मे, हवा मे, पत्थरो की दीवारो पर लिखे है—यह सोचते हुए अच्छा लगता ।

गुफा से रस्सी-दो-रस्सी के फासले पर झरने के किनारे एक गोंड परिवार रहता था । दो झोपडे थे उसके—एक बडा और एक छोटा, डालो के घेरे, पत्तो की छौनी । झोपडो के सामने की खुली जगह मे पत्थर के टुकडे बटोर कर उसने चूल्हा बनाया था । झोपडे एक बहुत बडे जगली बादाम के पेड के नीचे थे । बादाम के झडे हुए सूखे पत्तो से आँगन भर गया था ।

उस गोंड परिवार मे दो लडकियाँ थी—एक की उम्र सोलह-सत्रह, और दूसरी की चौदह होगी । रग तो उनका घोर काला था , पर चेहरे पर सहज सौन्दर्य का निखार था, सुन्दर स्वास्थ्य । रोज दोनो लडकियाँ दो-तीन भैस लेकर सबेरे पहाड पर चराने जाया करती, साँझ से पहले लौट आती । मै अपने तम्बू मे जब चाय पीने को बैठता, तब उन्हे भैसे लेकर सामने से घर लौटते हुए देखा करता ।

एक दिन वह बडी लडकी आप तो रास्ते पर खडी रही और अपनी छोटी बहन को मेरे पास भेज दिया । उसने आकर कहा—"सलाम बाबूजी ! बीडी है क्या ? दीदी माँग रही है ।"

—"तुम बीडी पीती हो ?"

—"मै नही, दीदी पीती है । यदि हो तो एक दे दो बाबूजी ।"

—"मेरे पास बीडी तो नही, चुरुट है, लेकिन वह मै तुम्हे दूँगा नही । बहुत कडी है, पी नही सकोगी ।"

वह लडकी चली गई ।

थोडी देर बाद मै उनके घर गया । मुझे देखकर गृह-स्वामी अचम्भे मे पड गया—आदर से मुझे बिठाया । दोनो लडकियाँ मकई का घाटा सखुए के पत्ते पर परोस कर नमक के साथ खा रही थी। सिर्फ नमक

के साथ, और कुछ नही । उनकी माँ चूल्हे पर कुछ पका रही थी । नन्हे बच्चे खेल रहे थे ।

मालिक की उम्र होगी पचास की । स्वस्थ और बलवान शरीर। मुझे उसने बताया कि घर उनका सिवनी जिले मे है । चूँकि यहाँ भैसो के लिए पहाड पर घास और पानी काफी मिल जाता है, इसीलिए साल-भर से यही है । यहाँ बाँसो से टोकरियाँ, सूप, माथे की बरसाती बनाने की बडी सहूलियत है । शिवरात्रि मे अखिल कूचा के पहाड पर मेले मे उनसे कुछ पैसे मिल जाते है ।

मैने पूछा—"यहाँ कब तक रहोगे ?"

—"जब तक जी चाहे बाबूजी ! यह जगह खूब भा गई है, नही तो हम लोग लगातार एक साल भी कही नही रहते । एक और सहूलियत है यहाँ, पहाड पर शरीफे बहुत होते है, आश्विन के महीने मे मेरी लडकियाँ दो-दो टोकरी पक्का शरीफा रोज पहाड पर से तोड लाती थी । दो महीने हमने सिर्फ शरीफो पर काटे है । शरीफो के लोभ से ही यहाँ रहना है । उनसे पूछ देखिए न ।"

खाते-खाते ही बडी लडकी उल्लास से बोल उठी—"ओ , पहाड के पूरब की तरफ एक जगह है । वहाँ न जाने कितने शरीफे है । पक कर टूट गिरते है, कोई छूता तक नही उन्हे । हम भर-भर टोकरी तोड लाते थे ।"

इतने मे घने जगल से निकल कर कोई झोपडे के सामने आकर खडा हो गया—"सीताराम ! सीताराम ! जय सीताराम ! —जरा आग दोगे ?"

मालिक बोला—"आइए बाबाजी, बैठिए ।"

जटा-जूटधारी एक बूढा साधु था । इस बीच साधु की नजर मुझ पर पडी और वह अचरज-मिश्रित भय से कुछ थोडा खिसक कर एक किनारे खडा हो गया ।

मैने कहा—"प्रणाम बाबाजी—"

उसने आशीर्वाद तो जरूर दिया, मगर तब तक भी उसका भय पूरी तरह भागा नही था।

उसे साहस देने की नीयत से मैने पूछा—"रहना कहॉ होता है बाबा?"

मेरी बात का जवाब दिया गृहस्वामी ने—"बडे ही घने जगल मे ये रहते है—वह वहाँ, जहॉ दोनो पहाड मिल गए है। बहुत दिनो से यहाँ है।"

बूढा साधु इस बीच मे बैठ गया था। उसकी तरफ देखते हुए मैने पूछा—"यहॉ कब से है?"

अब उसके जी-मे-जी आया। बोला—"पन्द्रह-सोलह साल से।"

—"अकेले रहते होगे? सुना है, यहॉ बाघ रहता है। डर तो नही लगता?"

—"अकेले नही, तो साथ कौन रहेगा बाबू साहब? परमात्मा का नाम लेते है। डरने से काम कैसे चल सकता है। अच्छा बताइए तो, मेरी उम्र कितनी होगी?"

मैने उनकी ओर गौर से देखा और बोला—"कोई सत्तर की होगी।"

साधु ने हँसकर कहा—"जी नही, नब्बे से ज्यादा हो चुकी है। मैं गया के पास एक जगल मे दस साल तक रहा। वहॉ के इजारादारो ने जब जगल काटना शुरू किया और लोग-बाग बसने लगे, तब भाग आया। गाँव-घर मे नही र सकता।"

—"यहॉ एक ुफा है, आप उसमे क्यो नही रहते?"

—"एक क्यो बाब, गुफाएँ तो इस पहाड मे बहुत-सी है। मै जहाँ रहता हूँ, वह गुफा तो नही है, पर गुफा ही समझिए। याने ऊपर छत है, दो ओर दीवारे है, सिर्फ सामने की ओर खुला है।"

—"खाते क्या है आप? भीख मॉगते है?"

—"मै कही नही जाता। परमात्मा सब जुटा देते है। बॉस की निकलनेवाली नई फुनगी को उबाल कर खाया करता हूँ। जगल मे एक

तरह का और कद मिलता है, काफी मीठा लगता है वह, उसे भी खाता हूँ। पक्का आँवला और शरीफा यहाँ बहुत मिलता है। आँवला खूब खाता हूँ। रोज आँवला खाने से आदमी जल्दी बूढा नही होता, जवानी को बाँध कर रक्खा जा सकता है। गाँव के लोग समय-समय पर मिलने आते है, तो वे दूध, सत्तू औरा बूरा दे जाते हैं। इन्ही सब पर किसी तरह दिन कट जाते है।"

—"कभी बाघ-भालू से सामना हुआ है या नही ?"

—"कभी नही। हाँ, एक बडा ही भयानक अजगर इस जगल मे देखा है। बेबस-सा एक जगह पडा था वह। ताड के पेड-जैसा मोटा, काला, बदन पर हरी-लाल रेखाएँ। अँगारे-सी लहकती हुई आँखे। अभी भी वह अजगर इस जगल मे है। जब मैंने देखा था, तब वह पानी के पास पडा था, हो सकता है हरिण की ताक मे रहा हो। अब किसी गुफा मे छिप गया है। खैर, रात हो गई। अब चलूँ।"

आग लेकर साधु चला गया। पता चला कि कभी-कभी वह यहाँ आग लेने आता है, गप-शप करता है।

अँधेरा बढ चुका था, अब धुमैली-सी चादनी छिटकी। उपत्यका का जगल अनोखी नीरवता से भर गया। केवल पास के झरने के कल-कल और कभी-कभी वनमुर्गे की बोली के अतिरिक्त दूसरा शब्द सुनाई नही पड रहा था।

मै खेमे मे लौट आया। रास्ते मे एक सेमल के बडे पेड पर ढेरो जुगनू जल रहे थे—ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर चक्राकार घूमते हुए—अन्धकार की पृष्ठ-भूमि मे ज्यामिति के अनेक क्षेत्र बनाते हुए-से।

[तीन]

यही एक दिन आया कवि वेकटेश्वरप्रसाद। दुबला, छरहरा बदन, सर्ज का कोट, मैली धोती, रूखे और बिखरे बाल। उम्र चालीस से ज्यादा।

मैंने सोचा, नौकरी का उम्मीदवार है। पूछा—"क्या चाहिए ?"

उसने कहा—"श्रीमान् के दर्शन को आया हूँ (हुजूर सबोधन नही किया)। मेरा नाम वेकटेश्वरप्रसाद है। घर है बिहार शरीफ—जिला पटना। यहाँ चकमकी टोले मे रहता हूँ—यहाँ से तीन मील पर।"

—"अच्छा। यहाँ किस काम से आना हुआ?"

—"दया करके आप अनुमति दे, तो कहूँ। आपका समय तो बर्बाद नही कर रहा हूँ मै?"

तब भी मै समझ रहा था कि वह नौकरी की खोज मे आया है, लेकिन चूँकि उसने 'हुजूर' नही कहा, इसलिए मेरा ध्यान उसने अपनी ओर आकर्षित कर लिया। मैंने कहा—"बैठिए, इस गरमी मे बडी दूर से पैदल आए है।"

एक बात और देखी कि उसकी भाषा बडी मार्जित थी। वैसी हिंदी मै नही बोल सकता। अमले-प्यादे और गाँव के रैयतो से अपना कारोबार ठहरा, मेरी हिंदी उनकी देहाती बोली और बगला मुहावरो की मिली-जुली एक अजीब खिचडी थी। यह कैसे कहूँ कि इतनी सुदर और शुद्ध हिंदी कभी सुनी ही नही? सो जरा सँभलकर कहा—"आखिर आपके यहाँ आने का उद्देश्य?" वह बोला—"मै आपको अपनी कुछ कविताएँ सुनाने आया हूँ।"

मै तो अचरज मे पड गया। कवि ही क्यो न हो, इस जगल मे मुझे कविता सुनाने की कौन-सी गरज पडी इसे? कहा—"तो आप कवि है? खुशी हुई आपसे मिलकर। मैं खुशी-खुशी आपकी कविता सुनूँगा। मगर आपको मेरा पता कैसे चला?"

—"यहाँ से तीन ही मील पर मेरा घर है—पहाड के ठीक उस पार। गाँव के सब लोग कह रहे थे कि कलकत्ता से एक बगाली बाबू आए है। आप लोगो मे विद्या की बडी कद्र है, क्योकि आप लोग खुद विद्वान् है। कवि ने कहा है—

विद्वत्सु सत्कवि वाचा लभते प्रकाशं
छात्रेषु कूटमलसमं तृणवज्जड़ेषु।"

वेकटेश्वरप्रसाद ने मुझे कविता सुनाई। किसी ेलवे लाइन के टिकट चेकर, बुकिग क्लर्क, स्टेशन मास्टर, गार्ड इन्ही सब पर एक बडी लबी कविता। कविता खास अच्छी नही जॅची , लेकिन मै उसके प्रति अविचार नही करना चाहता। उमकी भाषा मै ठीक तरह समझ नही सका, सच कहूँ, तो कुछ भी नही समझ सका। फिर भी बीच-बीच मे उत्साह और समर्थन मे कुछ-न-कुछ कहता गया।

बडी देर हो गई, मगर वेकटेश्वरप्रसाद की कविता क्यो खत्म होने लगी, उठने की बात तो दूर रही।

दो घटे के बाद जरा चुप होकर उसने पूछा—"आपको कैसी लगी मेरी कविता ?"

मैने कहा—"क्या कहने है ! ऐसी कविता मैने बहुत कम सुनी है ? आप इन्हे किसी पत्रिका मे क्यो नही भेजते ?"

उसने दुखित होकर कहा—"यहॉ सब लोग मुझे पागल कहते है बाबूजी। यहॉ कविता का समझनेवाला भी कोई नही है। आज तृप्ति हुई आपको सुनाकर। समझदारो को ही सुनाने की चीज है यह। जैसे ही सुना कि आप आए है, मैने तै किए कि एक दिन आपको अवश्य ही कष्ट दूँगा।

उस दिन तो वह चला गया , पर दूसरे ही दिन तीसरे पहर आकर मुझे अपने यहॉ चलने के लिए तग करने लगा। आखिर टाला न गया, उसी समय उसके साथ चकमकी टोले के लिए मै पैदल ही चल पडा।

बेला झुक आई थी। सामने जहॉ तक पहाड की छाया पडी थी, वहाँ तक गेहूँ के खेत लहरा रहे थे। चारो ओर एक अद्भुत शाति विराज रही थी। झुड-के-झुड सिल्ली बॉसो की झाडियो पर उड-उड कर बैठ रहे थे, एक जगह छोटे बच्चे जाने कौन-सी मछली पकडने की कोशिश कर रहे थे।

गॉव मे घनी आबादी। सटे-सटे घर, कितने ही घरो मे ऑगन

नाम की चीज ही नही। वेकटेश्वर मुझे बीच-बीच के ढंग के एक मकान मे ले गया। बाहरी कमरा रास्ते के किनारे ही था, उसी में एक चौकी पर बैठ गया। जरा देर बाद कविप्रिया के भी दर्शन हुए—मेरे लिए उसने मकई का भूँजा और दहीबडा लाकर, जिस चौकी पर बैठा था, उमी के एक ओर रख तो दिया, लेकिन कुछ बोली नही, यद्यपि उन्होने घूँघट नही काढा था। चौबीस-पचीस की होगी, रग साफ तो नहीं, पर बुरा भी नही। शात चेहरा, सुदरी चाहे न कहे, कवि-पत्नी कुरूपा न थी।

एक चीज खास तौर से देखी, वह थी कवि-पत्नी की तदुरुस्ती। पता नही क्यो, इधर जहाँ कही भी गया, स्त्रियो की तदुरुस्ती मुझे बँगाल की स्त्रियो से कही अच्छी लगी। मोटी नही, लेकिन खासी छरहरी कूँदे हुए शरीर वाली और चुस्त-दुरुस्त लडकियाँ यहाँ जितनी मिली, बगाल मे उतनी नही होती। कवि-पत्नी ऐसी ही औरत थी।

जरा देर बाद कटोरे मे भैस का दही वे मेरी चौकी के पास रख गई और खुद किवाड की आड मे जा खडी हुई। जजीर की खटाखट सुनकर वेकटेशप्रसाद गया और हँसते हुए आकर बोला—"देवीजी कह रही है कि आप तो हमारे बधु हुए। बधु को ठढा करना होता है न, इसलिए दही मे पीपल, सोठ और मिर्च की बुकनी ज्यादा दी गई है।"

मैने हँसकर कहा—"अगर ऐसी ही बात है, तो केवल मेरी ही क्यो, जिसमें सबकी आँखो से पानी निकले, ऐसा किया जाय। आइए, यह दही हम तीनो ही खाएँ।" दरवाजे की ओट से वे हँसी। मैं भी अजीब आदमी, उन्हे दही खिला कर ही माना।

थोडी देर में कवि-पत्नी फिर अदर गई। हाथ मे एक थाली लिए आई। और उसे मेरी चौकी पर रक्खा। अबकी बार जरा दबे और कौतूहल-भरे स्वर मे मेरे सामने ही वे बोली—"जरा बाबू साहब से कहो कि घर के बने इन पेडो से मुँह की जलन मिटाएँ।"

औरत के मुँह मे यह बोली कितनी फबती थी! इधर की औरतो की जबान मुझे बेहद भली लगती थी। मै खुद अच्छी हिंदी नही बोल पाता, इसलिए हिंदी बोली की तरफ मेरा बडा खिचाव था। यह हिंदी किताबी हिंदी न थी—इन गॉवो मे पहाड की तलहटी मे, जगली इलाको मे, जौ-गेहूँ के दूर तक फैले खेतो के पास, जहाँ रहट के पानी से खेतो की सिचाई होती, डूबते सरज की छाया से भरी गिरि-मालाओ की ओर उडते हुए सिल्ली और बगले एक दूर विस्तृत भूभाग का आभास लाते, वहॉ की यह अचानक खत्म हो जाने वाली टूटे-फूटे क्रियापदो वाली भाषा, जो आमतौर से औरतो के ही मुँह से सुनी जाती थी, उस भाषा की तरफ मेरा खास झुकाव था।

मैंने कवि से कहा—"अपनी दो-एक रचनाएँ तो सुनाइए कृपा करके।"

उत्साह से वेकटेशप्रसाद का चेहरा खिल उठा। उसने एक कविता सुनाई—गॉव के प्रेम पर लिखी हुई कविता। एक नाले के इस पार एक युवक मकई जोता करता था और उस पार कमर मे घडा लिये रोज एक युवती पानी भरने आया करती। युवक सोचा करता, वह युवती बडी सुदर है। वह दूसरी तरफ मुँह कर सीटी बजाया करता, गाय-बकरी चराता और बीच-बीच मे नजर बचा कर युवती को देख लिया करता। बहुत बार दोनो की ऑखे भी मिल जाती। युवती का चेहरा ऐसे मे लाज से लाल हो उठता, और वह गर्दन घुमा लेती। युवक रोज यही सोचता कि कल उससे वह जरूर बात करेगा। घर मे भी वह उस युवती की ही बात सोचा करता, मगर जाने कितने कल आए और चले गए, मन की बात मन ही मे रह गई। उसके बाद एक दिन युवती पानी भरने नही आई, उसके दूसरे दिन भी नही आई, दिन बीते, सप्ताह गुजरा, महीना बीत गया, आखिर गई कहाँ वह सुपरिचिता किशोरी? बेचारा रोज निराश हो-होकर खेत

से लौटा करता---अपनी यह प्रेम-कथा किसी से कहते भी नही बनती। फिर उसे रोजी की फिक्र मे कही परदेश मे नौकरी करनी पडी। बहुत दिन बीत गए---बीत गए , लेकिन तो भी वह अपनी उस पनिहारिन प्रेयसी को न भुला सका।

दूर तक फैली सुनील शैलमाला और दिगतव्यापी खेतो की ओर देखते हुए मेरे जी मे आया कि यह कथा कवि वेकटेशप्रसाद के अपने ही जीवन की अभिज्ञता तो नही है ? कविप्रिया का नाम था रुक्मा, यह मैने यो समझा कि इस शीर्षक की कवि की एक कविता है, जो उसने मुझे सुनाई थी। मै सोचने लगा---रुक्मा-जैसी सुदर और गुणवती पत्नी पाकर भी क्या कवि के बचपन का वह दुख अब तक दूर नही हो सका ?

वेकटेशप्रसाद मुझे मेरे तबू तक छोडने आया। रास्ते मे एक बडे बरगद की तरफ इशारा करके कहा---"वह जो पेड है, वहाँ उसीके नीचे, एक सभा हुई थी। बहुत-से कवि आए थे, सबने अपनी-अपनी कविताए सुनाई थी। ऐसी सभा को इधर कवि-सम्मेलन कहते है। मै भी बुलाया गया था। मेरी कविता सुनकर पटना के ईश्वरीप्रसाद दुबे ने ---'जानते है आप उन्हे ? बडे पडित है---'दूत' पत्र के सपादक है, खुद कवि भी बहुत अच्छे है---उन्होने मेरी बडी तारीफ की थी।"

मैने समझा, बेचारे को जिदगी मे एक ही बार ऐसे सम्मेलन में खडे होकर कविता सुनाने का मौका मिला है और वह दिन इसीलिए इसके जीवन मे बडा स्मरणीय है। इतना बडा आदर इसे और कभी नही मिला।

तेरहवाँ परिच्छेद

[एक]

तीन महीने के बाद अपने गाँव को लौट रहा था। इतने दिनो मे यहाँ नाप-जोख का काम खत्म हो गया।

ग्यारह कोस की दूरी। पिछली बार पूस सक्रान्ति का मेला देखने के लिए इसी मार्ग से आया था। सखुए-पलास का वही जगल, चट्टानो से भरा वही प्रान्तर, वही ऊँची-नीची पहाडियाँ। कोई दो घटे तक जब चल चुका, तब क्षितिज के पास एक धुँधली-सी रेखा दिखाई पडी—मोहनपुरा रिजर्व फारेस्ट।

दिशा बताने वाले इस जाने-पहचाने दृश्य को पिछले तीन महीनो से मैंने नही देखा। इस लबी अवधि तक यहाँ रहने की वजह से लवटोलिया और नाढा बैहार के प्रति ऐसा एक आकर्षण हो गया था कि ज्यादा दिनो तक और कही रह जाने से तकलीफ होती, लगता कि परदेश मे आ गया हूँ। तीन महीने बाद आज मोहनपुरा जगल की सीमा-रेखा पर नजर पडते ही उस आनद की अनुभूति हुई, जो परदेसी को स्वदेश लौटते हुए होती है। वैसे लवटोलिया की सीमा अभी सात-आठ कोस पर थी।

एक छोटे-से पहाड के नीचे बहुत-सी जगह साफ-सुथरी करके कुसुमी की खेती की गई थी। पकने का समय आ गया था, कटनिए खेतो मे आ जुटे थे।

खेत के पास से ही मै गुजर रहा था। अचानक किसी ने मुझे पुकारा —"बाबूजी, ओ बाबूजी—"

मैंने उलटकर देखा—पिछले साल वाली मची थी। विस्मित भी हुआ और आनदित भी। मैंने घोडे को रोका। हँसिया हाथ मे लिए

हुए मची हँसती हुई दौडी आई। बोली—"दूर से ही घोडे को देखकर मै पहचान गई। इधर कहाँ गए थे बाबूजी ?"

मची वैसी ही है—बल्कि पहले से कुछ और तदुरुस्त हो गई है। कुसुमी की पखुडियो से उसका हाथ और साडी के सामने का हिस्सा रँग गया था।

मैने कहा—"वहराबुरू पहाड की तलहटी मे काम चल रहा था। तीन महीने से वही था। वही से लौट रहा हूँ। तुम लोग ?"

—"कुसुमी काट रही हूँ बाबूजी। दिन तो काफी निकल आया। इस वक्त तो यही रुक जायँ। वह रही झोपडी अपनी।"

मुझसे 'ना' कहते नही बना। मची ने काम छोड दिया और मुझे अपने झोपडे मे ले गई। उसका पति नकछेदी भगत भी मेरे आने की बात सुनकर खेत से लौट आया।

नकछेदी की पहली स्त्री झोपडी मे रसोई बना रही थी। मुझे देखकर वह भी खुश हुई।

मगर मची सब मे आगे-आगे थी। मेरे लिए उसने गेहूँ के खड का काफी मोटा गद्दा बनाया। छोटे-से कटोरे मे महुए का तेल देकर बोली—"आप नहा लीजिए। उस टीले के दक्खिन मे एक छोटा-सा कुड है। बडा ही निर्मल पानी है। चलिए, मै आपको लिए चलती हूँ।"

मैने कहा—"मै तो उस पानी मे नही नहाऊँगा। बस्ती-भर के लोग उसीमे कपडे फीचते है, मुँह धोते है, नहाते है, बर्तन माँजते है। वह पानी तो बडा गदा होगा। तुम लोग भी वही पानी पीते हो क्या ? तो मुझे इजाजत दो, मै तो वह पानी नही पी सकता।

मची सोच मे पड गई। मै ताड गया कि यहाँ उसके सिवाय और पानी कहाँ मिलेगा कि ये उसे न पिएँ ? उसको छोडकर दूसरा उपाय भी क्या था ?

मची का उदास चेहरा देखकर मुझे दुःख हुआ। अब तक ये

इस गदे पानी को खुशी-खुशी पीते चले आ रहे है, कभी सोचा भी नही कि इसमे और क्या हो सकता है और आज अगर इसी पानी के चलते मै इसकी मेहमानी कबूल न करके लौट जाऊँ, तो इस सरल-प्राणा स्त्री के जी को चोट पहुँचेगी।

मैने कहा—"खैर, उस पानी को खूब उबाल दो—पी लूँगा। और, नहाना रहने दो।"

वह बोली—"क्यो, मै एक कनस्तर पानी उबाल देती हूँ, आप उसीमे नहा भी लीजिए। अभी बहुत ज्यादा देर नही हुई। मै अभी पानी ले आती हूँ।"

मची पानी ले आई। रसोई का सारा इतजाम करके बोली—"मेरे हाथ का बनाया तो आप खाएँगे नही। खुद ही बनाइए।"

—"क्यो, खाऊँगा क्यो नही, तुम्ही बनाओ।"

—"नही-नही, आप खुद बनाइए। एक दिन के लिए आपकी जात क्यो लूँ, मुझे पाप लगेगा।'

—"पाप-ताप कुछ नही होगा, मै कहता हूँ, बनाओ तुम।"

लाचार होकर मची पकाने बैठी। कोई लाम-काफ नही, मोटी-मोटी दो-चार रोटियाँ और जगली नितुए की तरकारी। नकछेदी न जाने कहाँ से भैस का दूध ले आया।

रसोई मे बैठी-बैठी मची का मन न जाने कहाँ-कहाँ घूमता रहा। वह किस्सा सुनाने लगी—उडद काटने पहाडो मे गई थी, वहाँ उसने एक बकरा पाला था। वह बकरा कैसे खो गया, इसकी भी कहानी सुननी पडी वही बैठकर।

मुझसे बोली—"कँकवारा मे गरम पानी का कुड है, जानते है आप? उसीके आस-पास तो आप गए थे, वहाँ नही गए?"

मैने कहा—"कुड के बारे मे सुना तो है, मगर वहाँ जाना नही नसीब हुआ।"

मची बोली—"आपको पता है, मै एक बार वहाँ पिटी थी, मुझे नहाने नही दिया गया था?"

उसके पति ने कहा—"वह भी एक अजीब घटना रही। वहाँ के पडे बडे बदमाश है।

मैंने पूछा—"क्या हुआ था?"

मची ने अपने पति से कहा—"आप बाबूजी को बता दे। ये तो कलकत्ता रहते है। लिख मारेंगे, तो बच्चू को पता चलेगा!"

नकछेदी ने कहा—"वहाँ सूरजकुड जो है, वह बहुत अच्छा है। यात्री उसमे नहाते है। हम लोग उन दिनो ऑवलातल्ली की तलहटी में उडद काट रहे थे। इस बीच आ पडा पूर्णिमा का योग। मची काम-धाम छोडकर नहाने चली गई। मुझे बुखार आ रहा था, नहाना नही था। बडी बहू तुलसी भी नही गई। धरम-वरम पर उसे वैसा विश्वास भी नही है। मची सूरजकुड मे उतरने लगी कि पडो ने कहा—'उधर कहाँ जाती है?' मची ने कहा—'नहाने जा रही हूँ, और कहा?' पडो ने पूछा —'कौन जात है तू?' वह बोली—'गगोता।' पडो ने कहा—'हम गगोतो को कुड मे नही नहाने देते, लौट जा तू।' 'मची को तो आप जानते ही है, कैसी है!' वह बोली—'यह तो पहाडी झरना है, इसमे कोई भी नहा सकता है। इतने लोग तो नहा रहे है, सब क्या ब्राह्मण और छत्री ही है?' और वह कुड मे उतरने लगी। पडो ने उसे घसीटकर मारते-मारते निकाल दिया। वह रोती-रोती लौट आई।"

—"फिर?"

—"फिर क्या होता बाबूजी! हम गरीब गगोते, कटनिए ठहरे। हमारी फरियाद सुनता भी कौन? मैंने इसे दिलासा दिया—रो मत, मैं तुझे मुगेर के सीताकुड से नहला लाऊँगा।"

मची बोली—"आप जरा इसे लिख तो देंगे बाबूजी, बगाली

बाबुओ की कलम मे बडा जोर रहता है—ये कबख्त जरा आटे-दाल का भाव समझेगे।"

मैने सोत्साह कहा—"जरूर लिखूँगा मै।"

इसके बाद मची ने मुझे बडे जतन से खिलाया। उसका आग्रह और मेवा-जतन मुझे बडा अच्छा लगा।

रुखसत होते समय मैने बार-बार कहा—"जो-गेहूँ की कटनी के समय लवटोलिया बैहार जरूर आना।"

मची बोली—"यह भी कहने की बात है—जरूर जाऊँगी। लौटते हुए लगा कि मची आनद, स्वास्थ्य और सरलता की प्रतिमूर्ति हो मानो। मानो इस वन-भूमि की वह लक्ष्मी हो—परिपूर्ण यौवना, जीवनमयी, तेजस्विनी लेकिन मुग्धा, अनभिज्ञ, बालस्वभावा।

बगाली की कलम के जोर का भरोसा करनेवाली उस औरत को उस दिन जो वचन देकर आया था, आज इतने दिनो के बाद मैने उसक पालन किया—पता नही, अब इससे उसका कौन-सा उपकार होगा। आज जाने वह कहाँ है, कैसी दशा मे है, जीवित भी है या नही, कौन जाने।

[दो]

सावन का महीना था। नए मेघो की करुणा बहुत पहले ही बरस पडी थी, नाढा और लवटोलिया बैहार या ग्राट साहब के बरगद के नीचे खडे होकर चारो तरफ निगाह दौडाइए, तमाम हरे समुद्र-सा नया कोमल कास-वन लहरा उठा है।

राजा दोबरू पन्ना ने झूलने का न्योता भेजा था। एक दिन पूर्णिमा के उत्सव मे शामिल होने के लिए मै चला। राजू और मटुकनाथ ने भी पीछा नही छोडा, साथ लग लिए। उन्हे पैदल जाना था, सो वे मुझसे पहले ही रवाना हो गए।

डेढ बजे के करीब डोगी से मिट्टी नदी को पार किया। सबके

पार होते-होते ढाई बज गए। मै सबको छोडकर घोडे से आगे निकल गया।

पश्चिम के आसमान मे घने मेघ घिर आए और जरा देर मे झमाझम पानी पडना शुरू हो गया।

अरण्य-प्रातर मे झमाझम झडी का अपूर्व ही दृश्य देखा! मेघो से सारी शैलमाला नीली हो उठी, बिजली वाले घने काले मेघो से आच्छन्न आकाश, कही-कही सखुए या केद की डालो पर पख फैलाए नृत्य-तत्पर मोर, पहाडी झरनो मे बालक-बालिकाएँ कटची की चचटी लगाकर नन्ही-नन्ही मछलियाँ पकड रहे थे, धुमैली चट्टाने भीग कर काली दिखने लगी थी और उन पर चरवाहे सखुए के पत्तो के बने चुरुट पी रहे थे। शात और सुनसान स्थान—जगल और जंगल, प्रातर-पर-प्रातर, झरने, पहाडी बस्तियाँ, रगीन मिट्टीवाली जमीन, कही-कही फूले कदब और पियार के पेड।

साँझ से पहले ही मै राजा दोबरू पन्ना की राजधानी मे पहुँच गया।

पिछली बार का कमरा मेहमानो के लिए लीप-पोतकर रक्खा गया था। दीवारो पर गेरू की पोताई, कमल और मोर के चित्र, सखुए के खभो पर लता और फूलो की झालर। मै घोडे से पहले ही पहुँच गया—मेरा बिस्तर नही पहुँच सका था; मगर मुझे उससे कोई असुविधा नही हुई। नई चटाई कमरे मे बिछी थी, दो तीन साफ तकिए भी उस पर डाल दिए गए।

कुछ क्षणो के बाद पीतल की तश्तरी मे फल-मूल और कटोरे मे गरम दूध लिए कमरे मे भानुमती आई और उसके पीछे-पीछे सखुए के पत्ते पर छुट्टे पान, समूची सुपारी और पान के और-और मसाले लिए, उसी की हमउम्र एक दूसरी लडकी आई।

भानुमती जमुनिया रग की साडी पहने थी, जो घुटने तक उठ आई थी, गले मे सब्ज और नीले दानो की माला, जूडे मे स्पाइडर

लिली के फूल। और भी तदुरुस्त तथा लावण्यमयी हो उठी थी भानु-मती—गठे हुए बदन मे जवानी के लावण्य का ज्वार उभर उठा था, लेकिन आँखो की सरलता वही रह गई थी, जो पहले देख आया था।

मैने पूछा—"क्यो भानुमति अच्छी तो हो?"

नमस्कार करना भानुमती जानती ही नही थी। मेरे उत्तर मे हँस कर वह बोली—"और आप?"

—"मै सकुशल हूं।"

—"कुछ खा लीजिए। तमाम दिन घोडे पर सवार रहे हो, भूख तीखी लग आई होगी।"

मेरे हाँ-ना का उसने इतजार ही न किया और घुटने गाड कर नीचे बैठ गई। तश्तरी मे से पपीते के दो टुकडे निकालकर उसने मे` हाथ मे दिए।

उसका यह नि सकोच बधुत्व मुझे अच्छा लगा। मेरे-जैसे आदमी के लिए यह व्यवहार अद्भुत, अप्रत्याशित-सा नया, सुदर और मधुर था। कोई बगालिन-किशोरी ऐसा करती कभी? औरतो के बारे में कहाँ तो हमारा मन सदा-सर्वदा सिकुडा-सिमटा रहता है। उनके बारे मे न तो जी खोलकर सोच सकते है, न प्राण खोलकर उनसे मिल सकते है।

यह भी पाया मैने कि यहाँ के प्रातर जैसे खुले है, वन, मेघमाला, गिरि-पक्तियाँ जैसी मुक्त और दूरच्छन्दा है, वैसा ही सकोचहीन, सरल और वाधाविहीन है भानुमती का व्यवहार। आदमी से आदमी का जैसा स्वाभाविक व्यवहार होना चाहिए। ऐसा ही व्यवहार मैने मची और वेकटेश्वरप्रसाद की स्त्री मे भी पाया। जगल और पहाडो ने इनके मन को मुक्त कर दिया है, दृष्टि को उदार कर दिया है—उसी अनुपात मे इनका प्रेम भी मुक्त, दृढ और उदार है। चूँकि इनका मन बडा है, इसलिए इनका प्रेम भी महत् है।

मगर पास मे बैठकर भानुमती ने अपने हाथो से जिस प्रकार

खिलाया, उसकी तुलना नही हो सकती। उस दिन मैंने नारी के निसकोच व्यवहार की मधुरता को अपने जीवन मे पहली बार अनुभव किया। समझा कि नारी जब स्नेह करती है, तब न जाने कौन-से स्वर्ग का द्वार खोल देती है।

भानुमती के अदर जो आदिम नारी है, सभ्य समाज मे सस्कार और बधन के दबाव से उस नारी की आत्मा मूर्च्छित पडी है।

पिछली बार इससे जो व्यवहार मिला था, अबकी का व्यवहार उससे भी अधिक अपनापन लिए था। भानुमती ने समझा है कि मैं उसके परिवार का बन्धु हूँ, उनका भला चाहने वाले अपनो मे से ही एक हूँ, लिहाजा उससे जो व्यवहार मिला, वह अपनी स्नेहमयी सगी बहन का व्यवहार था।

इतने दिन हो गए, कितु भानुमती की वह प्रीति और बधुत्व की बात मेरे स्मृति-पटल पर वैसी ही उज्ज्वल है। जगली सभ्यता के उस दान के आगे मेरे मन मे सभ्य समाज के अनेक वैभव निस्तेज होकर पडे है।

अब तक राजा दोबरू उत्सव के आयोजनो मे लगे थे। अब मेरे कमरे मे आए।

मैंने पूछा—"झूला क्या आपके यहाँ बराबर होता है?"

वे बोले—"यह उत्सव पुश्तैनी है। इस मौके पर दूर-दूर के सगे-सबधी यहाँ नाचने को आते है। कल ढाई मन चावल यहाँ पकेगा!"

मटुकनाथ विदाई के लोभ से आया था। उसने सोच रक्खा था, बहुत बडे राजा का दरबार है, कितना क्या होगा जाने। उसके चेहरे से लगा, उसे निराशा हुई। लगा, इस राजदरबार से तो उसकी पाठशाला ही अच्छी है।

राजू से मन की बात दबाते न बनी। बोल उठा—"यह राजा कहाँ है हुजूर, सथाल-सरदार तो है! मेरे यहाँ जितनी भैसे है, मैंने सुना है, राजा के यहाँ उतनी भी नही!"

इसी बीच उसने राजा की धन-सपत्ति की भी थाह पा ली—गाय-भैस इधर वैभव का बहुत बडा मानदड है। जिसके जितनी अधिक भैसे है, इधर वह उतना ही बडा आदमी गिना जायगा।

काफी रात गए चौदहवी की चाँदनी ने जब गृहस्थो के आँगन मे ज्योति-तिमिर का जाल-सा बुन दिया, तब राजमहल से नारियो के समवेत स्वर मे एक अजीब ढग का गीत सुनाई पडा। कल सावनी पूर्णिमा होगी, बाहर से आई हुई मेहमान और राजकुमारी की सहेलियाँ कल के नाच-गीत की तैयारी कर रही थी। उनके गीत और मादर की आवाज रात-भर एक साथ उठती रही।

सुनते-सुनते मै जाने कब सो गया, नीद मे भी मानो कितनी ही बार मै उनका वह गीत सुन रहा था।

[तीन]

दूसरे दिन झूले का उत्सव देखा, तो मटुकनाथ और राजू ही क्या, मुनेश्वरसिंह भी मुग्ध हो गया।

सुबह ही देखा, आस-पास की बस्तियो से भानुमती की हम-उम्र कोई तीस-एक लडकियाँ आ जुटी है। एक प्रथा मुझे इनकी अच्छी लगी कि नाच-गान की ऐसी बाढ मे भी उन्होने महुए की शराब नही पी। मैने राजा दोबरू से इसके बारे मे पूछा भी। उन्होने नाज के साथ हँसकर कहा—"हमारे कुल की औरतो मे यह बात नही। फिर मै आज्ञा न दूँ, तो किसी की मजाल नही कि मेरे बाल-बच्चो के सामने शराब पिए।"

दोपहर को मटुकनाथ ने मुझसे चुप-चुप कहा—"देखता हूँ, ये राजा साहब तो मुझसे भी गए-बीते है। पकाने के लिए बडा ही मोटा और लाल चावल दिया है, पका कोहड़ा और जगली परोल। इतने सारे लोगो के लिए आखिर मै क्या पकाऊँ?"

सबेरे से भानुमती की शक्ल भी नही दिखाई दी। जब मै खाने को बैठा, तब एक कटोरे मे दूध लिए वह मेरे पास आकर बैठ गई।

मैंने कहा—"रात तुम्हारा गाना मुझे बडा अच्छा लगा।"

हँसकर उसने पूछा—"हमलोगो के गीत आप समझ लेते है ?"

मैंने कहा—"क्यो, तुम लोगो के बीच रहते हुए इतने दिन हो गए, तुम्हारे गीत समझूँगा क्यो न भला !"

—"आज शाम आप झूला देखने जाएँगे न ?"

—"उसी के लिए तो आया हूँ। कितनी दूर जाना है ?"

धनझरी पहाड की तरफ अँगुली दिखाकर भानुमती बोली—"उस पहाड तक तो आप गए है। हम लोगो का मदिर नही देखा है क्या ?"

इतने मे उसकी हमजोली लडकियाँ दरवाजे पर आकर रुकी और बड़े कौतूहल से मेरा खाना देखकर आपस मे जाने क्या-क्या बोलने-बतियाने लगी।

भानुमति बोली—"यहाँ क्या है, जाओ।"

उनमे से एक जरा चचल थी। बढकर बोली—"झूले के दिन बाबू साहब को नमक-करौदा तो खाने को नही दे दिया है तू ने ?"

बाकी लडकियाँ खिलखिलाकर हँस पडी और एक दूसरे के बदन पर गिरने लगी।

मैंने भानुमती से पूछा—"ये हँस क्यो रही है ?"

लजाती हुई बोली—"उन्ही से पूछ लो, मैं क्या जानूँ ?"

इतने मे एक लडकी ने मेरी पत्तल मे कमरख और मिर्च डाल दिया और बोली—"मिर्च का अचार खा ले बाबूजी। भानुमती तो आपको केवल मिठाई ही खिला रही है। यह कैसे होगा—हम कुछ कडवा भी खिला ले।

फिर सभी लडकियाँ ठठाकर हँस पडी। इतनी-इतनी तरुणियो की सरल हँसी से दिन मे ही पूनो की चाँदनी छिटक पडी।

साँझ से पहले युवक-युवतियो की एक टोली पहाड की ओर

रवाना हुई। हम भी उन्ही के साथ लग गए—एक विशाल जुलूस ही समझिए। पूरब की तरफ नवादा-लक्ष्मीपुर की सरहद पर धनझरी पहाड, जिसके नीचे से भिट्टी नदी उत्तर की ओर प्रवाहित हुई है, उसी पहाड पर पूर्णमासी का पूर्ण चद्र उगता आ रहा था। एक तरफ नीची उपत्यका—जगलो से हरी-भरी, दूसरी तरफ धनझरी की पक्ति। मील-भर चलकर हम पहाड के नीचे पहुँचे। थोडी उँचाई चढ जाने पर एक समतल-सी जगह पडती थी। उसके बीचोबीच पियार का एक पेड, जिसके तने को फूल और लता ने घेर रक्खा था। राजा दोबरू ने बताया, यह पेड बडा पुराना है, मैं बचपन से ही इसे देखता आया हूँ। झूले के समय स्त्रियाँ इसी के नीचे नाचा करती है।

ताड के पत्ते की चटाई डालकर हमलोग एक तरफ बैठ गए। और पूनो की चाँदनी से धुली उस वनभूमि मे लगभग तीस तरुणियाँ पेड का चक्कर काटती हुई नाचने लगी—कुछ युवक मादर (मृदग) बजाते हुए उनके साथ घूमने लगे। भानुमती, दल मे सबसे आगे थी। लडकियो के जूड़े मे फूलो की माला, बदन मे फूलो के गहने लदे थे।

बडी रात तक यह नृत्य-गीत लगातार चलता रहा। बीच-बीच मे वे थोडा साँस भी ले लेती और फिर नाचना शुरू कर देती—मादर के बोल, चाँदनी, वर्षास्निग्ध वनभूमि और सुठाम, श्यामा नृत्परायण तरुणियो की टोली—सब मिलकर किसी बडे चित्रकार की आँकी हुई तस्वीर जैसी शोभामयी लग रही थी। उसका आकुल आवेदन किसी मधुर-सगीत-सा प्रतीत हो रहा था। सोलकी राजकन्या और उनकी सहचरियो के ऐसे ही झूले के नाच-गान की बात याद हो आई, चरवाहे बालक बप्पादित्य को खेल के बहाने माला देने की बात।

इससे भी सुदूर अतीत के, प्राचीन प्रस्तर-युग के भारत के रहस्य से ढँके इतिहास की सारी घटनाएँ मेरी आँखो के आगे मानो फिर से अभिनीत होने लगी—भानुमती और उसकी सखियो के नृत्य मे आदिम

भारत की वह सस्कृति मानो मूर्तिमती हो उठी है—हजारो साल पहले ऐसे कितने ही वन, कितनी पर्वतमालाएँ, ऐसी कितनी ही चाँदनी रातें भानुमती-जैसी कितनी ही बालिकाओ के नृत्य-चचल चरणो के छद से आकुल हो उठी थी , उनकी वह हँसी आज भी मरी नही, इन जगलो और गिरि-मालाओ की आड से वे अपने वर्धमान वशधरो के लहू मे आज भी उत्साह और आनन्द की उस वाणी को भेजती रहती है।

गहरी रात। पच्छिम के जगल के पीछे चाँद झुक गया। हम सभी पहाड से नीचे उतर आए। यह अच्छा रहा कि आसमान मे आज बदली नही थी, मगर सुबह की तरफ ओदी हवा काफी सर्द हो गई। उतनी रात बीतने पर भी खाने बैठा, तो भानुमती दूध और पेडा लेकर आई।

मैने कहा—"तुम लोगो का बेहतरीन नाच रात मैने देखा।"

लजाकर वह बोली—"आपको वह नाच भला क्या लगेगा, भला—कलकत्ता मे यह सब कोई देखता भी है!"

दूसरे दिन भानुमती और उसके प्रपितामह लौटने देने मे आनाकानी करने लगे। मगर रुकने से अपना काम नही चल सकता था, सो लौट आया।

चलते समय भानुमती ने कहा—"कलकत्ता से मेरे लिए एक आईना ला देगे बाबूजी ? मेरे पास एक था , पर कुछ दिन हुए वह टूट गया!"

सोलह साल की सुदरी तरुणी को आईने की कमी! आखिर आइना बना किसके लिए है ? एक हफ्ते के अदर ही मैने पूर्णियाँ से एक आइना मँगवा कर उसे भिजवा दिया था।

चौदहवाँ परिच्छेद

[एक]

कई महीने बाद, फागुन का आरभ। लवटोलिया से मै अपनी कचहरी को लौट रहा था। रास्ते मे कुड के पास बँगला बोली सुनाई पडी। मैने घोडे को रोका। जितना ही पास पहुँचने लगा, मेरा अचरज बढता गया। औरतो की भी आवाज आ रही थी—आखिर माजरा क्या है ? जगल से होकर मै कुड के पास पहुँचा। देखता क्या हूँ कि झाउ की झाडियो के पास दरी डाल कर आठ-दस बगाली बाबू गप-शप कर रहे है। पास ही पाँच-छै औरते कुछ पका रही है, छै-सात बच्चे-बच्चियाँ दौड-धूप रही है। मै समझ नही सका कि इतने सारे औरत-मर्द इस जगल मे पिकनिक के लिए कहाँ से आ गए ? मै अवाक् खडा रह गया। इतने मे उन लोगो की नजर मुझ पर पडी। एक ने बगला मे कहा—"अरे रे, यह कम्बख्त सत्तू कहाँ से आ गया ? "

मै घोडे से उतर कर उनके पास गया। पूछा—"आप लोग तो बगाली-से दीखते है—यहाँ कैसे आना हुआ ? "

वे अचभे मे पड गए, कुछ अप्रतिभ भी हुए। बोले—"ओ, आप बगाली है ? हे-हे बुरा न मानेगे, हमने सोचा—हे-हे "

मैने कहा—"जी बुरा मानने की क्या बात है इसमे ? मगर आप लोग कहाँ से आए और इन औरतो के साथ "

बाते होने लगी। दल मे जो प्रौढ सज्जन थे, वे रिटायर्ड डिप्टी मजिस्ट्रेट थे—राय बहादुर। बाकी लोग उन्ही के लडके, भतीजे, भतीजी, लडकी, पोती, दामाद के दोस्त आदि। कलकत्ता मे राय बहादुर ने किसी किताब मे पढा था कि पूर्णियाँ मे शिकार बहुत मिलता है। पूर्णियाँ मे उनके भाई मुसिफ थे, वे यह देखने के लिए यहाँ आकर टिके थे कि सच-

मुच ही यहाँ शिकार की सहूलियत है या नही। आज सुबह के ट्रेन से चले और दस बजे कटोरिया मे उतरे। वहाँ से नाव पर चढकर कोसी पार करके पिकनिक के लिए यहाँ आए, क्योकि जिसके मुँह से भी सुना, यही सुना कि लवटोलिया, बोमाहबुरू और फुलकिया का जगल नही देखा, तो कुछ नही देखा। सो यहाँ से पिकनिक खत्म करके ये मोहनपुरा के पास कोसी मे नाव पर सवार होगे और आज ही रात को कटोरिया पहुँच जाएँगे।

मै तो अवाक् रह गया। सबल के नाम पर उनके पास एक दोनली बदूक थी, बस। उसी के भरोसे पर बाल-बच्चो के साथ थे इस घोर जगल मे पिकनिक के लिए चले आए। साहस की तारीफ करनी पडी, लेकिन राय बहादुर तो दुनिया देखे हुए व्यक्ति थे, उन्हे जरा सावधान होना चाहिए था। साँझ होते-होते इधर के जगली लोग भी मोहनपुरा जगल के पास से गुजरने की हिम्मत नही करते। जगली भैसो का खतरा रहता है। बाघ भी निकल आए, तो ताज्जुब नही। बनैले सूअर और साँपो की तो बात ही क्या। बच्चो के साथ पिकनिक मे आने की यह जगह ही नही।

राय बहादुर मुझे छुट्टी देने को राजी न थे—बैठना ही पडेगा, चाय पीनी ही पडेगी। मेरा हाल पूछने लगे—मै यहाँ इस जगल मे क्या करता हूँ। लकडी का तो व्यवसाय नही करता ? मैने अपना सारा किस्सा बताया और सबके साथ उन्हे अपने यहाँ रात बिताने का अनुरोध किया, मगर वे रुकने को राजी न हुए। आज रात तक उन्हे पूर्णियाँ पहुँचना जरूरी था, नही तो वहाँ लोग फिक्र मे पड जायँगे।

मै समझ नही सका कि ये इतनी दूर जगल मे पिकनिक करने को आए क्यो। लवटोलिया के मुक्त प्रातर और वन, दूर की पहाडियों की शोभा, सूर्यास्त की सुषमा, पछियो की बोली, पास ही वन के माथे पर वसन्त के न जाने कितने तरह के फूल खिले थे—मैने देखा कि इन बातो का इन्हे जरा भी खयाल नही। ये तो केवल चीख रहे थे,

उछल-कूद रहे थे, गीत गा रहे थे और इस फिक्र मे लगे थे कि खाने की क्या तदबीर हो। लडकियाँ जो थी, उनमे से दो तो कलकत्ता मे कालेज मे पढती थी, बाकी स्कूल मे। लडको मे से एक था मेडिकल कालेज का छात्र, दूसरे सब स्कूल-कालेज के विद्यार्थी, मगर किसी तरह से हो, जब प्रकृति के इस अचरज-भरे सौन्दर्य-राज्य मे आ ही निकले थे, तो भी उन्हे देखने की आँखे ही न थी। सच पूछिए, तो ये लोग तो शिकार के लिए आए थे, खरगोस, चिडिया, हिरन—मानो ये जीव इनकी गोली का निशाना बनने के लिए राह के किनारे ही बैठे हो!

और जो लडकियाँ आई थी, वैसी कल्पनालेश हीन लडकियाँ कही भी जो देखी हो मैने! बस इधर से उधर की दौड-धूप, जगल से रसोई के लिए सूखी लकडियाँ बटोर कर लाना और बक-बक—उनमे से किसी ने भी एक बार चारो तरफ निहार कर नही देखा कि उनकी यह खिचडी कहाँ बन रही है, किस निविड सौन्दर्यमय वन के किनारे।

एक लडकी बोली—"यहाँ 'टिन कटर' ठोकने की बडी सुविधा है, क्यो? पत्थर कितने है!"

एक दूसरी ने कहा—"उँह, क्या जगह है यह—बढिया चावल कही ढूँढे नही मिलता। कल सारे शहर की खाक छानती रही—कैसा घिनौना चावल मिला, तिस पर तुर्रा यह कि तुम लोग पुलाव पकाने के मनसूबे गाँठ रहे थे!"

उन्हे क्या पता था कि जहाँ वे रसोई पका रही थी, वहाँ चाँदनी रात मे परियाँ आकर खेला करती है?

उन्होने बाइस्कोप की बाते शुरू की। रात भी उन्होने पूर्णियाँ मे तसवीर देखी और वह शायद बिलकुल वाहियात थी। बस, इसी तरह की बातचीत। साथ ही कलकत्ता के सिनेमा से यहाँ की तुलना! ढेकी स्वर्ग मे भी धान ही कूटता है जाकर—बात झूठ नही। शाम के पाँच बजे वे चल दिए।

जाते समय जमे दूध और जैम के कुछ खाली डिब्बे छोड गए। वहाँ पेडो के नीचे ये चीजे मुझे कैसी तो बेमेल लगी।

[दो]

वसत के विदा होते ही इस साल लवटोलिया मे गेहूँ की फसल पक गई। पिछले साल अपने मौजे मे सरसो की फसल बहुत ज्यादा थी, अबकी बहुत खेतो मे गेहूँ भी था, सो वैशाख के आरभ ही मे कटनी का मेला लग गया।

कटनिए जैसे भविष्यद्रष्टा थे, इस साल सर्दियो मे वे नही आए, इस समय जमात बाँधकर आने और जगल के पास, मैदानो मे झोपडे बनाकर रहने लगे। दो-तीन हजार बीघे मे फसल लगी थी, लिहाजा मजदूर भी तीन-चार हजार से कम नही आए होगे। सुना, अभी लोग आ ही रहे है।

मै सुबह जो घोडे की पीठ पर सवार होता, सो शाम को ही उतरता। जाने कैसे-कैसे लोग आ रहे है, इनमे कितने बदनाश, कितने गुडे, कितने रोगी होगे, सब पर निगाह न रखने से ऐसी जगह मे, जहाँ पुलिस नही, कभी भी कोई दुर्घटना हो सकती है।

एकाध घटना सुना ही दूँ।

एक दिन रास्ते मे दो लडके और एक लडकी रोते मिले। मै घोडे से उतर पडा। पूछा—"क्यो रो रहे हो, क्या हुआ ?"

उन्होने जो बताया, उसका साराश यह है—वे लडके उस गाँव के नही थे, नदलाल ओझा गोलावाला के गाँव के थे। सगे भाई-बहन थे, सब मेला देखने आए थे। आज ही आए थे। कही लाठी और फदे का जूआ चल रहा था। बडा लडका खेलने लगा। एक लाठी जमीन से लगी खडी थी, उसी पर रस्सी फेकनी पडती थी। अगर लाठी मे फदा लग गया, तो एक का चार लीजिए।

बडे भाई के पास दस आने पैसे थे। उसने बार-बार फदा फेका,

और एक बार भी न लग सका। इस तरह वह अपना सब हार गया। छोटे भाई के आठ आने और बहिन के चार आने भी हार बैठा। पास मे फूटी पाई भी न रही कि कुछ खा सके, तमाशा देखने की तो दूर रही।

मैंने उन्हे चुप होने को कहा और जहाँ जुआ हो रहा था, उन्हे लेकर उसी तरफ चला। पहले तो वे जगह ही नही बता पा रहे थे, अत मे बहेडे का एक पेड दिखाकर बोले, इसी के नीचे जुआ हो रहा था। लेकिन वहाँ कोई नही था। कचहरी के जमादार रूपसिह का भाई मेरे साथ था। उसने कहा—"ऐसे जुआरी भी कहीं एक जगह ठहरते हैं हुजूर। चल दिए होंगे कही।"

तीसरे पहर वह जुआरी पकड गया। किसी बस्ती मे वह जुआ खेल रहा था। मेरे प्यादो ने देखा, पकड लाए। उन बच्चो ने भी जुआरी को पहचाना।

पहले तो वह पैसे लौटाने को राजी नही हो रहा था। बोला—"मैंने इनके पैसे छीन तो नही लिए, खेल कर ये खुद ही हार गए हैं, इसमे मेरा कौन-सा कसूर है ?" लेकिन उन बच्चो के पैसे तो उसे देने ही पडे। मैंने हुक्म दिया कि इसे पुलिस के हवाले करो।

वह पैरो पडकर गिडगिडाने लगा। मैंने पूछा—"तुम्हारा घर ?"

—"बलिया जिला, बाबूजी !"

—"लोगो को इस तरह ठगा क्यो करते हो ? कितने पैसे ठगे ?"

—"गरीब आदमी हूँ हुजूर, मुझ पर रहम करे। तीन दिन मे कुल दो रुपए तीन आने पैदा कर सका हूँ।"

—"इन मजदूरो से तीन दिन मे तुमने बहुत ज्यादा पैदा किया है।"

—"मगर साल मे रोजगार के ऐसे मौके ही कितने आते हैं हुजूर ? सारे वर्ष मे तीस-चालीस रुपए की आमदनी हो पाती है।"

मैंने उसे इस शर्त पर छुडवा दिया, कि आज ही वह मेरा गाँव छोड कर चला जाय। उस दिन से फिर उसे वहाँ किसी ने नही देखा।

कटनियो मे इस बार मची को न देखकर मुझे उद्वेग भी हुआ, और अचरज भी। उसने गेहूँ की फसल के समय आने का बार-बार वादा किया था। कटनी का मेला लगा, उठ भी गया—मैं समझ नही सका कि वह आई क्यो नही।

दूसरे मजूरो से पूछ-ताछ भी की, पर कोई पता नही चला। मै सोचने लगा—कोसी नदी के दक्खिन मे इस्माइलपुर दीयरे को छोडकर आस-पास यहाँ जितना बडा खेती का इलाका दूसरा तो है नही। फिर जब मजदूरी भी एक ही-सी मिलती है, तब वह इतनी दूर क्यो जायगी?

मेला उठने-उठने के समय एक गगोते मजूर से उसका समाचार मिला। वह मची और उसके पति नकछेदी भगत को पहचानता था। साथ-साथ बहुत जगह काम भी किया था शायद। उसने बताया—उसने उन्हे फागुन मे अकबरपुर के सरकारी खासमहाल मे काम करते देखा था। उसके बाद वे कहाँ गए, पता नही।

कटनी का मेला आधे जेठ तक उठ गया। एक दिन कचहरी में नकछेदी भगत को देखकर मैं अचरज मे पड गया। मेरा पॉव पकड कर वह फुक्का फाड कर रो पडा। मैंने पॉव छुडाया तथा और भी ताज्जुब मे पडकर पूछा—"बात क्या है? तुम लोग कटनी के दिनो यहॉ आए क्यो नही? मची मजे मे तो है? है कहॉ वह?"

मेरी बात के जवाब मे उसने जो जवाब दिया, वह सक्षेप मे यो है—मंची कहॉ है, इसकी उसे कोई खबर नही। खासमहाल मे काम करते समय वह उसे छोडकर न जाने कहॉ भाग गई। खोज-ढूँढ बहुत की, पर उसका पता न चला।

मै चकित और विस्मित रह गया, लेकिन मुझे नकछेदी भगत के लिए कोई हमदर्दी न थी, ऐसा लगा। सोच-फिकर जो कुछ भी थी, सब उस वन्य स्त्री के लिए। आखिर वह गई कहाँ, उसे कौन फुसला कर ले भागा, वह कहाँ और किस हालत मे है? सस्ती शौकीनी की चीजो की

जैसी रुझान मैंने उसमे देखी थी, उन चीजो का लोभ दिखाकर उसे भगा ले जाना मुश्किल न था। हुआ भी ऐसा ही होगा।

मैंने पूछा—"और उसका बच्चा?"

—"वह दुनिया मे नही रहा। चेचक से मारा गया।"

सुनकर मै बहुत दुखी हुआ। निश्चय ही बच्चे के शोक मे पागल होकर ही वह बेचारी निकल पडी होगी—"दो आँखे जिधर ले जायँ। जरा देर मै चुप रह गया। फिर पूछा—"तुलसी कहाँ है?"

—"वह यही है, साथ आई है।—हुजूर, मुझे थोडी-सी जमीन दे। कटनी पर अब बूढे-बूढी का गुजारा नही चल सकता। मची थी, तो बल था। उमी के भरोसे घूमा करता था। वह मेरे हाथ-पाँव तोडकर चली गई!"

सध्या समय उसके झोपडे मे गया। तुलसी बाल-बच्चो को लिए हुए चीना तैयार कर रही थी। मुझे देखकर वह रो पडी। देखा—मची के चले जाने से वह भी बहुत दुखी है। बोली—"हुजूर, यह सारा कसूर इस बूढे का है। वहाँ सरकारी लोग टीका लगाने आए थे। बुड्ढे ने चार आना घूस देकर उन्हे विदा कर दिया, टीका नही लगाने दिया। कहा—टीका लगाने से चेचक होगा। तीन दिन भी नही गुजरे थे कि मची के बेटे को चेचक निकली और उसी मे वह चल भी बसा। उसके शोक मे वह पागल-सी हो गई। खाना-पीना छोड बैठी—सिर्फ रोती और रोती।"

—"उसके बाद?"

—"उसके बाद खासमहाल से हम लोगो को निकाल दिया गया हुजूर। कहा गया—'चेचक मे तुम्हारा बच्चा मरा है, अब तुम लोगो को यहाँ नही रहने दिया जायगा।' एक रजपूत छोकरा मची पर निगाह गडाए था। जिस दिन हम लोग खासमहाल से रुखसत हुए, मची उसी रात को गायब हुई। उस दिन सबेरे मैंने उस छोकरे को झोपडे का चक्कर काटते देखा था। यह जरूर उसी की कारस्तानी होगी हुजूर। इधर मची

कलकत्ता देखने की बडी रट लगाए हुए थी। जभी मैं समझ रही थी कि कुछ-न-कुछ होगा।"

मुझे भी याद आया, पिछले साल भी उसने मुझसे कलकत्ता देखने का बडा आग्रह दिखाया था। उस धूर्त्त राजपूत छोकरे ने कलकत्ता दिखान के लोभ से उसे भगा लिया हो, तो ताज्जुब क्या।

मुझे पता था कि ऐसी दशा मे इधर की औरतो की अतिम परिणति चाय के बगीचो की कुलीगिरी मे होती है। मची के नसीब मे आखिर क्या आसाम की पहाडियो की दासता और निर्वासन ही लिखा था?

मुझे बूढे नकछेदी भगत पर बडा गुस्सा आया। सारी खुराफातो की जड कम्बख्त यही बूढा है। बुढापे मे इसने मची से शादी ही क्यो की थी? फिर सरकारी टीके वाले को घूस देकर इसने लौटा क्यो दिया? इसे मैं जमीन भी दूँगा, तो इसके लिए हर्गिज नही, इसकी बूढी औरत और बच्चो की खातिर दूँगा।

दिया भी। सदर से हुक्म आया था, नाढा बैहार मे जल्दी-से-जल्दी रैयत बसाऊँ। नकछेदी भगत को ही मैंने सबसे पहले बसा दिया।

नाढा बैहार घने जगल से भरा था। महज दो-एक रैयतो ने अभी-अभी झोपडा बनाना शुरू किया था। जगल देख कर पहले तो नकछेदी की हिम्मत टूट गई, कहा—"हुजूर! वहाँ तो दिन दहाडे ही बाघ उठा ले जाएँगे—इन नन्हे बच्चो को लेकर "

मैंने साफ-साफ कह दिया—" अगर वहाँ रहना पसन्द न हो, तो और कही जाओ—"

लाचार होकर उसने उस जगल मे ही जमीन ले ली।

[तीन]

नकछेदी जब से यहाँ है, मैं एक बार भी उसके झोपडे पर नहीं गया। उस दिन साँझ को बैहार होकर लौट रहा था—एक जगह थोडी

सौफ की हुई जगह दिखाई पडी—पास-पाम कसाल के दो झोपडे। एक मे से रोशनी छनकर बाहर आ रही थी।

मुझे पता नही था कि यह झोपडा नकछेदी का है। घोडे की टाप सुनकर जो प्रौढा स्त्री झोपडे के अन्दर से बाहर आई, वह नकछेदी की स्त्री तुलसी थी।

—"तुम लोगो ने यहाँ पर जमीन ली है? नकछेदी कहाँ है?"

मुझे देखकर वह आश्चर्य मे पड गई। जल्दी मे गेहूँ का भूसा भरी टाट की एक गद्दी उसने डाल दी और बोली—"जरा देर बैठिए बाबूजी। वह लवटोलिया गए हैं—नमक-तेल लाने। बडे लडके को साथ ले गए हैं।"

—"और तुम इस घोर जगल मे अकेली हो?"

—"यह सब रम गया है अब तो बाबूजी। डरने मे हम गरीबो का काम चल सकता है भला? यो अकेली रहना तो नही पडता, मगर अपनी खोटी तकदीर। जब तक मची रही, क्या जगल और क्या पानी, कही डर नही था। गजब का साहस और तेज था उसमे बाबूजी।"

तुलसी अपनी तरुणी सौत को चाहती थी। उसे यह भी पता था कि मची की चर्चा से मुझे खुशी होगी।

तुलसी की लडकी सुरतिया ने कहा—"मैने नीलगाय का एक बच्चा पकड रक्खा है, देखेगे? उस दिन हमारे झोपडे के पीछे तीसरे पहर खस्-खस् करता फिर रहा था। मैने और छनिया ने मिलकर पकड लिया। बडा सुन्दर है।"

मैने पूछा—"खाता क्या है वह?"

सुरतिया बोली—"चीना और कोमल पत्ते। केंद के नए पत्ते तोडकर ला देती हूँ।"

तुलसी बोली—"बाबूजी को दिखा—"

सुरतिया हरिन-जैसी तेज पीछे की तरफ भाग गई। जरा देर मे उसकी चीख पुकार सुनाई पडी—"अरे छनिया, नीलगैया त भागी गेलौ रे—हिन्ने-हिन्ने—जल्दी पकड—"

दोनो बहनो ने आखिर बच्चे को पकड ही लिया और हँसती-हाँफती उसे मेरे पास ले आई ।

अँधेरे मे मैं उसे देख सकूँ, इस ख्याल से तुलसी ने एक जलती हुई लकडी को ऊपर उठा कर रक्खा। सुरतिया ने पूछा—"सुन्दर है न बाबूजी ! कल रात को भालू इसे खाने की फिराक मे था। महुए खाने के लिए कल रात उस पेड पर भालू चढा था—बहुत रात हो चुकी थी—बप्पा और मैया गहरी नीद मे थे, मुझे खबर थी। भालू पेड से उतर कर हमारे पिछवाडे आया। मैं रात को इसे अपनी छाती से लगाकर सोती हूँ—भालू की आहट पाकर मैंने इसका मुँह दबाकर छाती से और भी कसकर चिपका लिया।"

—"तुझे डर नही लगा ?"

—"इस् डर क्या, मैं डरती नही। लकडी चुनने जाती हूँ, तो कितना भालू देखती हूँ, वहाँ भी डर नही लगता, डरने से काम चलेगा बाबूजी ?"

उसने पुरखिन-जैसी शक्ल बना ली।

झोपडे के चारो तरफ मिल की काली चिमनियो-जैसे केद के काले-काले तने आसमान की ओर सिर उठाए थे, जैसे कैलिफोर्निया के रेडउड् पेड का जगल हो। चमगादड और निशाचर पछियो के डैनो की फटाफट हर डाल पर होने लगी थी। झाड़ियो पर झुड-के-झुड जुगनू जल रहे थे, झोपडे के पीछे ही सियार बोल रहे थे—मैं समझ नही पा रहा था कि इन कई छोटे-छोटे बच्चो को लेकर इनकी माँ इस सुनसान जगल मे रहती कैसे है। हे विज्ञ, रहस्यमय अरण्य, आश्रितो पर सचमुच ही तुम्हारी बडी कृपा है।

बातो-ही-बातो मे मैंने पूछा—"मची क्या अपना सब कुछ साथ लेती गई है ?"

सुरतिया बोली—"साथ कुछ भी नही ले गई है छोटी माँ। उस

बाग उसका जो बक्स आप देख गए थे, उसे भी छोड गई। देखेगे आप ? अभी लाई।

बक्स को लाकर उसने मेरे सामने खोला। कघी, छोटा-सा आइना, नकली दाने की माला, एक सब्ज रूमाल—ठीक जैसे किसी नन्ही बच्ची के खिलौनो का बक्स हो , मगर पिछली बार लवटोलिया मे जिसे खरीदा था, वह माला इसमे नही थी।

कौन कह सकता है कि अपना घर-ससार छोड कर वह कहाँ चली गई ? इन लोगो ने तो आखिर झोपडा डालकर अपनी दुनिया बसाई, इनमे से वह जैसी खानाबदोश थी, वैसी खानाबदोश ही रह गई।

घोडे पर सवार होते समय सुरतिया बोली—"और किसी दिन आइए बाबूजी। फदे से हम चिडिया फँसाते है। नया फदा बुन रक्खा है। एक डाहूक और गुडगुडी को पाला भी है। ये जब बोलते है, तो जगल से दूसरी चिडियाँ आकर फदे मे फँसती है। आज तो समय नही रहा, नही तो फँसा कर आपको दिखाती—"

इतनी रात को नाढा बैहार होकर जाने मे भय-सा लगता। बाई ओर एक छोटे-से पहाडी झरने का पानी कल-कल करता हुआ बह रहा था। कही कोई फूल फूला था—गध से भरा अँधेरा कही-कही इतना गाढा हो उठा था कि घोडे की गर्दन का रोआँ नही सूझता, कही तारो की जोत से अँधेरा कुछ मद पड़ गया था।

नाढा बैहार तरह-तरह के पेड-पौधे, जीव-जतु और पछियो का अड्डा है—इसकी वनभूमि और प्रातर को प्रकृति ने अनत वैभव से सजाया है, सरस्वती कुड इसी बैहार की उत्तरी सीमा पर पडता है। जरीब के पुराने कागजात से पता चलता है, पहले यहाँ कोसी की धारा थी, अब वह भर गई है और यही इतना पानी बच रहा है। दूसरी तरफ वही प्राचीन धारा घने जगल मे जाग उठी है—

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरिताम्

इस वनभूमि की कैसी वर्णनातीत शोभा उस अँधेरे मे देखी मैने।

मगर जैसे ही यह खयाल आया कि इस जगल की आयु ज्यादा नही रह गई, वैसे ही एक कचोट-सी उठी। मै इसे इतना प्यार करता हूँ और मेरे ही हाथो इसका विनाश होगा ! महज दो साल के अन्दर सारा-का-सारा गाँव गदे टोलो और घिनौनी बस्तियो से भर जायगा। प्रकृति के अपने हाथो से सजाया हुआ, उसकी सैकडो साल की साधना का फल यह नाढा बैहार, अपनी अतुल सौन्दर्य-राशि और दूरव्यापी प्रातर को लेकर जाने कहाँ गायब हो जायगा , मगर इसके बदले मिलेगा क्या ?

कुछ फूँस के बदसूरत घर, गोशाला, मकई के खेत, सन की ढेरी, रस्सी की चारपाई, महावीरी पताका, सीझ के काँटे, भरपूर तम्बाकू, भरपूर खैनी और भरपूर चेचक और हैजे के दौरे !

हे अरण्य, हे सुप्राचीन, मुझे माफ करना।

एक दिन सुरतिया के यहाँ फिर गया, उसका चिडिया फँसाना देखने।

सुरतिया और छनिया, दोनो दो पिजरे लिए मेरे साथ नाढा बैहार के जगल के पास गई।

तीसरे पहर का समय। बैहार पर लम्बी छाया छोडकर, सूरज पहाड के पीछे उतर गया था।

एक सेमल के पेड के नीचे उन्होने दोनो पिजरो को उतारा। एक मे था एक डाहुक, दूसरे मे गुडगुडी। दोनो ही सिखाई-पढाई चिडियाँ थी। जगली चिडियो को बुलाने के लिए पोडकी बोलने लगी।

गुडगुडी पहले नही बोली।

सुरतिया ने सीटी बजाकर कहा—"बोल री बहिनिया, तोहर फिर ."

कहना था कि गुडगुडी बोल उठी—",गुड-ड-ड-ड़—"

सूने अपराह्न मे, दूर तक फैले मैदान की निर्जनता मे वह अनोखी आवाज मन मे ऐसे ही दिगत-विस्तारी प्रातर की तसवीर भर देती, ऐसे ही मुक्त क्षितिज का स्वप्न, छायाहीन ज्योत्स्नालोक। पास ही हरियाली पर, जहाँ दुधली के राशि-राशि फूल खिले थे, छनिया ने फदा बिछाया,

बाँस की करची का बना घेरा, उन्ही घेरो से उसने गुड़गुडी के पिंजरे को ढक दिया।

सुरतिया बोली—"चलिए, हमलोग झाडी की आड मे छिप जाय। आदमी देखकर चिडियाँ उड जाएँगी।"

कुछ देर हम लोग सखुए की ओट मे दुबके बैठे रहे। डाहुक तो जब-तब चुप भी हो जाता, मगर गुडगुडी की पुकार बन्द न होती—बोलती ही चली जा रही थी वह—गुड-ड-ड-ड।

बडा ही अलौकिक स्वर। मैने कहा—"सुरतिया, अपनी यह गुड-गुडी बेचेगी तू? क्या लेगी इसका?"

सुरतिया बोली—"चुप्-चुप्, वह सुनिए, चिडिया आ रही है—"

जरा देर की नीरवता के बाद एक दूसरी आवाज वन-प्रातर को गुँजाती हुई मैदान के उत्तर से आई—गुड-ड-ड

मेरा शरीर सिहर उठा—पिजरे की चिडिया की पुकार पर जगल की चिडिया ने जवाब दिया .

धीरे-धीरे वह आवाज पास आने लगी।

कुछ देर तक दोनो चिडियो की आवाज पास-पास सुनाई देती रही, फिर दोनो सुर मिलकर एक हो गए—अचानक एक सुर थम गया—सिर्फ पिजरे की चिडिया बोलती रही।

छनिया और सुरतिया दौड पडी—"चिडिया फँसी!" मै भी दौडा।

फदे मे पैर फँसाकर चिडिया छटपटा रही थी। फँसते ही उसकी बोलती बन्द हो गई थी—गजब हो गया! अपनी आँखो पर मुझे एत-बार नही हो रहा था।

सुरतिया ने चिडिया को हाथ पर उठा लिया—"देखिए बाबूजी! किस तरह से पाँव फँस गया है। देखा?"

मैने पूछा—"चिडियो का तू क्या करती है?"

उसने कहा—"बाबूजी इन्हे तिरासी रतनगज की हाट मे बेच आते हैं। दो पैसे में गुडगुडी और सात पैसे को पोंडकी।"

मैने कहा—"तो मेरे हाथ बेच, मै दाम दूँगा।"

उसने मुझे मुफ्त मे ही चिडिया दे दी। मैने लाख कोशिश की, मगर उसने पैसा लेना मजूर नही किया।

[चार]

आश्विन का महीना। एक दिन सबेरे-ही-सबेरे इस आशय की चिट्ठी मिली कि राजा दोबरू पन्ना का देहान्त हो गया—राजा-परिवार बडी मुसीबत मे है—अगर समय हो, तो एक बार मै वहाँ जाऊँ। पत्र जगरू पन्ना ने लिखा था—भानुमती के दादा ने।

मै उसी समय चल पडा और साँझ होने से कुछ पहले ही चकमकी टोला पहुँचा। राजा का बडा लडका और पोता मेरी अगवानी के लिए वहाँ तक आए थे। सुना कि गाय चराते हुए राजा दोबरू पन्ना गिर पडे थे और उनके घुटने मे चोट आई थी। घुटने की वही चोट उनकी मौत का कारण बनी।

राजा का मरना था कि महाजन आ धमका। उसने गाय-भैसो को अपने कब्जे मे कर लिया। रुपया चुकाए बगैर वह देने का नही। मुसीबत पर मुसीबत। कल नए राजा का अभिषेक होना चाहिए। उसमे भी रुपयो का खर्च था, मगर रुपया आए तो कहाँ से ? और महाजन अगर गाय-भैस हँका ले गया, तो राज-परिवार की हालत बदतर हो जायगी। उन्ही के दूध का घी बेचकर राज-परिवार का आधा खर्च चलता था। अब तो भूखों मरने की नौबत थी।

मैने महाजन को बुलवाया। बीरबलसिह उसका नाम था। देखा, वह मेरी एक भी सुनने को तैयार नही था। रुपया लिए बिना एक भी मवेशी को छोडना उसे कबूल न था। आदमी वह अच्छा नही लगा।

भानुमती आकर रोने लगी। वह अपने परदादे को बेहद प्यार करती थी। उनके रहते मानो सब पहाड की ओट मे थे। उन्होने आँखे बन्द की और ये सारी परेशानियाँ आ पडी। कहते-कहते भानुमती की आँखे

बरसती गई—थमने का नाम नही। बोली—"मेरे साथ चलिए, मै पहाड़ पैर से आपको उनकी कब्र दिखा लाऊँ। मेरा कही जी नही लग रहा है बाबूजी, यही इच्छा होती है कि उनकी कब्र के पास बैठी रहूँ।"

मैने कहा—"ठहर जाओ, पहले महाजन का कोई किनारा कर देखूँ, फिर जाऊँगा। मगर महाजन से कोई पटरी नही बैठी। खूँखार राजपूत, आरजू-मिन्नत सुनने वाला न था, मगर इतनी खातिर की कि तब तक के लिए मवेशियो को यही रहने देने को वह राजी हो गया। मगर बूँद भर भी दूध लेने-देने को तैयार नही हुआ। दो महीने के बाद उसका कर्ज चुकाने की गुजाइश किसे हो सकी थी, मगर यह बात पीछे बताऊँगा।

मैने देखा, भानुमती द्वार के सामने अकेली खडी है। बोली—"तीसरा पहर हो गया, इसके बाद वहाँ जाते न बनेगा—चलिए कब्र दिखा लाऊँ।"

वह अकेली मेरे साथ चल पडी, इससे मैने समझा कि भोली पहाडी बालिका मुझे अपने परिवार का परम मित्र और नितान्त अपना समझने लगी है। उसके इस सरल व्यवहार और बन्धुत्व ने मुझे मोह लिया।

उस बडी उपत्यका पर तीसरे पहर की छाया उतरी थी। भानुमती जल्दी-जल्दी चल रही थी, भीता हरिनी-जैसी। मैने कहा—"जरा धीरे चलो। अच्छा, यहाँ हरसिगार के फूल कहाँ है?"

हरसिगार का यहाँ नाम ही कुछ और होगा। मै उसे ठीक-ठीक समझा न सका। पहाड पर चढते हुए बडी दूर तक दीख रहा था। धनझरी की नीली पहाडियो ने भानुमती के देश को, राजहीन राजा दोबरू पन्ना के देश को मेखला की तरह घेर रक्खा था—दूर से हवा के झोके आ रहे थे।

भानुमती ने करीब आकर पूछा—"चढने मे तकलीफ हो रही है बाबूजी?"

—"नही। जरा धीरे-धीरे चलो। तकलीफ क्या होगी?"

कुछ दूर और चलकर बोली—"बाबा चल बसे, दुनिया मे मेरा और कोई नही रह गया बाबूजी—"

वह बच्चे-सी रुआसी होकर इतना बोली।

मुझे उसकी बात पर हँसी आई। बूढे परदादा ही तो मरे है उसके, और माँ नही है, बाकी पिता, भाई, दादी, दादा—सभी तो जीवित है; इतना बडा हँसता हुआ ससार। हजार हो, आखिर भानुमती एक स्त्री है, पुरुष की थोडी-सी सहानुभूति पाने और आदर छीनने की स्त्री-सुलभ प्रवृत्ति उसके लिए स्वाभाविक है।

वह बोली—"आप कभी-कभी आया करेगे बाबूजी, हम लोगो की खोज-खबर लिया करेगे, कहिए, आप भूल तो नही जायँगे?"

सभी जगह और सभी अवस्था मे स्त्रियाँ एक ही-सी होती है। यह वन-बालिका भी एक ही तत्त्व की बनी है।

मैंने कहा—"भूलने क्यो लगा—बीच-बीच मे जरूर ही आया करूँगा।"

उसने न जाने कैसे अभिमान के स्वर मे होठ फुला कर कहा—"हुँ, बगाल चले जाने पर, कलकत्ता पहुँच कर इस जगली देश की बात थोडे ही याद रहेगी—" जरा रुककर बोली—"हम लोगो की बात—मेरी बात ."

मैंने नेह-भरे स्वर मे कहा—"क्यो, याद नही थी? आइना तुम्हें नही मिला था? तुम्ही सोचो, याद थी या नही—"

खिला हुआ मुखडा लिए वह बोल उठी—"ओहहो, सचमुच ही आईना बडा सुन्दर है, मै कहना भूल ही गई थी—"

कब्रगाह पर जब पहुँचा, तब दिन ढल चुका था। दूर की पहाड की आड मे लाल होकर सूरज डूबने लगा था—कब दुबला चाँद उगकर आसन्न अवकार को दूर भगाएगा, वह स्थान मानो इसी के इन्तजार में चुप खडा था।

कब्र पर चढाने के लिए मैंने भानुमती को कुछ फूल लाने को कहा। कब्र पर फूल बिखेरना इधर के लोग नही जानते। मेरे उत्साह से वह पास ही कही से जंगली हरसिगार के फूल चुन लाई। हम दोनो ने दोबरू पन्ना की कब्र पर फूल बिखेर दिए।

ठीक इसी समय बरगद की डाल से सिल्ली का झुड डैने फडफडाता और बोलता हुआ उड गया, मानो भानुमती और राजा दोबरू पन्ना के सभी उपेक्षित पुरखे मेरे इस काम से सतुष्ट होकर एक स्वर से कह उठे हो—'साधु ! साधु ! ' क्योकि अनार्य राज-समाधि के प्रति आर्य-सतति द्वारा यही पहला सम्मान-निवेदन था ।

पंद्रहवाँ परिच्छेद

[एक]

एक बार मुझे महाजन धौताल साहू के आगे हाथ पसारना पडा। उस बार वसूली कम हुई और सरकारी कर के दस हजार रुपए चुकाने थे। बनवारीलाल पटवारी ने राय दी कि बाकी रुपए धौताल से कर्ज ले लीजिए। वह आपको कर्ज देने से हर्गिज इन्कार नही करेगा। वह मेरा रैयत नही था, सरकारी खासमहाल का बाशिदा था। उस पर अपना कोई जोर नही। ऐसे मे मेरी एक बात पर वह तीन हजार रुपए मुझे एक मुश्त कर्ज दे देगा, इस पर मुझे सन्देह था।

मगर गरज़ जैसी बुरी चीज कोई नही। एक दिन बनवारीलाल को साथ लेकर चुपचाप उसके यहाँ गया। चुपचाप इसलिए कि कचहरी मे किसी पर मैं यह जाहिर नही होने देना चाहता था कि कर्ज़ के रुपयो से कर चुकाना पड रहा है।

एक सँकरे मुहल्ले मे उसका घर था। एक बडा-सा घर। सामने ही कुछ खटिएं बिछी थी। वह आँगन के एक ओर तम्बाखू के पौधो मे निडानी लगा रहा था। हमे देखकर जल्दी-जल्दी आया—कहाँ बैठाए, क्या करे, कुछ समझ नही पा रहा था। जरा देर के लिए जैसे किकर्त्तव्य विमूढ हो पडा।

—' अरे, इस नाचीज के घर हुजूर के कदम पडे ! आइए, बैठिए हुजूर! आइए तहसीलदार साहब।"

उसके घर कोई नौकर नही दिखाई पडा। हट्टा-कट्टा-सा उसका एक पोता था, हम लोगो के लिए वही दौड-धूप करने लगा। घर-द्वार, सरो-सामान देखकर कह कौन सकता है कि यह किसी लखपती का घर है।

उसके पोते रमलखिया ने मेरे घोडे की जीन आदि खोल कर उसे बाँधा। पाँव धोने के लिए पानी ले आया। ताड के एक पखे मे धौताल साहू खुद हम पर हवा करने लगा। साहूजी की एक पोती तम्बाखू भरने गई। मै तो मुसीबत मे पड गया। बोला—"इतने तकल्लुफ करने की जरूरत नही है साहूजी, मेरे पास चुरुट है, तम्बाकू लाने की दरकार नही।

चाहे वह आदर कैसा ही कर रहा हो , पर असली बात कहने मे हिचक हो रही थी। कैसे कहूँ ?

धौताल बोला—"इधर क्या चिडिया के शिकार को आए थे ?"

—"नही-नही, तुम्हारे ही पास आया था।"

—"मेरे पास ? ऐसी क्या जरूरत आ पडी हुजूर ? "

—"सरकारी कर चुकाना है, रुपए कम है। साढे तीन हजार रुपयों की मुझे सख्त जरूरत है, इसीलिए आया हूँ।"

कहना ही था, इसलिए किसी तरह कह गया।

उसने जरा भी आगा-पीछा किए बिना कहा—"इसके लिए इतनी फिक्र क्या हुजूर ? हो जायगा इन्तजाम, मगर इसके लिए खुद इतनी तकलीफ उठाकर आने की क्या जरूरत थी ? एक पुर्जा लिखकर तहसील-दार साहब की मार्फत भेज देने से ही हुक्म की तामील हो जाती।"

सोचा, अब असली बात कह देनी चाहिए। रुपए मुझे अपनी जिम्मेदारी पर लेने है, क्योकि जमीदार के नाम पर रुपए लेने का आम-मुख्तार नामा मेरे पास नही है। इस पर भी धौताल रुपया देने को तैयार होगा ? परदेसी ठहरा। मुझे जायदाद ही क्या है यहाँ कि जिस पर मुझे रुपये दिए जायँ। सकोच से मैंने यह बात बताई—"साहूजी, लिखा-पढी मेरे ही नाम से होगी, जमीदार के नाम से नही।"

उसने ऐसे स्वर मे कहा, मानो उसे अचरज हुआ हो—लिखा-पढी किस बात की ? थोडे-से रुपयो की जरूरत पडी है, उसके लिए आप मेरे घर आए है। आने की तो जरूरत ही नही थी, आदेश भेज देना ही

काफी था, और जब खुद आ ही गए, तो लिखा-पढी क्या ? आप रुपए ले जाइए । वसूली होने पर मुझे भेज दीजिएगा ।"

मैंने कहा—"मै हैंड नोट लिखे देता हू, टिकट साथ ले आया हूँ, या अपनी पक्की बही मे दस्तखत करा लो ।"

उसने हाथ जोड कर कहा—"माफ करे हुजूर, यह जिक्र ही न करे। इससे मुझे तकलीफ होगी । लिखा-पढी की कोई जरूरत ही नही, रुपए आप ले जाइए ।"

मैंने बहुतेरा कहा, उसने एक न सुनी । नोट का बडल अन्दर से उसने ला दिया । बोला—"लेकिन एक अर्ज है हुजूर ।"

—"वह क्या ?"

—"इस समय आपको जाने नही दूँगा । सामान लाए देता हूँ । पका-चुका कर खाले, तब जाएँ ।"

मैंने फिर इन्कार किया , पर एक न सुनी गई । पटवारी से पूछा—"बनवारीलाल, पका लोगे ? मुझ से तो नही होगा ।"

बनवारी बोला—"न पकाने से तो काम न चलेगा, आपको पकाना पडेगा । मेरे हाथ की रसोई खाने से आपकी बदनामी होगी । मै मदद में रहूँगा ।"

धौताल का पोता ढेरो सामान ले आया । दादा-पोता मिलकर मुझे रसोई के बारे मे तरह-तरह के उपदेश देने लगे ।

धौताल के न रहने पर उसके पोते ने कहा—"ये हमारे दादाजी जो है हुजूर, सब डुबो देंगे । बिना सूद, बिना बँधकी और बिना लिखा-पढी के इतने लोगो को इन्होने रुपए दिए है कि अब अदा होना मुश्किल है । सब पर एतबार कर लेते है, जो कि बहुतो ने अँगूठा भी दिखा दिया है । घर जाकर रुपए कर्ज दे आते है ।"

गाँव का एक और भी आदमी बैठा था । उसने कहा—"आपद-विपद मे हाथ फैलाने पर आज तक किसी को साहूजी के यहाँ से खाली हाथ लौटते नही देखा । पुराने युग के आदमी है। इतने बडे महाजन

है, लेकिन कभी किसी पर नालिश नही की आज तक। अदालत जाते हुए डर लगता है। बडे डरपोक और सज्जन है।"

रुपए लौटाने मे मुझे छै महीने लग गए। इन छै महीनो के अन्दर धौताल हमारे महाल की सीमा से भी इसलिए नही गुजरा कि कही मै यह न सोच बैठूं, वह रुपयो के तकाजे मे इधर आया है। सज्जन और किसे कहते हैं।

[दो]

साल-भर हो गया, राखाल बाबू के यहाँ नही जा पाया। कटनी के मेले के बाद एक रोज उनके यहाँ गया। मुझे देखकर उनकी स्त्री बडी खुश हुई। बोली—"अब आप आते क्यो नही भैया, खोज-पूछ भी नही करते—बन्धु-बाधवहीन जगह मे बगाली के दर्शन होना कठिन ही है—तिस पर अपनी जो हालत है—"

और वह चुपचाप रोने लगी।

मैने एक बार चारो तरफ निगाह दौडाई। घर-द्वार की हालत तो पहले ही जैसी गई-बीती थी, पर अब वैसी बेतरतीब न थी। बडा लडका वही मिस्त्री का काम करता था, मामूली-सा कुछ मिल जाता, इसी से किसी तरह गिरस्ती चलती।

मैने दीदी से कहा—"छोटे लडके को मामा के पास काशी भेज दे, कुछ लिख-पढ लेगा।"

उन्होने कहा—"अपना मामा है कहाँ? ऐसी मुसीबत पडी, दो-तीन खत लिखे, महज दस रुपए भेजकर जो चुप लगा बैठे है, सो डेढ साल हो गए, कोई खबर ही नही ली। उससे तो ये मकई काटे, भैंस चराएँ, यही अच्छा है, ऐसे मामा के दरवाजे पर जाना अच्छा नही।"

मुझे तुरत लौटना था, मगर दीदी ने आने नही दिया। वे मुझे कुछ बना कर खिलाना चाहती थी—बिना खिलाए नही जाने देने की। लाचारी मे इतजार करना पडा। उन्होने मकई के सत्तू मे घी और चीनी

मिलाकर एक तरह का लड्डू बनाया और कुछ हलुआ तैयार करके मुझे खाने को दिया। गरीब के घर मे जितना आदर-सत्कार मभव है, उसमे दीदी ने कोई कोर-कसर नही रक्खी।

बोली—"भादो की मकई मैने आपके लिए मॅजो कर रक्खी थी, क्योकि आप भुट्टा खाना पसन्द करते है।"

मैने पूछा—"मकई कहाँ मिली ? खरीदी थी ?"

—नही, खेत से चुनकर लाई थी। फसल कट जाने पर किसान जो टूटे-फूटे पेड छोड जाते है, गाॅव की दूसरी औरतो के माथ उन्हे मै भी बीनने जाती हूॅ। उस समय रोज एक-दो टोकरी चुन कर ले आती थी।"

अवाक् होकर मैने पूछा—"आप खेत मे मकई चुनने जाती थी ?"

—'हाँ, रात को जाया करती थी, किमी को पता भी नही होता। गाँव की कितनी ही औरते जाती है। भादो के महीने मे दस टोकरी से कम तो नही लाई हूॅगी भुट्टा।"

बडी तकलीफ हुई। गरीब गगोतिने इधर यह काम किया करती है। राजपूत-छत्री औरते गरीब ही क्यो न हो, खेतो मे फमल चुनने नही जाती। अपनी तरफ की किसी औरत को ऐसा करते मुनने से जी मे चोट लग आती। इन अपढ गगोतो के गाॅव मे रहकर दीदी ने ऐसा छोटा काम करना भी सीख लिया—इसमे शक नही कि उनकी गरीबी भी इसका एक प्रधान कारण थी। खोल कर कुछ कह नही सका, शायद उन्हे दु ख हो। यह गरीब बगाली परिवार बगाल की शिक्षा-सस्कृति का कुछ भी न पा सका, कुछ वर्षो मे यह गगोतो-जैसा हो जायगा—क्या भाषा मे, क्या चाल-चलन मे और क्या हाव-भाव मे। उम राह पर अब भी वह बहुत दूर बढ चुका है।

रेलवे स्टेशन से बहुत दूर घनघोर गाॅव मे मैने और भी ऐसे एकाध बगाली परिवार देखे है। ऐसे परिवारो की लडकियो का ब्याह करना कितना दुष्कर काम है, कहा नही जा सकता। एक और भी ऐसे बगाली ब्राह्मण परिवार को मै जानता था—वे लोग दक्खिनी बिहार के एक गॅवई

गाँव मे रहते थे । बँडी ही गई-बीती हालत थी। घर मे तीन-तीन लड-कियाँ, बडी की उम्र इक्कीस-बाईस, मझली की करीब बीस और छोटी की भी सत्रह । इनमे से एक की भी शादी नही हो सकी थी, होने का कोई उपाय भी न था—वैसे इलाके मे जात-गोत के पात्र का प्रबन्ध करना बडा ही कठिन काम था ।

बाईस साल वाली लडकी देखने मे सुन्दर थी—बगला का एक अक्षर भी उसे नही आता था—आकृति और प्रकृति मे ठेठ देहाती बिहारी लडकी—खेत से उडद की गठरी सिर पर उठा लाती, गेहूँ के भूसे का बोझा ढोया करती ।

नाम भी था ध्रुवा—पूरा बिहारी नाम ।

उसके पिता यहाँ होमियोपैथी डाक्टरी करने आए थे । फिर जगह-जमीन लेकर खेती-बारी भी करने लगे । डाक्टर साहब चल बसे । बँडा लडका खेती-गिरस्ती करने लगा । वयस्का बहनो की शादी की उसने कोशिश तो की , पर कर नही पाया । दहेज देने की उसमे हिम्मत नही थी ।

ध्रुवा बिलकुल कपाल कुडला थी । मुझे भैया कह कर पुकारती । बहुत ही ताकतवर, आटा और सत्तू पीसने, बोझा ढोने और गाय-भैस चराने मे कुशल—गिरस्ती के काम-धधो मे चतुर । उसके बडे भाई ने यहाँ तक तै किया था कि अगर वैसा कोई पात्र मिल जाय, तो वे उसी एक को तीनो लडकियाँ ब्याह देंगे और शायद उन बहनो को भी इस पर एतराज न था ।

मैने मँझली लडकी जवा से पूछा था—"बगाल देखने की इच्छा होती है ?"

उसने जवाब दिया था—"नही भैया, वहाँ केरो पानी बड्डी नरम छै—"

सुना था, ध्रुवा को शादी करने की बडी इच्छा थी । शायद उसने स्वय ही किसी से कहा था कि उससे जो ब्याह करेगा, उसे कभी गाय दूहने

वाले और सत्तू पीसने वाली को नही बुलाना पडेगा—वह अकेली ही पाँच सेर सत्तू पीस सकती है ।

हाय री अभागिन बगालिन कुमारी ! इतने वर्षों के बाद निश्चय ही वह आज भी गगोतिन की तरह अपने भैया की गिरस्ती सँवार रही होगी, जौ कूटती होगी और खेत से उडद का बोझा सिर पर ढोकर लाती होगी—बिना दहेज लिए उस देहाती और उतनी बडी लडकी को मगल शख और उलूध्वनि* के बीच पालकी पर ब्याह करके अपने घर ले भी कौन गया होगा ।

शान्त मुक्त प्रातर मे जब साँझ उतरती है, तब दूर पहाड पर जो पतली पगडडी जगल की माँग-सी दिखाई पडती है, शायद हो कि आज भी व्यर्थ यौवना गरीब घ्रुवा उसी राह मे इतने दिनो के बाद भी सिर पर लकडी का बोझा लिए उसी तरह उतरती है—यह तस्वीर मैंने कितनी ही बार अपनी कल्पना की आँखो से देखी है—और ठीक इसी तरह कल्पना मे देखा है अपनी दीदी, राखाल बाबू की स्त्री को—शायद आज भी वह बूढी गगोतिनो के समान रात को सबकी आँख बचा कर खेत-खलिहानो मे टोकरी लिए भुट्टा बटोरती फिर रही है ।

[तीन]

भानुमती के यहाँ से लौटने के बाद उस बार सावन के बीचो-बीच जोरो की बारिश शुरू हुई । रात-दिन बारिश और बारिश, घने कजरारे मेघो से आसमान ढँक गया । नाढा और फुलकिया बैहार की दिगत रेखा वर्षा से धुँधली हो आई । महालिखा रूप का पहाड कही खो गया—मोहन-पुरा जगल का ऊपरी भाग कभी धुँधला-सा दीखता, कभी नही । सुना, पूरब मे कोसी और दक्खिन मे कारो नदी मे बाढ आ गई है ।

मीलो दूर तक खडे कास और झाऊ के जगल वर्षा के पानी से भीग रहे थे , दफ्तर के बरामदे पर कुर्सी डाले बैठा-बैठा मै देखा करता,

---

* बगाल मे ब्याह के मौके पर यह शुभ काम अनिवार्य है ।

सामने कसाल के जगल मे झाऊ की डाल पर बैठी सगीविहीन एक पौंडकी भीगा करती है, घटो एक-सी बैठी, कभी-कभी डैने झाड कर, फैला कर पानी को रोकने की कोशिश करती, कभी यो ही बैठी रहती।

ऐसे दिनो मे कमरे मे बैठ कर समय काटना मेरे लिए असभव हो उठता। मै घोडा कसवा लेता और बाहर निकल पडता। उस मुक्ति के क्या कहने, जीवन का कैसा उद्दाम आनन्द! चारो तरफ हरियाली का कैसा लहराता समुद्र—वर्षा के आगमन से कसाल के जगल मे नवीन और सतेज कोपले उभर आई—जहाँ तक भी निगाह जाती, इधर नाढा बैहार और उधर मोहनपुरा जगल की अस्पष्ट सीमा-रेखा तक हरियाली का वैसा ही अपार सागर—काजल काले मेघो की छाया मे ओदी हवा के झोके मे मरकत श्याम तृणभूमि पर लहरो की लीला और इस अथाह-अकूल सागर मे मै जैसे एक अकेला नाविक—जाने किस अजाने बन्दरगाह को निकला हूँ।

मेघ की श्यामल छाया वाली उस खुली तृणभूमि मे मै घोडे को भगाता हुआ मीलो जाता। कभी-कभी सरस्वती-कुड के जगल मे भी गया। प्रकृति की वह अनोखी सौन्दर्य-भूमि युगलप्रसाद के लगाए तरह-तरह के फूल और लताओ से और भी सुन्दर हो उठी है। यह मैं बिना किसी हिचक के कह सकता हूँ कि सरस्वती-कुड और उसके किनारे के जगल-जैसी सौन्दर्य-भूमि सारे भारतवर्ष मे अधिक नही है। बरसात मे कुड के किनारे-किनारे रेड कैस्पियन का मेला—वाटर क्रोफुट के बडे-बडे नीलाभ श्वेत फूलो से भर गया है तमाम! अभी उस दिन भी युगलप्रसाद कोई वन-बेल लाकर यहाँ लगा गया है। आजमाबाद कचहरी मे वह मुहर्रिर का काम जरूर करता है, पर उसका मन इस कुड के लता-कुज और फूलो पर ही लगा रहता है।

कुड से निकलते ही फिर जगल, फिर हरा-भरा मैदान—वन के ऊपर घने नीले बादलो का जमघट—पानी का सारा बोझ उतार कर

रिक्त होने के पहले ही दौडते आए नए मेघ-पुज—एक तरफ के आकाश मे एक अजीब तरह का नीलापन—उसमे डूबती किरणो से रग कर मेघ का एक टुकडा वर्हिविश्व के दिगत मे जाने किस अजाने पर्वत-शिखर-सा प्रतीयमान ।

साँझ हो आती । ओर-छोरहीन पुलकिया बैहार मे सियार बोल उठते । एक तो मेघ का अन्धकार, ऊपर से साँझ का घिरता आता अँधेरा—मैं घोडे को कचहरी की ओर मोड देता ।

कितनी ही बार इस वर्षा थमी मेघ जमी साँझ के इस मुक्त प्रातर की सीमा-हीनता मे मैंने जाने किस देवता के तो स्वप्न देखे—ये बादल, यह सध्या, ये जगल, चीखते हुए सियारो की टोली, सरस्वती-कुड के फूल, मची, राजू पाडे, भानुमती, महालिखा रूप का पहाड, वह गरीब गोड-परिवार, आकाश, व्योम—ये सभी एक दिन उस देवता की विराट् कल्पना मे बीज रूप मे रहे थे, उन्ही के आशीर्वाद से आज की इस नव-नील नीरद माला के समान सारे विश्व को अमृत की धारा से अभिसिचित करते है—वर्षा की यह साँझ उन्ही का प्रकाश है, यह उन्मुक्त जीवन का आनन्द उन्ही की वाणी है, जो वाणी कि मनुष्य को सचेतन किए देती है । उस देवता से डरने को कोई बात नही—इस पुलकिया बैहार से भी, उस मेघो से भरे विशाल आकाश से भी असीम, अनन्त है उनका प्रेम और आशीर्वाद । जो जितना ही हीन, जितना ही तुच्छ है, उस विराट् देवता का अदेखा प्रसाद और दया उस पर उतनी ही ज्यादा होती है ।

जिस देवता का स्वप्न मेरे मन मे जगता था, वे प्रवीण विचारक, न्याय और दड के कर्त्ता, विज्ञ और बहुदर्शीय अथवा अव्यय, अक्षय जैसे कठिन दार्शनिकता के आवरण वाले ही न थे, बल्कि नाढा बैहार या आज-माबाद के खुले मैदान की गोधूलि-वेला मे रक्त मेघपुज, चाँदनी-स्नात सूने प्रातर को निहार कर जी मे होता कि वही प्रेम और रोमास है, कविता और सौन्दर्य है, शिल्प और भावुकता है—वे प्राणो से प्यार करते है, सुकुमार कलावृत्ति से सृष्टि करते है, प्रियजनो की प्रीति के लिए सब प्रकार

से अपने को निःशेष कर देते हैं—फिर विराट् वैज्ञानिक की क्षमता और दृष्टि से ग्रह-नक्षत्र-नीहारिका की सृष्टि करते हैं ।

[चार]

सावन के ऐसे ही एक वर्षामुखर दिन मे इसलामपुर कचहरी मे धतुरिया हाजिर हो गया ।

बहुत दिनो के बाद उसे देख कर मुझे खुशी हुई ।

—"क्या हाल है धतुरिया तुम्हारे ? मजे मे तो है ?"

जिस छोटी-सी पोटली मे उसकी सारी सासारिक सपत्ति थी, उस पोटली को उतार कर उसने मुझे नमस्कार किया और कहा—"जी बाबूजी, नाच दिखाने आया हूं । बडे कष्ट मे हूँ इन दिनो—महीना बीत गया, कही नाच का डौल नही बैठा । सोचा, आपकी सेवा मे पहुँचू, यहाँ निराश न होना पडेगा । इधर और भी अच्छे-अच्छे नाच सीखे है।"

धतुरिया बडा दुबला हो गया था। तकलीफ हुई देखकर।

—"कुछ खायगा धतुरिया ?"

लजाकर गर्दन हिलाते हुए उसने 'हाँ' की।

मैंने महाराज को बुलाकर उसे कुछ खाना देने को कहा। भात तो उस समय नही था, उसने उसे दूध और चूडा लाकर दिया। वह जिस तरह खाने लगा, देख कर लगा, कम-से-कम दो दिन से उसे भोजन भी नही नसीब हुआ है।

साँझ से पहले धतुरिया ने अपना नाच दिखाया। देखने के लिए कचहरी के प्रागण मे बहुत-से लोग जुट गए। नाच मे उसने पहले से ज्यादा तरक्की की थी। उसमे सच्चे कलाकार का दर्द और साधना थी। मैंने अपनी तरफ से कुछ दिया, कुछ दूसरे लोगो के चदे से मिला। मगर इतने से उसका कितने दिन निर्वाह चलेगा ?

दूसरे दिन सबेरे वह मुझ से जाने को इजाजत माँगने आया।

—"बाबूजी, आप कलकत्ता कब जायेंगे ?"

—"क्यो, क्या बात है ?"

—"मुझे ले चलेगे कलकत्ता ? मैने उस बार जो कहा था ?"

—"अच्छा, तू इस वक्त कहाँ जायगा ? खा-पी तो ले, बाद मे कही जाना।"

—"जी, मुझे जाने दे। झल्लूटोला मे एक भूमिहार ब्राह्मण के यहाँ शादी है। शायद नाच का ठिकाना हो जाय। इसी कोशिश मे जा रहा हूँ। यहाँ से आठ कोस है। अभी से चलूँगा, तब कही शाम—शाम तक पहुँच पाऊँगा।"

धतुरिया को जाने देने की इजाजत देने को जी नही चाह रहा था। मैने पूछा—"अगर तुझे थोडी-सी जमीन दूँ, तो रहेगा यहाँ ? खेती-बारी करना—रह जा।"

देखा, धतुरिया मटुकनाथ पडित को भा गया है। उसकी इच्छा, उसे अपनी पाठशाला मे दाखिल करने को थी। बोला—"आप इससे कहे हुजूर, दो साल मे मुग्धबोध खत्म करा दूँगा। यह रह जाय यही।"

जमीन की चर्चा पर धतुरिया बोला—"बाबूजी, आप मेरे बडे भाई के समान है, मुझ पर आपकी बडी कृपा है, लेकिन यह खेती भला मुझसे हो सकती है ? मेरा जरा भी जी नही लगेगा। नाच मे मुझे खुशी होती है, दूसरा काम अच्छा नही लगता।"

—"समय-समय पर नाचा भी करना। आखिर जमीन के साथ तुझे जजीर से थोडे ही बाँध दिया जायगा ?"

धतुरिया खुश हो गया। बोला—"आपकी आज्ञा जैसी होगी, करूँगा। आप मुझे बडे भले लगते है। झल्लूटोला से लौटूँ तो यही आऊँगा।"

मटुकनाथ ने कहा—"उसी समय तुम्हे पाठशाला में भी भर्त्ती कर लूँगा। न हो, तो रात को आकर पढा करना। मूरख रहना भी कोई काम है, कुछ व्याकरण, कुछ काव्य का ज्ञान जरूरी है।"

उसके बाद धतुरिया ने नृत्य-कला पर जाने क्या-क्या कहा, मै ज्यादा समझ न सका। पूर्णियाँ के 'हो-हो' नाच की शैली से धरमपुर के उसी

नाच का कहाँ फर्क पडता है, उसने हाथ की कोई नई मुद्रा निकाली है? आदि-आदि।

—"बाबूजी, बलिया जिले मे छठ-त्योहार के समय आपने औरतो का नाच देखा है? उस नाच से छोकडा नाच का एक बात मे बडा सादृश्य है। आपके यहाँ कैसा नाच होता है?"

कटनी के मेले मे पिछले साल मैंने जो माखनचोर नटुआ का नाच देखा था, उसके बारे मे बताया। हँसकर धतुरिया ने कहा—"वह बेकार है बाबूजी, मुगेर का गँवई नाच है—गगोतो को फुसलाने का नाच। उसमे खास बात नही—सीधा है, बिलकुल आसान।"

मैंने कहा—"तू जानता है? दिखा तो नाच कर।"

धतुरिया अपने फन मे पक्का था। सचमुच ही वह 'माखनचोर नटुआ' का नाच बढिया नाच गया—वैसा ही लडको-सा रोना, चुराए मक्खन को बाँटने की वही अदा—बिलकुल वही। इसे वह फब भी गया खूब, क्योकि यह बालक था।"

धतुरिया चला गया। जाते समय बोला—"मुझ पर जब आपने इतनी दया ही दिखाई है, तो एक बार कलकत्ता ही क्यो नही ले चलते बाबूजी? वहाँ नाच की कद्र है।"

धतुरिया से यही मेरी आखिरी मुलाकात थी।

दो महीने बाद कटोरिया स्टेशन के पास रेलवे लाइन पर एक बालक की लाश पाई गई—सबने पहचाना, वह लाश नटुआ बालक धतुरिया की थी। यह आत्महत्या थी या दुर्घटना, नही कह सकता। अगर आत्महत्या थी, तो किस दुख से उसने ऐसा किया?

दो साल इस इलाके मे रहते हुए जितने लोगो के सपर्क मे मैं आया, उन सब मे धतुरिया की प्रकृति बिलकुल अलग थी। उसमें जो एक निर्लोभ, सदा चचल, सदानन्द, निर्वैषयिक सच्चे कलाकार के मन का परिचय पाया था, वह इस जगली इलाके ही मे क्यो, सभ्य इलाके के मनुष्यो मे भी सुलभ नही!

[पाँच]

और भी तीन साल निकल गए।

नाढा बैहार और लवटोलिया का सारा जगल-महाल बन्दोबस्त के लिए दे दिया गया। पहले-सा जगल अब कही नही रहा। वर्षों मे प्रकृति ने एकात निर्जन मे जिन कुजो की रचना की थी, कितने लता-वितान, कितनी स्वप्न-भूमि सजोई थी—मजदूरो के कठोर हाथो से सब गायब हो गए। जो पचास साल मे बन कर तैयार हुआ था—एक दिन मे वह नष्ट हो गया। अब कही ऐसा दूर विस्तृत प्रातर नही रह गया, जहाँ चाँदनी रात मे माया परियाँ उतरे, दयालु टाडबारो हाथ उठाकर जगली भैंसो को मरने से बचाए।

नाढा बैहार का तो नाम ही उठ गया, लवटोलिया अब महज एक बस्ती रह गई। जिधर आँख जाती है, फूँस के छप्पर है—कसाल की छौनीवाले घर है—गदे, बदसूरत। घिचपिच घनी आबादी—टोले-टोले का विभाजन—खाली जगहो मे खेत। जरा-से खेत के चारो ओर काँटो का घेरा। धरती के मुक्तरूप को काट-काट कर टुकडो मे बाँट कर लोगो ने बर्बाद कर दिया।

एक ही जगह बच रही थी—सरस्वती-कुड की वन-भूमि।

नौकरी के रहते हुए, मालिक के स्वार्थ के नाते सारी जमीनो को रैयतो मे बाँट जरूर दिया, मगर युगलप्रसाद के हाथो से सँवारी सरस्वती-कुड की उस वन-भूमि को व्यवस्थित नही कर सका। बार-बार जाने कितने लोग कुड के किनारे की जमीन के लिए आए, ज्यादा सलामी देने को भी तैयार हुए, क्योकि एक तो वह जमीन ही काफी उपजाऊ थी, दूसरे पास मे पानी रहने से मकई आदि ज्यादा होने की गुजाइश थी, मगर मै किसी भी तरह उस जमीन की नाप-जोख करने को राजी न हुआ।

मगर उसे और कितने दिनो तक बचा पाऊँगा। सदर के तकाजो के मारे नाक मे दम। क्या वजह है कि मै कुड के पास की जमीन में

देर लगा रहा हूँ ? यह-वह कारण बताकर अब तक तो उसे रक्खा , पर अब उपाय नही रह गया था। मनुष्य के लोभ की हद नही, मै जानता हूँ कि दो भुट्टो और कट्ठा-पर चीना की फसल के लिए वैसी स्वप्न-भूमि को नष्ट करते उन्हे हिचक नही होगी। खासकर इधर के लोग तो पेड-पौधो की सुन्दरता को जानते ही नही, मनोरम भूमि की महिमा को देखने की आँखे ही नही है—वे तो खा-पीकर पशु की तरह जीना ही जानते है। और कोई देश होता, तो ऐसे स्थानो को सौन्दर्य-पिपासु प्रकृति-रसिक लोगो के लिए बचा कर रखता—जैसा कि कैलिफोर्निया मे योसेमाइ नैशनल पार्क रक्खा गया है। दक्खिन अफ्रीका मे जैसा कि क्रूगर नैशनल पार्क है—बेलजियन कागो मे पार्क नैशनल अल्बर्ट है। हमारे जमीदार वह लैडस्कोप नही समझने के, ये तो जानते है सलामी, मालगुजारी, अदाइरशाल, हस्तबुद।

जन्माधो के ऐसे देश मे, नही जानता, युगलप्रसाद ने कैसे जन्म ले लिया—केवल उसी के नाते कुड की वन-भूमि को मै आज तक बचाता चला आया हूँ।

मगर और कब तक ?

खैर, अब मेरा भी काम समाप्त हो गया।

तीन साल से बगाल नही गया, वहाँ के लिए कभी-कभी जी बडा मचल पडता। मानो सारा बगाल ही मेरा घर हो—तरुणी कल्याणी बहुएँ जहाँ अपने हाथो साँझ की बाती जलाती है—यहाँ-जैसा उदास और दरिद्री जगल नही, जिसे नारी के हाथो का स्पर्श ही नसीब नही।

क्यो तो मन मे आनन्द की बाढ-सी आ गई, पता नही। चाँदनी रात थी—घोडा कसा और सरस्वती-कुड की ओर चल पडा। नाढा बैहार और लवटोलिया का जगल खत्म हो आया था, जगल की शोभा और निर्जनता जो थोडी-सी बच रही थी, वह सरस्वती-कुड के ही किनारे। मुझे लगा, इस आकस्मिक आनन्द को उपभोग करने की वही एक जगह रही है, वही इसकी उपयुक्त पृष्ठभूमि है।

चाँदनी मे कुड का पानी झलमला रहा था, और केवल झलमला ही नही रहा था, बल्कि लहर-लहर पर चाँदनी मानो टूटी पड रही थी। निस्तब्ध पेडो की भीड कुड के तीन तरफ खडी, जगली लाल बत्तखो की काकली, जगली हरसिगार की खुशबू—जेठ का महीना था , पर हर-सिगार यहाँ बारहो महीने खिलते—

कुछ देर तक कुड के किनारे घोडे पर इधर-से-उधर घूमता रहा। पानी में कमल खिले थे, किनारे की ओर वाटरक्रोफुट और युगलप्रसाद के लाए हुए स्पाइडर लिली की झाडियाँ फैली थी। कितने दिनो के बाद अपने घर जा रहा हूँ, इस वनवास से मुक्ति मिलेगी, वहाँ बगाली स्त्री के हाथो का भोजन मिलेगा, कलकत्ता मे एकाध दिन थिएटर-बाइस्कोप देखूँगा, कितने दिनो के बाद बधु-बाधवो से फिर भेट होगी!

धीरे-धीरे उस अनुभूत आनन्द की बाढ मेरे मन के तटो को प्लावित करती हुई हिलोरे लेने लगी। अद्भुत योगायोग—इतने दिनो के बाद देश लौटना, सरस्वती-कुड का चाँदनी से चमकता हुआ पानी और फूलो की शोभा, जगली हरसिगार की चाँदनी से धुली भीनी महक, शात स्तब्धता, अच्छे घोडे की कैटव चाल और हू-हू करती हुई हवा—सब मिलकर एक सपना! सपना! आनन्द का गाढा नशा। जैसे मै यौवनोन्मत्त देवता होऊँ—बाधा-बधनहीन गति से समय की सीमा को पार कर रहा हूँ—यह सफर ही मानो मेरे अदृष्ट की विजयलिपि, मेरा सौभाग्य, मेरे प्रति किसी प्रसन्न देवता का आशीर्वाद हो!

शायद फिर लौट न सकूँ—वहाँ जाकर मर भी तो सकता हूँ। सर-स्वती-कुड बिदा! अलविदा किनारे की तरु पक्तियो! अलविदा चन्द्रा-लोकित वन! कोलाहल मुखर कलकत्ता के राजपथ पर खडे-खडे तुम लोगों की याद आयगी—जीवन की वीणा की हल्की झकार की नाईं—याद आयगी। युगलप्रसाद के लाए हुए पेडो की बात, किनारे के कमल और स्पाइडर लिली का यह वन, तुम्हा इस जगल की घनी डाल पर सूने मध्याह्न मे पोडकी की पुकार, अस्त मेघो की छाया से रँगी

हुई मैना कॉटा की डाले—तुम्हारी नीली जलराशि के ऊपर के नील गगन मे उडती हुई सिल्ली और लाल बत्तखो की पक्ति—किनारे के कीचड पर हिरनौटे के पॉव के निाशान—सूनापन, निर्जनता! अलविदा सरस्वती-कुड!

लौटते वक्त कुड से एक मील के फासले पर देखा कि जगल काट कर घर बसाए गए है। इसका नाम नया लवटोलिया पडा है—जैसा न्यू साउथ वेल्स या न्यू यार्क। जगल की लकडियाँ काट कर (पास मे बडा जगल नही था, इसलिए लकडियाँ सरस्वती-कुड के ही जगल से लाई गई होगी।) नए परिवार ने घास की छौनी डाल कर कुछ छोटे-छोटे झोपडे बाँधे है। उसी की ओदी जमीन पर नारियल या सरसो के तेल की गर्दन टूटी बोतल, घुडकता हुआ एक काला-कलूटा बच्चा, मिहोडे की बारीक डालो से बनी टोकरी, मोटा चाँदी का अनत पहने यक्ष-जैसी काली हट्टी-कट्टी बहू, एकाध पीतल के लोटे और थालियाँ और कुछ हँसिए, खती, कुदाली—इन्ही चीजो से इनकी गिरस्ती चलती है। न केवल न्यू लवटोलिया मे, बल्कि इस्माइलपुर और नाढा बैहार मे तमाम न जाने कहाँ से उजड कर आए हुए लोग बस गए है, न तो उनके बाप-दादो का घर है, न उन्हे गाँव या घर की ममता है, न ही है अडोसी-पडोसी का नाता नेह—आज इस्माइलपुर के जगल मे तो कल मुगेर के चौर मे और परसो जयती पहाड की तराई मे—जहाँ देखो, वही, तमाम उनके घर।

जानी-पहचानी-सी आवाज मिली। देखा, ऐसे ही एक गृहस्थ के घर बैठ कर राजू पाडेय धर्मतत्त्व की चर्चा कर रहा है। मै घोडे से उतरा। सबने खातिर से मुझे बिठाया। राजू से पूछने पर पता चला, वह इलाज के सिलसिले मे वहाँ गया था। फीस मे चार कट्ठा जौ और आठ पैसे मिले। इसी मे उसकी खुशी की सीमा न थी—बैठ कर धर्मतत्त्व की आलोचना मे व्यस्त हो गया था।

मुझसे बोला—"बैठिए बाबूजी, एक बात का निबटारा कर दीजिए

आप। अच्छा, धरती का कही अन्त है ? मैने तो कहा, जैसे आकाश का अन्त नही, वैसे ही धरती का भी अन्त नही। ठीक है न बाबूजी ?"

मुझे क्या पता था कि टहलने के सिलसिले मे ऐसे पेचीदे मसले का सामना भी करना पडेगा। यह तो खबर थी कि राजू का दिमाग बराबर ऐसे ही जटिल तत्त्वो मे उलझा रहता है और उन समस्याओ का हल करने मे वह अपने मोलिक चितन का परिचय बराबर दिया करता है, जैसे, इन्द्रधनुष दीमक की टीले से उगता है, नक्षत्र यम के अनुचर है, वे यम के आदेश से इस बात की छान-बीन करते है कि आदमियो की सख्या किस अनुपात मे बढ रही है। आदि-आदि।

धरती के बारे मे अपनी जो जानकारी थी, मैने बताई। राजू ने पूछा—"अच्छा, सूरज पूरब मे क्यो उगता है और पश्चिम मे क्यो डूबता है ? सूरज किस सागर से उगता और किस सागर मे डूबता है, यह आज तक कोई ठीक-ठीक क्यो नही बता सका है ? किया है इसका निराकरण ? राजू ने सस्कृत पढी थी, निराकरण शब्द के व्यवहार से गगोते और उनके परिवार के लोग प्रशसा-भरी मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे और यह भी सोचा कि अग्रेजीदॉ बगाली बाबू को वैदजी ने खूब काबू मे किया है। गए बेचारे बगाली बाबू।"

मैने कहा—"राजू, यह ऑखो का भ्रम है। वास्तव मे सूरज कही जाता नही, वह जहॉ-का-तहॉ रहता है।

राजू अवाक् मेरी तरफ ताकने लगा। गगोते लोग व्यग से हा-हा करके हँस पडे। हाय गैलीलियो। इसी नास्तिक विचार विमूढ दुनिया मे तुम कैद किए गए थे ?

अचरज का पहला आवेग कम हो जाने पर राजू ने पूछा—"सूरज नारायण पूरब के उदयगिरि मे नही उगते और पच्छिम सागर मे नही डूबते ?

मैने कहा—"नही।"

—"अग्रेजी किताब मे ऐसा लिखा है ?"

—"हाँ।"

ज्ञान मनुष्य मे ओज लाता है। जिस शात और निरीह राजू पाडेय के मुँह से कभी ऊँची आवाज नही सुनी थी, वह जोर से और दर्द के साथ बोला—"झूठ बात है बाबूजी। उदयगिरि की जिस गुफा से सूरज नारायण रोज उगा करते है, मुगेर के एक साधु उसे एक बार देख आए थे। बडी दूर चल कर जाना पडता है, पूरब की आखिरी सीमा पर वह पहाड है, गुफा के दरवाजे पर पत्थर के द्वार है, उसी मे उनका अभ्र रथ रहता है। हर किसी को उसके दर्शन थोडे ही नसीब होते है? बडे-बडे साधु-महथो को ही यह सौभाग्य मिलता है। वह साधु रथ के अभ्र की एक टुकडी साथ ले आया था—चकमक-चकमक, मेरे गुरुभाई कामताप्रसाद ने अपनी आँखो से देखा था।"

कहकर राजू ने एक बार गर्व के साथ गगोतो की तरफ आँखे घुमाई।

उदयगिरि की गुफा से सूर्योदय का इतना बडा और ठोस प्रमाण दे देने के बाद मुझे उस दिन सुन्न घसीट जाना पडा।

सोलहवाँ परिच्छेद

[एक]

एक दिन मैंने युगलप्रसाद से कहा—"चलो महालिखारूप के पहाड पर कुछ नए पेड-पौधो की खोज-बीन करे।"

उत्साह के साथ उसने कहा—"उस पहाड पर एक खास तरह की लत्तड पाई जाती है, जो और कही नही मिलती। इधर के लोग उसे चीहड कहते है। चलिए, खोज देखे।"

रास्ता नाढा बैहार की नई बस्तियो के बीच से पडता था। इतने ही दिनो मे एक-एक सरदार के नाम पर टोलो के नाम रखे जा चुके—झल्लू टोला, रूपदास टोला, बेगम टोला। ओखली मे नाज कूटे जाने की धपाधप आवाज, फूँस के छप्परो से उठते हुए धुएँ की कुडली—रास्ते के किनारे नग-धडग काले-काले बच्चो की धूल-बालू से खेल-कूद।

बैहार के उत्तर अभी भी घना जगल रह गया था, लेकिन लव-टोलिया मे नाम को भी जगल न था। बैहार के जगल का तीन-चौथाई हिस्सा खत्म हो चुका था, केवल उत्तरी छोर पर हजार दो-एक बीघे बच रहे थे, जिनका बन्दोबस्त नही हो सका था। युगलप्रसाद को इसकी काफी कचोट थी।

उसने कहा—"इन गगोतो ने सब बर्बाद कर दिया बाबूजी! कम्बख्तो के घर-द्वार हई नही, खानाबदोश है—आज यहाँ, कल वहाँ। ऐसे सुन्दर जगल को चाट गए!"

मै बोला—"उन बेचारो का कुसूर नही है युगल! जमीदार अपनी जमीन को यो कैसे छोड दे, सरकारी कर चुकाना पडता है, गाँठ से कब तक भरा करे? इन्हे तो जमीदार ने बसाया है, नका क्या दोष?"

—"मगर सरस्वती-कुड न दे हुजूर—बडे-बडे कष्ट झेलकर पेड-पौधे वहाँ लगाए है—"

—"मेरे करने से क्या हो सकता है! इतने दिनो तक उसे बचा कर रख सका, यही गनीमत समझो। इधर रैयत, वहाँ की जमीन के लिए रोज जोर मार रही है।"

हमारे साथ दो-तीन प्यादे थे। हमारी बातो का उन्होने मतलब न समझा और मुझे उत्साह देने के लिए कहा—"आप जरा भी फिक्र न करे हुजूर! रबी की फसल कट जाने दे, वहाँ की एक इच जमीन भी यो नही पडी रहेगी।"

महालिखारूप का पहाड नौ मील पर था। मेरे दफ्तर वाले कमरे से वह धुँधला-सा दीखा करता। वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते दस बज गए।

कैसी सुनहली धूप और वैसा निखरा नीला आकाश था उस दिन! ऐसा नीला आसमान पहले कभी देखा था—जैसा आकाश कभी-कभी ऐसा नीला होता है! धूप की कैसी अनोखी छटा, नीला आसमान मानो शराब के नशे से मन को मतवाला किए देता हो। धूप कोमल पल्लवो पर पड कर और भी निर्मल दीखती। खोता उजड जाने से नाढा बैहार और लवटोलिया की सारी चिडियाँ कुछ तो सरस्वती-कुड वाले वन मे, कुछ यहाँ और मोहनपुरा के जगल मे जा पहुँची है—उनकी न रुकने वाली चहक!

घना जगल। ऐसे घने जगलो मे, मन मे एक अनोखी शाति और स्वच्छद स्वाधीनता का भाव भर आता है—कितने पेड, कितनी शाखाएँ, कैसे-कैसे फूल—यहाँ-वहाँ बिखरी चट्टाने—जी चाहे जहाँ बैठ रहो, सो जाओ, पियार के पेडो की घनी छाँह मे जीवन के अलस क्षणो को काट दो—यह विशाल अरण्य-भूमि तुम्हारी थकी हुई स्नायुओ को शाति देगी।

हम पहाड पर चढने लगे। बडे-बडे पेडो ने सूरज की रोशनी को अपने ऊपर ले लिया था। छोटे-छोटे झरने कल-कल करते हुए जगल मे

उतर रहे थे—हर्र के पेड, केलिकदब के सगवान जैसे बडे-बडे पत्तो मे हवा रुक रही थी और सनसनाहट हो रही थी।

मैने कहा—"युगलप्रसाद, चीड फल के पेडो को ढूँढ निकालो।"

चीड के पेड और बहुत ऊपर जाने [पर मिले। कमल-जैसे उसके पत्ते, मोटी काठ की-सी लता आँकी-बाँकी होकर दूसरे पेडो पर जा चढी थी। सेम-जैसे उसके फल, मगर सेम के दोनो छिलके कटकी चप्पल-जैसे बडे होते है—वैसे ही कडे और चौडे, भीतर मे गोल-गोल बीज। हमने लता-पत्ते की आग मे भून कर उन बीजो को खाकर देखा, आलू-जैसा स्वाद।

बडी दूर तक पहाड पर चढ गया। वह वहाँ मोहनपुरा जगल—दक्खिन मे अपना गाँव और वह वहाँ सरस्वती-कुड का जगल दिखाई दे रहा है। वह रहा नाढा बैहार का बाकी चौथाई जगल—वह दूर पर मोहनपुरा रिजर्व फारेस्ट की पूर्वी सीमा से सट कर कोसी नदी बह रही है—नीचे के समतल का दृश्य ठीक तसवीर जैसा दिखाई पड रहा है।

—"मोर! मोर हुजूर, यह देखिए!"

माथे के पास ही डाल पर बैठा एक बहुत बडा मोर। प्यादे के पास बदूक थी। वह निशाना ठीक करने लगा। मैने मना कर दिया।

युगलप्रसाद ने कहा—"इस पहाड पर कही कोई गुफा है बाबूजी, उसकी दीवारो पर चित्र बने है, पता नही कब के बने है चित्र, उसी गुफा को ढूँढ रहा हूँ।"

शायद गुफा मे पत्थरो की दीवार पर प्रागैतिहासिक युग के मनुष्य के बनाए चित्र हो। धरती के इतिहास के लाखो-लाख बरस की यवनिका क्षण-मात्र मे उठकर समय के बहाव मे हमे जाने कहाँ पहुँचा देगी!

प्रागैतिहासिक युग की उस गुफा की तसवीरो को देखने के आग्रह से हम खाक छानते फिरे—वह गुफा मिल भी गई, मगर इतना घुप अँधेरा था उसके अन्दर कि घुसने का साहस ही न हुआ। घुस भी जाता, तो उस अँधेरे मे देख क्या पाता। आज रहे, फिर कभी सरो-सामान

के साथ आया जायगा। आखिर अँधेरे मे शखचूड और चन्द्रबोडा जैसे विषधर साँपो के हाथो जान कौन गँवाए? ऐसी जगहो मे इन साँपो की कमी नही।

मैने युगल से कहा—"देखो, कुछ नए-नए किस्म के पेड-पौधे इस जगल मे लगाओ। पहाड के जगल को कोई कभी नही काटेगा। लवटोलिया गया और अब सरस्वती-कुड का भी भरोसा छोड दो—"

वह बोला—"बजा फरमाते है हुजूर—बात जँचती है, किन्तु आप तो आएँगे नही, सब-कुछ अकेले ही करना पडेगा।"

—"बीच-बीच मे मै देख जाया करूँगा। तुम लगाओ।"

महालिखारूप का पहाड कोई एक पहाड न था, एक पर्वतमाला कहिए, कही भी डेढ हजार फुट से ज्यादा ऊँची नही। हिमालय के नीचे की पर्वत-पक्ति की ही एक शाखा, यद्यपि तराई प्रदेश के जगल और हिमालय यहाँ से सौ-डेढ-सौ मील पर थे। पहाड पर से नीचे की सम-तल भूमि को देखने से ऐसा लगता कि कभी प्राचीन युग का महासागर इस बालुकामय उच्च तट पर पछाडे खाता था, गुफा मे रहने वाले मानव तब भविष्य के गर्भ मे सोए थे और तब महालिखारूप का यह पहाड उस सुप्राचीन महासागर की बालुकामय भूमि था।

युगलप्रसाद ने कोई आठ-दस प्रकार के ऐसे लता-पेड दिखाए, जो कि नीचे के जगलो मे नही मिलते। पहाड के वन की प्रकृति ही और तरह की होती है—पेड-पौधे भी जुदा ढग के होते है वहाँ के।

शाम होने को थी। जाने कैसे वनफूल की-सी खूब महक मिलने लगी—बेला बीतने के साथ-साथ वह गध और गाढी होती गई। डालो पर पोडकी, वनसुग्गे और हरेटी के कूजन।

बाघ का खतरा था, सो साथ के लोग नीचे उतरने के लिए उतावले हो उठे, वरना उतरती हुई सध्या की घनी छाँह मे निर्जन पहाड की वन-भूमि मे जो स्निग्ध शोभा निखर आई, उसे छोड कर आने को जी नही चाह रहा था।

मुनेश्वरसिंह ने कहा—"हुजूर, यहाँ मोहनपुरा से भी बाघ का डर ज्यादा है। जो यहाँ लकडियाँ चुनने आते है, वे दोपहर के बाद ही उतर पडते है। जो आते है, वे जमात बाँध कर ही आते है—अकेले कोई आता भी नही। बाघ है, विषधर साँप है—जरा जगल को देखिए, किस कदर घना है।

लाचार होकर हम उतरने लगे। केलिकदब के बडे-बडे पत्तो की ओट मे शुक्र और बृहस्पति झलमला रहा था।

[दो]

एक दिन देखा, एक नए गृहस्थ के घर के बरामदे पर स्कूल मास्टर गनौरी तिवारी सखुए के पत्ते पर सत्तू सान कर मजे मे चट किए जा रहा है।

—"अरे, हुजूर! अच्छे तो है आप?"

—"मजे मे हूँ। तुम कब आए? कहाँ रहे अब तक? ये लोग तुम्हारे कोई लगते है क्या?"

—"जी, ये लोग कुछ भी नही लगते। यहाँ से होकर गुजर रहा था, रात हो आई थी। ब्राह्मण है ये, इसी से यही रुक गया। जान-पहचान नही थी, अभी हुई है।"

मकान-मालिक ने आगे बढकर मुझे नमस्कार किया। बोला—"आइए, बैठिए हुजूर!"

—"बैठने का समय नही है। ठीक ही हूँ। जमीन लिए कितने दिन हुए?"

—"दो महीने हुए। अभी सारे खेतो को जोत भी नही सका हूँ।"

एक छोटी-सी बच्ची गनौरी तिवारी को तीन-चार मिर्च दे गई। वह उडद का सत्तू खा रहा था, नमक और मिर्च के साथ। मै समझ नही सका कि सत्तू का उतना बडा लौदा दुबले गनौरी तिवारी के किस पेट मे अँटेगा! गनौरी असली खानाबदोश है। जहाँ बैठा वह खा रहा

था, उसके पास ही मैले कपडे की एक पोटली पडी थी, एक गिलाफ यानी बालापोश जैसा पतला ओढना। देखते ही मै भॉप गया—यह गनौरी तिवारी का है और ससार मे यही उसका सर्वस्व है। मैने उससे कहा—"गनौरी, अभी तो फुर्सत नही, तुम फिर कचहरी मे आना।"

तीसरे पहर गनौरी आया।

मैने पूछा—"कहॉ थे तुम ?"

—"मुगेर के गॉवो मे घूमता रहा हुजूर—बहुत-बहुत गाँव घूमे।"

—"घूम कर क्या करते रहे ?"

—"लडको को पढाया करता था पाठशाला खोल कर।"

—"चली नही कोई पाठशाला ?"

—"दो महीने से ज्यादा कोई न चली। शुल्क ही नही देते लडके।"

—"ब्याह-शादी की या नही ? उम्र क्या हुई तुम्हारी ?"

—"अपना ही गुजारा नही चलता, ब्याह क्या करूँ हुजूर! उम्र चौतीस-पैतीस की हुई होगी।"

गनौरी-जैसे गरीब इधर कम ही है। मुझे याद आया, एक बार वह बिना न्योते के ही भात खाने के लिए मेरे यहाँ आ पहुँचा था, शुरू-शुरू मे जब मै यहाँ आया था। अब जाने कब से उसे भात नही नसीब हुआ है। गगोतो का अतिथि बन-बन कर उडद का सत्तू खाता फिरता है।

मैने कहा—"रात को यही भोजन करना। कटू मिश्र पकाता है, उसके हाथ की रसोई खाने मे तुम्हे आपत्ति तो नही होगी ?"

गनौरी बहुत खुश हुआ। भरपेट हँस कर बोला—"कटू तो अपनी ही जाति का है, पहले भी मै उसके हाथ का खा चुका हूँ—आपत्ति क्या होगी ?"

उसके बाद बोला—"जब आपने ब्याह की चर्चा उठाई ही है हुजूर, तो कह दूँ आपसे। पिछले साल सावन मे एक गॉव मे मैने पाठशाला खोली। गाँव मे अपनी ही जाति के ब्राह्मण की एक घर था। उसी के

यहाँ रहा। उसकी लडकी से मेरी शादी की बात पक्की हो गई, यहाँ तक कि मुगेर से मै एक अच्छी-सी मिरजई भी खरीद लाया—मुहल्ले के लोग चिल्ल-पो करने लगे। कहा—"यह गरीब स्कूल मास्टर है, घर-द्वार का ठिकाना नही, इसे क्या लडकी ब्याहोगे। टूट गया ब्याह। मै वहाँ से चल भी दिया।"

—"लडकी को देखा था तुमने ? अच्छी थी ?"

—"देखता नही ? बडी अच्छी थी देखने मे। मुझसे उसे ब्याहते भी क्यो ? ठीक ही तो है, मुझे है क्या ?"

समझा, ब्याह टूट जाने से गनौरी बडा दुखी हुआ है। लडकी उसे जँच गई थी।

उससे देर तक बाते होती रही। उसकी बातो से ऐसा लगा, जिदगी ने उसे कुछ भी नही दिया, दो मुट्ठी दाने के लिए यहाँ से वहाँ सदा भटकाती रही उसे! वह भी उससे न जुट सका। गगोतो के दरवाजे-दरवाजे घूम कर ही उसने आधी जिन्दगी गुजार दी।

बोला—"इसीलिए बहुत दिनो के बाद लवटोलिया आया हूँ। सुन रक्खा था, यहाँ बहुत सारी नई बस्तियाँ बस गई है। वह जगल नही रहा। आया, अगर यहाँ पाठशाला चला सकूँ। नही चलेगी हुजूर ?"

मैने सोच लिया, एक पाठशाला खोल कर गनौरी को उसमे लगा दूँगा। बहुत-से बच्चे यहाँ आए है। उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना मेरा ही तो कर्त्तव्य है। खैर, देखूँ क्या कर सकता हूँ।

[तीन]

अनोखी चाँदनी रात। राजू पाडेय और युगलप्रसाद गप लडाने को पहुँचे। कचहरी से कुछ ही दूर पर एक नई बस्ती बसी थी, वहाँ का भी एक आदमी आया। चार ही दिन हुए है कि वे छपरा से यहाँ आए है।

वह आदमी अपनी रामकहानी सुना रहा था कि बीबी-बच्चे लेकर

कहाँ-कहाँ की खाक छानी, कितने चौर और जगल मे कितनी बार घर-बार बसाया। कही तीन साल, तो कही दस साल—एक जगह दस साल रहा था कोसी नदी के किनारे। कही कोई तरक्की न कर सका। अब यहाँ आया है, अपनी उन्नति की आशा मे।

इन यायावर गृहस्थो की जिन्दगी भी अजीब होती है! इनसे मैने बाते करके देखी है—इनके जीवन बिलकुल मुक्त और बधनहीन होते है—न तो इनका कोई समाज है, न कोई सस्कार, अपने पुश्तैनी घर की ममता भी इनमे नही, खुले आसमान के नीचे अपनी दुनिया बसा कर ये जगल, पहाडो के बीच की उपत्यका, नदियो के चौरो मे रहा करते है। आज यहाँ, तो कल वहाँ।

इनके प्रेम-विरह, जीवन-मृत्यु, मेरे लिए सभी नए और अजीब-से है, मगर सब से अजीब मालूम हुई इस आदमी की तरक्की की उम्मीद।

समझ नही सका कि इस बैहार मे महज दस-पाँच बीघे मे गेहूँ पैदा करके यह कौन-सी तरक्की की उम्मीद करता है!

उसकी उम्र पचास से ज्यादा हो चुकी थी। नाम था बलभद्र सेगाई। जात का कलवार। इस उम्र मे भी उसे उन्नति करने की उम्मीद रह गई थी!

मैने पूछा—"इसके पहले कहाँ थे बलभद्दर?"

—"मुगेर के एक दीयरे मे था हुजूर। दो साल रहा वहाँ। उसके बाद मकई की फसल मारी गई। वहाँ आगे उन्नति की कोई आशा न दीखी। हुजूर, ससार मे अपनी उन्नति की कोशिश हर कोई करता है। अब देखूँ, हुजूर के आश्रय मे—"

राजू पाडेय ने बताया—"जब मै यहाँ आया था, मेरे पास छै भैसे थी—आज दस है। लवटोलिया उन्नति की जगह है—"

बलभद्र बोला—"मुझे भी एक जोडा भैस ले देना पाडेजी! अब की उपज हो, उस रुपए से भैस खरीदनी ही पडेगी—बगैर भैस के उन्नति नही होती।"

गनौरी इनकी बाते सुन रहा था । उसने भी कहा—"बात सही है । एकाध भैस खरीदने की इच्छा अपनी भी है । जरा कही जम जाऊँ"—

चाँदनी मे महालिखारूप के पेड-पौधे और उसके भी पीछे धनझरी गिरिमाला धुँधली-सी झलक पडी थी। थोडी-बहुत सर्दी-सी थी, इसलिए आग जलाई गई थी । आग की एक तरफ बैठे थे राजू पाडे और युगलप्रसाद, दूसरी तरफ बलभद्र और तीन-चार नए रैयत ।

इनकी वैषयिक उन्नति की बातचीत मेरे लिए कैसी अनोखी थी ! उन्नति की इनकी धारणा कुछ बहुत ऊँची नही, छै भैंसो की जगह दस या बहुत जोर मारा तो बारह भैंसे—इस दुर्गम जगल और पहाडियो से घिरे इलाके मे भी मानव-मन की आशा-आकाक्षा क्या होती है, इसे जानने का सुअवसर पाकर यह चाँदनी रात ही मेरे लिए अपूर्व रहस्यमय हो उठी । और केवल चाँदनी रात ही क्यो, महालिखारूप का वह पहाड, दूर की वह धनझरी की पहाडियाँ, उनके ऊपर की वनपक्ति, सब रहस्यमय लगी ।

केवल युगलप्रसाद इन सासारिक बातो से सम्बन्ध नही रखता । वह एक विशेष प्रकार का व्रात्य मन लेकर इस दुनिया मे आया है—जमीन-जायदाद, गाय-भैस-आलोचना न तो उसे पसन्द है, न ऐसी चर्चा मे वह सम्मिलित ही होता है ।

उसने कहा—"सरस्वती-कुड के पूर्वी किनारे पर जो हस-लताएँ लगाई थी, वे कैसी घनी हो उठी है, देखा है बाबूजी ? किनारे-किनारे स्पाइडर लिली की बहार भी अब की खूब है। चाँदनी मे चलेगे वहाँ घूमने ?

मुझे तकलीफ होती, युगलप्रसाद के इतने शौक के उस जगल को और कितने दिनो तक बचा पाऊँगा ? पता नही, हस-लता और जगली हरसिंगार का मेला कहाँ गायब हो जायगा । उनकी जगह भुट्टे के पौधे सिर उठाए खडे रहेगे, फूँस के घर, सटे-सटे छप्पर, घर के सामने खटिया, कीचड़ भरे आँगन मे नाद में मुँह गाडे मवेशी सानी खाते रहेगे ।

इतने में आया मटुकनाथ पडित । आजकल उसकी पाठशाला में

प्राय पन्द्रह छात्र कलाप और मुग्धबोध पढ रहे थे। हालत उसकी सुधर गई। इस बार फसल के दिनो मे यजमानो से गेहूँ और मकई इतनी मिली कि आँगन मे उसे छोटी-सी मोटी बाँधनी पडी।

मटुकनाथ इस बात का जलता प्रमाण है कि अध्यवसायी की उन्नति होकर ही रहती है।

फिर वही उन्नति की बात आ पडी।

मगर उन्नति की बात आए बिना चारा भी क्या ? आँखो के आगे ही उदाहरण है कि मटुकनाथ ने चूँकि उन्नति की है, इसलिए आज-कल उसका आदर-सम्मान बढ गया है। कचहरी के जो अमले-प्यादे पगला समझकर उसे टाला करते थे, आँगन मे मोटी बाँधने के बाद से वही उसकी खातिर करते है। पाठशाला मे छात्रो की सख्या भी दिन-प्रति-दिन बढती जा रही है। और युगलप्रसाद या गनौरी तिवारी को कोई टके को भी नही पूछता ! नए रैयतो मे राजू पाडे ने भी अपनी शाख जमा ली है—जब देखिए, जडी-बूटी की पोटली लिए वह गृहस्थो के बाल-बच्चो की नब्ज देखता फिरता रहता है, लेकिन राजू पाडे पैसे को नही चीन्हता, आदर पाकर गपशप से ही सन्तुष्ट हो जाता है।

[चार]

तीन-चार महीने के अन्दर-अन्दर महालिखारूप पहाड से लेकर लवटोलिया और नाढा बैहार की सीमा तक रैयत बस गए। जमीन की बन्दोबस्ती होकर खेती तो पहले ही शुरू हो गई थी, पर आबादी इतनी नही बढी थी—इस साल दल-के-दल लोग आकर रातोरात बस्तियाँ बसाने मे लग गए।

तरह-तरह के लोग। जर्जर टट्टू की पीठ पर बिछौने, बर्तन, पीतल का घडा, लकडी का बोझा, देवता, चूल्हा तक लिए एक परिवार को आते देखा। दूसरा एक परिवार आया—भैंस की पीठ पर लदे बच्चे, बर्तन-भाँडे, टूटी लालटेन, यहाँ तक कि चारपाई भी। किसी-किसी परिवार

की पति-पत्नी बॅहगी मे असबाब लादे, बच्चो को बिठाए बडी दूर से आए ।

आनेवालो मे सदाचारी मैथिल ब्राह्मण से लेकर गगोता और दुसाध, समाज के सभी वर्ग के लोग थे । मैंने युगलप्रसाद से पूछा—"ये सारे लोग अब तक क्या बिना घर-बार ही के थे ? कहाँ से आ रहे है इतने सारे लोग ?"

युगलप्रसाद मूड मे नही था । बोला—"इधर के लोग ही ऐसे है बाबूजी ! पता चला कि यहाँ जमीन सस्ती मिल रही है—बस दल-के-दल लोग चले आ रहे है । अगर सहूलियत हुई तो हुई, न हुई तो डेरा-डडा समेट कर चल देगे ।"

—"अपने बपौती घर-द्वार का इन्हे मोह नही होता ?"

—"कतई नही । नए निकले चौर या जगल बदोबस्त लेकर खेती-बारी से गुजारा करना ही इनका पेशा है । बसना आनुषगिक बात है । जब तक उपज अच्छी होती रहेगी, मालगुजारी कम लगती रहेगी, तब तक ये रहेगे ।"

—"उसके बाद ?"

—"उसके बाद पता लगाएँगे कि नया चौर कहाँ निकला है, या जंगल कहाँ बन्दोबस्त हो रहा है—वही चल देगे ।"

[पाँच]

उस दिन ग्राट साहब के बरगद के नीचे जमीन की नाप-जोख कराने गया था । अशर्फी टडेल जमीन नाप रहा था और मै घोडे पर से निगरानी कर रहा था । इतने मे देखा, रास्ते से कुता जा रही है ।

बहुत दिन से उसे देखा नही था । अशर्फी से मैंने पूछा—"कुता आज कल कहाँ रहती है—देखता नही हूँ उसे ।"

अशर्फी बोला—"आपने उसका किस्सा सुना नही है—बीच मे वह बहुत दिनो तक यहाँ नही थी—"

—"सो क्या ?"

—"रासबिहारीसिह उसे अपने घर ले गया था। कहा—'तुम मेरे जात-भाई की स्त्री हो, यही रहो'—"

—"फिर ?"

—"वहाँ रही कुछ दिन। शक्ल-सूरत देख रहे है उसकी—इतने दु ख-कष्टो के बावजूद—रासबिहारीसिह ने उससे बहुत कुछ कहा, उस पर अत्याचार करने की भी कोशिश की—सो लगभग महीने भर से वह यही आ गई भाग कर। सुना, रासबिहारी ने उसे छुरा दिखाकर डराया। वह बोली—'चाहे मार ही डालो मुझे, जान दे दूँगी, मगर धरम नही दे सकती'।"

—"कहाँ रहती है ?"

—"झल्लू टोले के एक गगोते के यहाँ पनाह ली है। गुहाल मे एक छोटी-सी चलिया है, उसी मे रहती है।"

—"गुजारा कैसे होता है ? उसके तो दो-तीन बाल-बच्चे भी है ?"

—"भीख माँगती है, खेतो के कटने पर फसल बीनती है, कटाई करती है। बडी अच्छी औरत है हुजूर कुता। थी तो बाईजी की बेटी, मगर भले घर की औरतो-जैसा सुभाव है—कोई बुरा काम वह कर नही सकती।"

नाप-जोख खत्म हो गई। इस जमीन को बलिया जिले के एक आदमी ने बन्दोबस्त मे लिया था—कल से वह यहाँ अपना घर बनाएगा। ग्राट साहब के बरगद की महिमा भी जाती रही !

महालिखारूप के पहाड पर खडे पेडो पर धूप रगीन हो आई। झुड-के-झुड सिल्ली सरस्वती-कुड की तरफ उड चले। साँझ होने मे ज्यादा देर न थी।

एक बात मन में आई।

जो रवैया है, देखता हूँ, इस विशाल लवटोलिया और नाढा बैहार मे जरा भी जमीन कही नही रह जायगी। बाहर के अजाने लोगो ने आ-

आकर सारी जमीन ले ली , लेकिन इसी भूमि में जो सदा से रहे, मगर निहायत गरीब और अभागे हैं, क्या वे इसीलिए यहाँ की जमीन से वञ्चित रहेगे, क्योकि उनके पास सलामी देने को पैसे नही है ? जिन्हे मैं प्यार करता रहा हूँ, उनका इतना-सा उपकार तो जरूर ही करूँगा ।

अशर्फी से मैंने कहा—"अशर्फी, कल कुता को तुम कचहरी मे बुला लाना ? जरूरत है । "

—"जरूर हुजूर, जब कहे । "

दूसरे दिन सबेरे नौ बजे अशर्फी उसे मेरे सामने ले आया ।

मैंने पूछा—"कैसी हो कुता ?"

उसने दोनो हाथ बाँध कर मुझे प्रणाम किया । बोली—"अच्छी हूँ हुजूर । "

—"और तुम्हारे बच्चे ?"

—"हुजूर की दुआ से वे भी अच्छे हैं । "

—"कितना बडा हो गया तुम्हारा बडा लडका ?"

—"आठवे साल मे पहुँचा है हुजूर । "

—"भैस नही चरा सकता है ?"

—"उतने छोटे लडके को भैस कौन चराने देगा हुजूर ?"

सचमुच ही कुता अभी भी देखने मे अच्छी थी । जीवन के दुख कष्टो ने उसके चेहरे पर जैसी छाप छोडी थी—साहस और पवित्रता ने भी वैसे ही जय-चिह्न अकित कर दिए थे ।

यह काशी की बाईजी की वही लडकी है—प्रेम-विह्वला कुता ! प्रेम की उज्ज्वल बाती इस अभागिन के हाथो आज भी गौरव के साथ जल रही है—इसी से उसे इतना दुख है, इतनी हीनता, इतना अपमान । कुता ने प्रेम की मर्यादा रक्खी है ।

पूछा—"जमीन लोगी कुता ?"

मानो वह समझ नही सकी कि वह जो सुन रही है, ठीक है । बोली—"जमीन हुजूर ?"

—"हाँ जमीन ? बन्दोबस्ती ।"

कुता ने जरा देर तो कुछ सोचा । फिर बोली—"पहले तो अपनी ही जोत थी कितनी । शुरू-शुरू मे जब आई थी, देखा था मैने । उसके बाद एक-एक करके सब-कुछ चला गया । अब क्या देकर जमीन मै लूँगी हुजूर ?"

—"क्यो, सलामी के रुपए नही दे सकोगी ?"

—"कहाँ से दूँ ? रात को छिप-छिपाकर तो कटे खेतो से बिखरी बाले बीनती हूँ, दिन मे शायद कोई अपमान कर बैठे । एक टोकरी, आधी टोकरी उडद लाती हूँ, वही बच्चो को खिलाती हूँ । हर रोज अपने लिए नही बचता—"

चुप होकर उसने आँखे झुका ली । दोनो आँखो से टप्-टप् आँसू बहने लगे ।

अशर्फी वहाँ से खिसक गया । जवान का कोमल कलेजा, अभी भी दूसरे का दु ख ठीक-ठीक बर्दाश्त नही कर सकता ।

मैने कहा—"मान लो, सलामी न लगे, तब ?"

उसने अचरज-भरी आँखो से मेरी तरफ देखा ।

अशर्फी जल्दी-जल्दी उसके पास आ पहुँचा । हाथ हिला-हिला कर बोला—"हुजूर तुम्हे यो ही जमीन देगे, यो ही । समझा ?"

अशर्फी से मैने पूछा—"लेकिन जमीन दी भी जाय, तो वह खेती कैसे करेगी ?"

अशर्फी बोला—"वह सब हो जायगा । हुजूर—इसे हल-बैल सभी दे देगे । इतने तो गगोते है, घर पीछे एक-एक दिन भी हल दे देगे, तो इसकी खेती हो जायगी । यह जिम्मा मेरा रहा हुजूर ।"

—"अच्छा अशर्फी, कितने बीघे मे कुता का काम चल जायगा ?"

—"जब मेहरबानी करके देही रहे है हुजूर, तो दस बीघे तो दे दीजिए ।"

कुता से पूछा—"तुम्हे बिना सलामी के दस बीघा जमीन अगर

दे दी जाय, तो खेती करके जमीदार की मालगुजारी तो अदा कर ही दिया करोगी ! पहले दो साल तुम्हारी मालगुजारी भी माफ रहेगी। तीसरे साल से देनी पडेगी ।"

कुता मानो हतबुद्धि-सी हो गई । मानो वह यही नही समझ रही हो कि हम यह ठीक कह रहे है या उससे मजाक कर रहे है ।

कुछ-कुछ दिक्भ्रमित-सी होकर बोली—"जमीन। दस बीघे ।"
अशर्फी ने कहा—"हाॅ-हाँ, हुजूर तुम्हे दस बीघा जमीन दे रहे है । दो साल की मालगुजारी माफ । तीसरे साल से देना । क्यो, राजी हो ?"

लाज-भरी आँखो से उसने मुझे देखा । बोली—"हुजूर दयालु है ।" बाद मे अचानक विह्वल होकर रो पडी ।

मैने इशारा किया । अशर्फी उसे बाहर ले गया ।

सत्रहवाँ परिच्छेद

[एक]

शाम के बाद लवटोलिया की नई बस्तियाँ बडी अच्छी दिखाई देती। कुहरा था, इसलिए चाँदनी जरा धुँधली हो रही थी। दूर तक फैले हुए खेत, भिन्न-भिन्न बस्तियो मे दूर-दूर दो-चार जलती बत्तियाँ। अन्न के सहारे कहाँ-कहाँ से कितने लोग यहाँ पर आ गए—जगल काट-काटकर गाँव बसाए, खेती शुरू की। सभी बस्तियो के मै नाम भी नही जानता, सब को चीन्हता भी नही। कुहरे से धुँधली हुई चाँदनी मे यहाँ-वहाँ बिखरी बस्तियाँ कैसी रहस्यमयी लग रही है। जो लोग इन बस्तियो मे बसते है, उनका जीवन भी मेरे लिए इस धुँधली चाँदनी जैसा ही रहस्य-मय है। इनमे से किसी-किसी से मैने बाते की है—जीवन के बारे मे इनके दृष्टिकोण, इनके रहन-सहन के तौर-तरीके, सब मुझे अजीब-से लगते।

इनके खान-पान की ही बात ली जाय। अपने इलाके मे साल मे तीन फसले होती है—भादो मे मकई, पूस मे उडद और वैशाख मे गेहूँ। मकई बहुत ज्यादा नही होती, क्योकि उसके लायक जमीन नही थी। उडद और गेहूँ खूब होते—उडद बहुत होता, उसका आधा होता गेहूँ। सो लोगो का मुख्य खाद्य था उडद का सत्तू।

धान बिलकुल नही होता। धान के लिए जैसी जमीन होनी चाहिए, वैसी जमीन इलाके भर मे कही नही—कडारी और सरकारी खास महाल मे भी नही, लिहाजा यहाँ के लोगो को कभी-कभी ही भात नसीब होता—भात खाना यहाँ विलासिता मे गिना जाता है। खाने के शौकीन कुछ लोग गेहूँ और उडद बेच कर चावल खरीदा करते है, पर ऐसो की सख्या अँगुलियो पर ही गिनी जा सकती है।

फिर उनके मकानो की बात ले। गाँव के दस हजार बीघे के घेरे मे जो अनगिन बस्तियाँ बस गई है—सब मे जो घर है, छौनी कसाल की, कसाल की टट्टियाँ, किसी-किसी ने उन पर मिट्टी पोत दी है, बहुतो ने वह भी नही पोती। बाँस इधर मिलते ही नही, इसलिए घर की खभा-खूँटी ज्यादातर केद और पियार की डालो की बनी है।

धर्म की तो चर्चा करना ही यहाँ फिजूल है। है तो ये हिन्दू, मगर नही जानता कि तैतीस कोटि देवताओ के होते हुए—इन्होने हनुमानजी को ही कैसे चुन कर निकाल लिया है—जिस बस्ती को देखिए, हनुमानजी की ध्वजा जरूर है—इस ध्वजा की नियम से पूजा होती है—डडे मे सिन्दूर पोता जाता है। सीता-राम का नाम कभी-कभी ही सुनने मे आता है, उनके सेवक के गोरव ने उनके देवत्व को ढँक दिया है। विष्णु, शिव, दुर्गा, काली—इन देवी-देवताओ की पूजा का वैसा खास प्रचार नही—कुछ भी प्रचार है, इसमे भी मुझे सदेह है। कम-से-कम अपने इलाके मे तो मैने कभी नही देखा।

भूलता हूँ, एक शिव का भक्त मुझे जरूर मिला था। नाम है द्रोण महतो—गगोता है। दस-बारह साल पहले किसी ने कचहरी की महावीरी ध्वजा के नीचे एक शिलाखड लाकर रख दिया था—प्यादे समय-समय पर उसमे सेदूर मलते है, कोई-कोई जल भी चढा देता है। लेकिन ज्यादा-तर वह अनादृत ही पडा है।

कचहरी से कुछ ही फासले पर एक नई बस्ती बनी है, द्रोण महतो ने वही अपना घर बनाया है। उम्र उसकी सत्तर से ज्यादा ही होगी, कम नही। पुराना आदमी है, इसीलिए नाम द्रोण है। आज का होता तो डोमन, लोधई, महाराज, ऐसा कुछ नाम होता। तब के माँ-बाप ऐसे बाबू कोटि के नाम रखने मे शर्माते थे।

खैर; द्रोण एक बार कचहरी मे आया। महावीरी ध्वजा के नीचे पडे उस पत्थर पर उसकी निगाह पडी। तब से वह बूढा रोज सुबह कलबलिया नदी मे नहाकर और वहाँ से एक लोटा पानी लाकर रोजाना

उस पत्थर पर ढाला करता। सात बार उसकी प्रदक्षिणा करके साष्टाग दड्वत् करके तब अपने घर जाता।

मैने द्रोण से एक दिन कहा भी था—"कलबलिया नदी तो एक कोस पर है। पास के कुड के पानी से भी तो काम चल सकता है—"

वह बोला—"महादेवजी बहती धार के पानी से प्रसन्न होते है बाबूजी! मेरा जन्म सार्थक है कि उन्हे रोज स्नान कराने का सौभाग्य मिला है।"

भक्त भी भगवान् को बनाते है। द्रोण महतो की पूजा की चर्चा लोगो मे फैली और धीरे-धीरे कुछ भक्त नर-नारियो का आना-जाना शुरू हो गया। इधर के जगलो मे एक तरह की खुशबू वाली घास होती है। उसके पत्ते या डठल को सूँघने से खुशबू आती है। घास जितनी ही सूखती है, खुशबू उतनी ही तेज होती है। न जाने किसने लाकर शिवजी के चारो तरफ वही घास लगा दी। एक दिन मटुकनाथ ने आकर मुझ से कहा—"बाबूजी, एक गगोता रोज यहाँ आकर शिवजी को जल चढाया करता है। यह अच्छा है?"

मैने कहा—"पाडेजी, उसी गगोता ने लोगो मे शिवजी का प्रचार किया है। आप भी तो यही रहे, कभी तो एक लोटा पानी ढालते आपको नही देखा मैने।"

गुस्से से मटुकनाथ की बुद्धि चकरा गई। बोला—"असल मे वह, शिवजी नही है बाबूजी। प्रतिष्ठा किए बिना ठाकुर पूजा के योग्य नही होते। यह तो महज एक पत्थर है।"

—"फिर कहते क्यो हो? कोई पत्थर पर पानी ढालता है, तो तुम्हे उज्र क्यो होता है?" तब से द्रोण महतो कचहरी के शिवजी का चार्टर्ड पुजारी बन गया।

कातिक की छठ यहाँ का बहुत बडा त्योहार है। टोले-टोले से हलदी से रगी साडियाँ पहनकर दल-की-दल औरते कलबलिया नदी मे अर्घ्य देने जाती है। दिन-भर धूम-धाम रहती है। शाम को बस्ती के पास से

गुजरिए, तो पकवान की खुशबू मिलती है। काफी रात बीतने तक बच्चों के शोरोगुल, औरतो के गीत—जहाँ रात को नीलगायो के झुड दौडा करते थे, हायना की हँसी और बाघ की खाँसी (जानकारो को पता है कि बाघ ठीक आदमी की खाँसी जैसी आवाज करता है) सुनी जाती थी, वहाँ आज हास-मुखरित, गीत गुजित-उत्सवमय जनपद है।

छठ की साँझ को न्योते मे झल्लू-टोला गया। वही नही, कचहरी के सभी लोगो को पन्द्रह टोलो से छठ का न्योता मिला था।

पहले मै टोले के मुखिया झल्लू महतो के यहाँ गया।

देखा, उसके घर के एक ओर अभी भी थोडा-बहुत जगल है। आँगन मे उसने एक फटा शामियाना लगा रक्खा था, उसी के नीचे हमे आदर से बिठाया गया। मुहल्ले के लोग साफ-साफ धोती-मिरजई पहन कर एक तरह की घास की बनी चटाई पर बैठे थे। मैंने कहा—"खाना नही खा सकूँगा। अभी और भी बहुत जगह जाना है।"

झल्लू ने कहा—"जरा मुँह मीठा तो करना ही पडेगा। घर की औरतो का जी बडा छोटा हो जायगा। आपके चरणो की धूल पडेगी, इसलिए उन्होने बडे जतन से पकवान बनाए है।"

अब कोई चारा न था। गोष्ठ बाबू मुहर्रिर, मै और राजू पाडे बैठ गए। सखुए के पत्ते पर आटे और गुड के कई ठेकुए आए—एक-एक इच मोटे और ईट की तरह कडे। फेंक कर मारिए, तो आदमी मरे चाहे नही, जख्मी तो हो ही जाय। हर पकवान साँचे का बना था, सब पर लता-पत्रादि अकित थे। साँचे मे बना कर तब उन्हे घी मे छाना गया था।

जिन्हे औरतो ने बडे जतन से बनाया था, उन पकवानो का सदुपयोग मैं नही कर सका। बडी-बडी कठिनाई से आधा खाया। न तो मीठा, न कोई स्वाद। समझ गया कि गगोतिने पकाना-वकाना कुछ भी नही जानती। लेकिन देखते-ही-देखते राजू पाडे चार-पाँच खा गया और शायद शरम के मारे हम लोगो के सामने वह दुबारा माँग भी नही सका।

वहाँ से लोधई टोला गया। वहाँ से पर्वत-टोला, भीमदास-टोला।

अशर्फी-टोला, लछमिनिया-टोला। हर टोले मे गीत-नाच और हँसी-खुशी की धूम थी। रात-भर लोग जगेगे। इस-उस घर मे खाते फिरेगे और नाच-गान करते हुए ही तमाम रात कटेगी।

एक बात जानकर खुशी हुई। हर टोले की औरतो ने हम लोगो के लिए बडे जतन से पकवान पकाया। चूँकि मैनेजर बाबू आयेंगे, इसलिए बडे ही उत्साह और यत्न से सब ने अपनी-अपनी पाक-कला की कुशलता का परिचय देने की कोशिश की थी, लेकिन मेरे लिए यह बडे दुख का कारण रहा कि औरतो की सहृदयता का आभार मन मे मानते हुए भी उनकी पाक-कला की तारीफ मै नही कर सका। झल्लू-टोले से भी कही-कही गए-बीते पकवान मिले।

हर जगह यह देखा कि रगीन साडियाँ पहने ओट मे खडी-खडी औरते बडी ही कौतुकपूर्ण आँखो से हमें खाते हुए देखती रही। राज पाडे ने किसी का जी न दुखाया, पकवान खाने की सीमा पार करके धीरे-धीरे वह असीम की ओर बढने लगा। फल-स्वरूप मैने गिनना छोड दिया और इसलिए यह मै नही बता सकता कि उसने कितने खाए।

और राजू क्या, न्यौते पर आने वाले गगोतो मे से एक-एक ने बीस-बीस तीस-तीस वैसे ईट-से कडे पकवानो की खबर ली। यदि अपनी आँखो से न देखे, तो सहज ही यकीन नही आ सकता कि आदमी इतना-इतना भी खा सकता है।

छनिया और सुरतिया के यहाँ भी गया।

मुझे देखते ही सुरतिया दौडी आई।

—"इतनी देर कर दी बाबूजी? माँ और मैने मिलकर आपके लिए खास तरह से पकवान बनाए है और तब से राह देखती हुई यही सोच रही हूँ कि इतनी देर आखिर क्यो हो रही है। आइए, आइए!"

नकछेदी ने सबको आदर से बिठाया।

तुलसी को बडे यत्न से आसन आदि लगाते देख कर मै मन-ही-मन हँसा। खा सकने की गुजाइश ही अब कहाँ रह गई थी पेट मे?

सुरतिया से कहा—"माँ से कहो, पकवान निकाल ले। इतना कौन खाएगा ?"

वह अचरज से मेरी तरफ देखकर बोली—"कहते क्या है बाबूजी, दो-ही चार तो है, इतना भी नही खाएँगे ? मैने और सुरतिया ने तो पद्रह-सोलह खाए है। आप खाएँगे, इसलिए माँ ने इसमे किशमिश मिलाया है, बाबूजी, भीमदास-टोले से बढिया आटा ले आए है—"

न खाने की कहकर मैने अच्छा नही किया। साल-भर ये बच्चियाँ पकवान की शक्ल नही देख सकती। इनके लिए यह कितने कष्ट, कितनी आशाओ की चीज है। उन बच्चियो का मन रखने के लिए किसी-किसी तरह खा लिए दो।

सुरतिया को खुश करने के लिए कहा—"वाह, खूब बने है। आज कई जगह खाना पडा है, इसलिए ज्यादा खा नही सका। फिर कभी देखा जायगा।"

राजू पाँडे के हाथ मे एक पोटली। हर घर से उसने परोसा लिया। एक-एक ठेकुए के वजन के हिसाब से राजू की पोटली दस-बारह सेर से तो हर्गिज कम न होगी।

राजू बहुत खुश था। बोला—"यह ठेकुआ जल्दी खराब नही होता है बाबूजी !—दो-तीन दिन रसोई से छुट्टी मिल गई। यहीं खाकर काम चल जायगा।"

दूसरे दिन पीतल की एक थाली लिए कचहरी मे कुंता आई। सकोच के साथ उसने थाली मेरे सामने रख दी। थाली कपडे के एक सफेद टुकडे से ढँकी थी।

मैने पूछा—"क्या है कुंता ?"

—"छठ का पकवान है बाबूजी ! कल रात दो बार आ-आकर लौट गई।"

मैने कहा—"कल बहुत रात बीते लौटा था, छठ के न्योते जो थे। अच्छा रख दो जरूर खाऊँगा।"

कपडा उघार कर देखा, थाली मे कई तो ठेकुए थे, थोडी-सी चीनी थी, दो केले, एक टुकडा नारियल और एक नारगी ।

मैंने कहा—"अच्छा, बहुत बढिया पकवान है यह तो ।"

कुता सकोच के साथ धीमे-धीमे बोली—"दया करके सब खाइएगा, बाबूजी ! आपके लिए बनाया है । यही दु ख रहा कि आपको गरम-गरम न खिला सकी ।"

—"कोई हर्ज नही—सब खा लूँगा मै । बहुत अच्छा है ।"

कुता प्रणाम करके चली गई ।

[दो]

एक दिन मुनेश्वरसिह प्यादे ने आकर कहा—"हुजूर, जगल मे पेड के नीचे फटा हुआ कपडा बिछा कर एक आदमी सोया हुआ है, लोग उसे बस्ती मे नही जाने देते—ढेले से मारते है। हुक्म दे, तो उसे यहाँ ले आऊँ ।

मुझे ताज्जुब हुआ । तीसरे पहर का समय, साँझ हो चली है, सर्दी ज्यादा नही है, फिर भी कातिक का महीना, रात को काफी ओस पडती है, भोर के समय काफी ठढ होती है । ऐसे मे एक आदमी जगल मे पेड के नीचे क्यो सोया है, लोग उसे ढेले से मारते ही क्यो है—समझ नही सका ।

मै गया । देखा ग्राट साहब के बरगद के पास (कोई बीस-तीस साल पहले ग्राट साहब यहाँ नाप-जोख करने आए थे और यही तबू डाला था—तब से बरगद का यही नाम पड गया) झाडियो मे एक अर्जुन गाछ के नीचे मैला कपडा बिछाकर एक आदमी सोया हुआ है । अँधेरे मे ठीक से उसे देख नही सका, सो आवाज दी—"कौन है ? कहाँ घर है ? इधर आ जाओ—"

वह बाहर निकल आया—लगभग घुडककर निकला—धीरे-धीरे । पचास से ऊपर उम्र होगी, जर्जर चेहरा, मैला और फटा कपडा, मिरजई पहने ! झाडी मे से जब वह बाहर निकल रहा था, एक अजीब असहाय

भाव से शिकारी द्वारा भगाए गए पशु की तरह भयभीत निगाह से मुझे देख रहा था ।

निकल आने पर देखा, उसके बाएँ हाथ और पाँव मे बडा भारी जख्म है । इसीलिए बैठ जाने या सो रहने पर वह सहसा उठ नही सकता ।

मुनेश्वरसिह बोला—"शायद घाव के कारण ही लोग इसे बस्ती मे नही घुसने देते । माँगने से पानी भी नही देते, दुरदुरा कर निकाल देते है ।"

समझ गया कि सर्दी की रात मे उसने इस झाडी मे क्यो शरण ली है ।

मैने पूछा—"तुम्हारा नाम ? घर कहाँ है ?"

मुझे देखकर भय के मारे वह न जाने कैसा हो गया—आँखो मे रोग्र-कातर, भीत और बेबस दृष्टि । मेरे पीछे लाठी लिए खडा था मुनेश्वरसिह । उसने शायद यह समझा कि हम उसे इस झाडी मे से भी निकालने को आए है ।

बोला—"मेरा नाम ? नाम गिरधारीलाल है हुजूर, घर मेरा तिनटगा है ।" दूसरे ही क्षण एक अजीव आवाज मे—विनती, आरजू और विकार के रोगी की मिली-जुली आवाज मे बोला—"जरा पानी पीता—पानी "—

मैने उसे पहचान लिया । उस बार पूस के मेले मे मैने उसे ब्रह्मा महतो के तबू मे देखा था—वही गिरधारीलाल । वही डरी-डरी निगाह, चेहरे में वही विनम्र भाव—

भगवान् क्या नम्र, डरपोक और गरीब को इतनी तकलीफ दिया करते है दुनिया मे ? मैने मुनेश्वरसिह को कहा—"कचहरी से जाकर चार-पाँच आदमियो को एक चारपाई के साथ बुला लाओ ।"

वह चला गया ।

मैने पूछा—"तुम्हे हुआ क्या है गिरधारीलाल ? मै तुम्हे पहचानता हूँ । तुमने मुझे नही पहचाना ? उस बार मेले मे ब्रह्मा महतो के खेमे मे भेट हुई थी—याद नही है ? डरो मत—तुम्हे क्या हो गया है ?"

गिरधारीलाल जोर से रो पडा । हाथ-पॉव दिखाकर बोला—
"कटकर घाव हो गया था हुजूर । बहुत उपाय किया, जिसने जो कहा, वही किया । घाव बढता ही गया । अन्त मे सब ने कहा—'तुम्हे कोढ हो गया है ।' इसी से चार-पॉच महीने से ऐसा ही कष्ट पा रहा हूँ । गॉव मे लोग घुसने नही देते । भीख पर किसी तरह गुजारा करता हूँ । रात को कही आश्रय नही मिलता—इसी से इस झाडी मे—"

—"इधर कहॉ जा रहे थे ? यहॉ कैसे आए ?"

इतने ही मे वह हॉफ उठा था । जरा दम लेकर बोला—"पूर्णियॉ जा रहा हूँ हुजूर—अस्पताल । नही तो घाव तो जाना नही चाहता ।"

अचरज हुआ, जीने की कैसी लालसा होती है आदमी मे । जहॉ वह था, पूर्णियॉ वहॉ से चालीस मील से कम नही—सामने मोहनपुरा जैसा खतरनाक जगल और ऐसा जख्म लेकर वह बीहड राह से पूर्णियॉ जा रहा है ।

चारपाई आ गई । प्यादो के रहने के घर के पास उसे एक खाली कमरे मे ले जाकर उसे सुला दिया । प्यादो ने भी कोढ के नाम से जरा एतराज किया था । समझाने से वे समझ गए ।

लगा कि गिरधारीलाल बडा भूखा है । कई दिनो से पेट भर खाना उसे नही मिला है । थोडा-सा गरम दूध पिलाने से वह जरा होश मे आया ।

सॉझ को उसके कमरे मे गया, तो वह बेखबर सो रहा था ।

दूसरे दिन वहॉ के नामी वैद राजू मॉडे को बुलवाया । गभीर होकर उसने बडी देर तक रोगी की नब्ज देखी । मैने कहा—"देखो, तुमसे कुछ होगा भी या पूर्णियॉ भेजना पडेगा ?"

राजू के अभिमान को चोट लगी । बोला—"आपके मॉ-बाप के आशीर्वाद से सालो से यही काम करता आया हूँ । पन्द्रह दिन के अन्दर घाव ठीक हो जायगा ।"

बाद मे मैने समझा, उसे अस्पताल ही भेज देता, तो अच्छा था ।

घाव के लिए नही, घाव का रग तो राजू की जडी-बूटी से पाँच ही छै दिन मे बदल गया। मुसीबत हुई सेवा की। कोई उसे छूना नही चाहता था। घाव मे दवा नही लगाना चाहता था, पानी पीने के बाद कोई लोटा माँजने को भी तैयार नही था।

ऊपर से हो आया उसे बुखार—जोरो का बुखार।

लाचार कुता को बुलवाया। कहा—"बस्ती से किसी गगोतिन को बुला दो, इसकी देख-रेख करे। पैसे मै दूँगा।"

कुता ने बिना आगा-पीछा सोचे कहा—"मै सेबा करूँगी बाबूजी, पैसे आपको नही देने पडेगे।"

कुता राजपूत की स्त्री थी। वह गगोता रोगी की सेवा कैसे करेगी? मैने समझा, उसने मेरा आशय नही समझा।

बोला—"उसके जूठे वर्त्तन धोने है, खिलाना है। वह उठ तो नही सकता। यह सब तुम कैसे करोगी?"

कुता बोली—"आपका हुक्म होगा, तो मै सब कुछ करूँगी। मै राजपूत कहाँ हूँ बाबूजी, मेरी जात-बिरादरी वालो ने इतने दिनो मे मेरी खोज-पूछ भी की? आप जो भी कहेगे, मै करूँगी। मेरी जात क्या।"

राजू की जडी-बूटी और कुता की सेवा से गिरधारी महीने भर मे चगा हो गया। इसके लिए देने पर भी कुता ने कुछ नही लिंया। देखा, इस बीच गिरधारीलाल को वह बाबा कहकर पुकारने लगी है। बोली—"अहा, बाबा को कष्ट है, मै सेवा का पैसा क्या लूँगी। माथे के ऊपर धरमराज नही है?"

जीवन मे मैने जो दो-एक अच्छे काम किए, उनमे से एक प्रधान काम था गिरधारीलाल को बिना सलामी लिए कुछ जमीन देकर लवटोलिया मे बसाना।

उसके झोपडे मे एक दिन गया था।

अपने ही हाथो पाँचेक बीघा जमीन साफ करके उसने गेहूँ बोया था। झोंपडे के चारो तरफ जमीरी नीबू के पेड लगाए थे।

—"जमीरी नीबू के इतने पेडो का क्या करोगे ?"

—"हुजूर ये सरबती नीबू है। मै इसे बहुत पसन्द करता हूँ। चीनी-मिसरी नही जुटती, बूरा या गुड का शरबत बना कर इसी नीबू का रस मिलाने से बेहतरीन हो जाता है।"

देखा, आशा के आनन्द से उसकी दो निरीह आँखे चमक उठी।

—"अच्छी जात का है। पाव-पाव भर का एक-एक नीबू होगा। बडे दिनो से साध थी, जमीन-जगह कभी होगी, तो सरबती नीबू के पेड लगाऊँगा। दूसरे के यहाँ नीबू के लिए बहुत बार अपमानित होना पडा है। वह दुख अब न रहेगा।"

———

अट्ठारहवाँ परिच्छेद

[एक]

यहाँ से चल देने का समय आ गया। एक बार भानुमती से मिलने की बडी इच्छा हुई। धनझरी शैलमाला एक सुन्दर सपने की तरह मेरे मन मे बैठ गई है उसके वन... उसकी चाँदनी रातें

साथ लिया युगलप्रसाद को।

वह तहसीलदार सज्जनसिंह वाले घोडे पर चला—अपने मौजे की हद पार होते-न-होते बोला—"हुजूर, यह घोडा नही चलने का। जगल के रास्ते मे इसने रहल चाल पकडी नही कि ठोकर खाकर गिरेगा। मेरा भी पैर टूटेगा। मै दूसरा घोडा ले आऊँ।"

मैने भरोसा दिया। सज्जनसिंह खासा घुडसवार है। जाने कितनी बार मुकद्दमे की पैरवी मे इसी घोडे पर वह पूर्णियाँ गया। पूर्णियाँ का रास्ता कैसा बीहड है, तुमसे छिपा नही।

हम कारो नदी पार हुए।

उसके बाद जगल—देखने लायक, अनोखा, घना और निर्जन जगल। यह पहले ही कह चुका हूँ, इस जगल मे माथे के ऊपर डालो की आपसी टकराहट नही—सखुआ, केद, पलाश, महुआ और बेर के पेड—चट्टानो वाली रगीन भूमि—ऊबड-खाबड। मिट्टी पर कही-कही जगली हाथी के पैर के निशान। आदमी का नाम-निशान नही।

लवटोलिया के गदे और घने मुहल्लो, जुते हुए खेतो से बाहर निकल कर जान-मे-जान आई। ऐसे जगल इधर और कही नही है।

रास्ते मे पडने वाले बुरूडी और कुलपाल गाँव को बारह बजे से पहले ही हम पार कर गए। पतला जगल उन्ही के साथ पीछे छूट गया—

सामने बडे पेडो वाला सघन वन। कातिक के आखिरी दिन, हवा मे खुनकी—गरमी नाम को भी नही।

दूर पर धनझरी की पहाडियाँ साफ दीखने लगी।

साँझ को बीडी-पत्ते का जगल इजारा लेने वाले की कचहरी मे पहुँचा।

वह शाहाबाद का रहने वाला मुसलमान था। नाम था अब्दुल वाहिद। बडी आवभगत की उसने। बोला—"अच्छा ही हुआ कि साँझ होते-होते पहुँच गए। जगल मे बाघ का बडा डर है।"

निस्तब्ध रात्रि।

पेडो मे हवा की सनसनाहट।

बाघ की बात सुनकर कचहरी के बरामदे मे बैठने का साहस भी न हुआ।

खिडकी खोल कर कमरे मे बातें करने लगा। अचानक जगल में से किसी जतु की आवाज आई। मैंने युगल से पूछा—"क्या है?"

युगल बोला—"जी कुछ नही, भेडिया है।"

गहरी रात को जगल मे हायना की हँसी सुनाई पडी—ऐसी हँसी कि सहसा सुनकर मारे डर के छाती का लहू जम जाय, ठीक जैसे दमे के रोगी की हँसी हो—बीच-बीच मे गुम, फिर हँसी।

दूसरे दिन सबेरे रवाना हुआ। नौ बजे के करीब दोबरू पन्ना की राजधानी पहुँच गया। मेरे इस अप्रत्याशित आगमन से भानुमती की खुशी का ठिकाना न रहा। हँसी होठो और आँखो मे दबाए नही दब रही थी, छिटकी पड रही थी।

—"कल भी आपकी बात सोच रही थी मैं। इतने दिनो से आए क्यो नही?"

भानुमती जरा लम्बी लग रही थी—दुबली भी, मगर मुखमडल वैसा ही लावण्य-भरा, बनावट वैसी ही सुन्दर।

—"झरने मे ही नहाएँगे न? तेल महुए का लाऊँ या सरसों का?

इस बार बरसात मे झरने मे कितना अच्छा पानी आया है, चलिए देखिए। ”

मै एक बात और भी गौर से देख रहा था—भानुमती रहती बडी साफ-सुथरी है, इस बात मे दूसरी सथाल स्त्रियो से उसकी तुलना ही नही हो सकती। वेश-भूषा और प्रसाधन का सहज सौन्दर्य और रुचि-बोध ही उसके अभिजातवश की लडकी होने का परिचय दे देता है।

मिट्टी के जिस घर के बरामदे मे मै बैठा था, उसके ऑगन के चारो तरफ आसान और अर्जुन के बडे-बडे पेड थे। तोतो का झुड आसान पेड पर कलरव कर रहा था। हेमत का आरभ था, समय ज्यादा हो जाने पर भी हवा मे नमी थी। सामने आधे मील से भी कम फासले पर धनझरी की पहाडियॉ, मॉग की तरह उसमे से उतरती हुई पगडडी— एक तरफ बहुत दूर पर नीले मेघ-सी दीखती हुई गया की पर्वत-पक्तियॉ ।

काश, मै बीडी के पत्ते का जगल खरीद कर इस शान्त जन-विरल प्रदेश की छाया-सघन उपत्यका के किसी पहाडी झरने के किनारे झोपडा बनाकर रहता होता! लवटोलिया तो गया, लेकिन भानुमती के देश के इस जगल को कोई नष्ट नही करेगा। इधर की माटी मे ककड और पायो-राइट ज्यादा है, फसल वैसी नही होती—फसल होती तो कभी-न-कभी यह भी जगल नष्ट हो जाता। हॉं, तॉबे की खान निकल पडे, तो और बात है।.....

तॉबे के कारखाने की चिमनी, ट्राली की लाइन, कुलियो के घरो की कतार, इजन से झडे कोयले की राख का ढेर—दूकान, चाय की दूकान, सस्ता सिनेमा—‘जवानी की हवा’, ‘शेर-शमशेर’, ‘प्यार का फदा” (मैटिनी मे तीन आने, पहले से जगह दखल कर ले)—देशी शराब की दूकान—दरजी की दूकान । होम्यो फारमेसी (गरीब रोगियो का मुफ्त इलाज किया जाता है) । आदर्श और पवित्र हिन्दू होटल।

तीन का भोपू बजा।

भानुमती इजन से झडे कोयले की टोकरी माथे पर लिए हुए बेचने चली—'लो, कोयला लो, चार पैसे टोकरी . '

तेल लेकर भानुमती आ पहुँची। घर के सभी लोगो ने नमस्कार करके मुझे घेर लिया। भानुमती का छोटा चचा नौजवान जगरू एक डाल छीलता हुआ आया और हँस कर मेरी तरफ देखने लगा। इस जगरू को मै बहुत चाहता था। राजकुमार जैसा चेहरा, रग का काला, मगर कैसा रूप! इस घर मे जगरू और भानुमती, इन दो को देखने से सदेह नही रह जाता कि वन्य जातियो मे ये अभिजात वश के है।

पूछा—"क्यो जगरू, शिकार का क्या हाल है?"

हँसकर उसने कहा —"आप फिक्र न करे, आज ही आपको खिला दूँगा। कहिए, क्या खाएँगे, साही, हरियल या वनमुर्गा?"

मै नहा कर आया। बाल झाडने के लिए भानुमती ने वही आईना (जो मैने पूर्णिया से ला दिया था) और लकडी की एक कघी लाकर दी।

भोजन के बाद आराम कर रहा था। बेला झुक आई थी। भानुमती ने आकर कहा—"पहाड पर नही चलेगे? आप तो पहाड पसन्द करते है।"

युगलप्रसाद सो रहा था। उसके जग जाने के बाद हम पहाड के लिए निकले। साथ मे भानुमती, भानुमती की चचेरी बहन—जगरू के मँझले भाई की लडकी—बारह साल की, और युगलप्रसाद।

आध मील चलकर पहाड के पास पहुँचे।

धनझरी के नीचे जगल का दृश्य ऐसा अनोखा है कि यहाँ जरा देर तक रुककर देखने की इच्छा होती। जिधर भी देखता, उधर ही बडे-बडे पेड, लता, कँकरीला झरने का कुड, जहाँ-तहाँ बिखरे हुए छोटे-बडे शिलाखड। जगल और पहाड की ओट से आसमान कैसा शुरू हो गया है! सामने कँकरीली लाल मिट्टी की राह जगल से होती हुई पहाड के ऊपर चली गई है—कैसी सूखी सख्त मिट्टी, न ओदी, न सीलवाली। झरने मे भी पानी नही।

घने जगल को चीर कर पहाड पर चढते ही जाने किस चीज की मधुर गध से मन-प्राण मत्त हो उठे, गध बडी परिचित-सी थी, पहले समझ नही सका, बाद मे जब चारो तरफ निगाह फैलाई, तो देखा सप्तपर्ण के फूलो से लदे पेडो की भरमार—खुशबू उसी की थी।

और केवल दो-चार पेड नही, सप्तपर्ण का पूरा जगल था। और थे केलि-कदब, कदब नही, केलि-कदब की जात ही और होती है। साग-वान के पत्तो से बडे-बडे पत्ते। ऑकी-बॉकी खूबसूरत डालियाँ।

हेमत के अपराह्न की शीतल बयार मे, फूलो से लदे सप्तपर्ण के वन मे खडे होकर स्वस्थ किशोरी भानुमती की ओर देखकर जी मे आया, मूर्तिमती वनदेवी के सग-लाभ से मै धन्य हो गया हूँ। वह राजकुमारी तो है ही, यह जगल, यह पहाड, वह भिट्टी और कारो नदी की तलहटी, ईधर धनझरी और उधर नवादा की पहाडियाँ—ये सारे इलाके कभी जिस राजवश के कब्जे मे थे, यह उसी राजवश की लडकी है। वह राज-वश आज नए युग की आब-हवा, भिन्न सभ्यता के सघात से विपन्न, गरीब और प्रभावहीन हो गया है, इसी से भानुमती को हम सथाल की लडकी-सी देखते है। उसे देखते ही भारत के इतिहास के अलिखित करुण अध्याय मेरी आँखो के आगे थिरक उठते है।

आज का यह अपराह्न मेरे जीवन के दूसरे अनेक सुन्दर अपराह्नो से जडित होकर स्मृतियो के समारोह मे उज्ज्वल हो उठा—सपने-जैसा ही मधुर, सपने-जैसा ही अवास्तविक।

भानुमती बोली—"और ऊपर नही जाएँगे ?"

—"फूल की कैसी मीठी महक है। जरा देर यहाँ बैठोगी नही ? सूरज डूब रहा है—देख लूँ—"

मुस्काती हुई भानुमती बोली—"आपकी जो मर्जी ! बैठने को कहते हैं, बैठती हूँ, लेकिन बाबा की कब्र पर फूल नही चढाएँगे ? आपने ही तो सिखा दिया था, मैं रोज यहाँ फूल चढाने आती हूँ। अभी तो यहाँ फूलो की भरमार है।"

आगे मिट्टी नदी उत्तरवाहिनी होकर पहाड के नीचे की तरफ घूम गई है। नवादा की ओर जो पहाडियाँ धुँधली दीख रही थी, उन्ही के पीछे सूरज डूब गया। सूरज के डूबते ही पहाडी हवा और भी ठढी हो गई। सप्तपर्ण की सुवास और भी गाढी हो गई, और भी गहरी छाया उतरी वनस्थली मे, नीचे की उपत्यका मे, कारो नदी के पार की पहाडियो पर।

भानुमती ने जूडे मे एक गुच्छा फूल खोस लिया। बोली—"बैठूँ कि यहाँ से चलेगे बाबूजी ?"

फिर ऊपर चढने लगा। सब के हाथो मे फूलो से भरी सप्तपर्ण की एक-एक डाल। एकबारगी ऊपर चढ गया। बरगद का वही पुराना पेड, पेड के नीचे राज-समाधि। चारो तरफ बिखरे पडे शिलाखड। भानुमती और उसकी बहन ने राजा दोबरू पन्ना की कब्र पर फूल बिखेरे, मैंने और युगलप्रसाद ने भी बिखेरे।

बच्ची तो है ही भानुमती—भोली बालिका-सी ही बेहद खुश हो गई। नन्ही नादान-जैसी ही बोली—"यहाँ जरा रुक जाऊँ बाबूजी, क्यो ? अच्छा लग रहा है। है न ?"

मै सोच रहा था—बस, यही आखिरी है। यहाँ फिर कभी नही आऊँगा। यह समाधि, यह जगल—इन्हे फिर नही देख सकूँगा। यहाँ के सप्तपर्णों से, भानुमती से यही हमारी सदा के लिए विदाई है। छै साल का वनवास काट कर कलकत्ता जाना है, लेकिन जाने के दिन ज्यो-ज्यो समीप आ रहे है, मै इन्हे और भी कसकर क्यो पकडता जा रहा हूँ ?

इच्छा हुई कि भानुमती से यह कह दूँ। देखूँ कि मेरे जाने की बात पर वह क्या कहती है, मगर इस भोली वन-बाला को प्यार और आदर की बात कह कर होगा भी क्या ?

साँझ होते-होते एक और भी नई खुशबू मिली। आस-पास बहुत-से हरसिंगार के पेड थे। साँझ होते-होते हरसिंगार की गाढी खुशबू ने साँझ की हवा को और भी मधुर कर दिया। सप्तपर्ण के पेड और नीचे है।

इसी बीच पेडो पर जुगनू जलने लगे। हवा कैसी तेज, मीठी, मनोरम्। साँझ के समय यह हवा सेवन की जाय, तो आयु बढने मे क्या सन्देह ? उतरने को जी नही चाह रहा था, लेकिन जानवरो का भय था, फिर साथ मे थी भानुमती। युगलप्रसाद शायद इस फिक्र मे लगा था कि यहाँ से कौन-कौन-से नए पेड ले जाकर वहाँ रोपे जायँ। मैने देखा उसकी नजर और कही नही, नई लताओ, नए पौधो, फूल और अच्छे पत्तो पर गडी थी। युगलप्रसाद को पागल ही कहिए, इसी तरह का पागल।

सुनते है, फारस से चनार के पेड मँगवा कर नूरजहाँ ने काश्मीर मे लगवाए थे। आज नूरजहाँ तो नही रही, पर सारा काश्मीर चनार के पेड से भर गया है। युगलप्रसाद मर जायगा, मगर सरस्वती-कुड मे सौ साल के बाद भी हेमत मे खिले हुए स्पाइडर लिली के फूल अपनी खुशबू बिखेरते रहेगे, या किसी-न-किसी झाडी मे वन्य हस-लता के हसनुमा फूल डोलते रहेगे—चाहे कोई यह न भी कहे कि युगलप्रसाद ने ही उन फूलो को लाकर नाढा बैहार मे लगाया था!

भानुमती बोली—"बाएँ वह जो है, वह उमी टाडबारो का पेड है। पहचानते है ?"

मै जगली भैसो के दयालु देवता टाडबारो के पेड को अँधेरे मे पह-चान नही सका।

बडी दूर तक उतर आया। सप्तपर्ण के पेड आ गए। कैसी मन को नशे से भर देने वाली खुशबू!

भानुमती से कहा—"जरा बैठ लूँ।"

अधकार-भरी वन-वीथि से उतरते-उतरते मैने सोचा—लवटोलिया, गया, नाढा और फुलकिया बैहार गया, लेकिन महालिखारूप का पहाड रहा, रही भानुमती की यह धनझरी पहाडी! देश मे शायद ऐसा भी एक समय आए, जब मनुष्यो को जगल देखना नसीब न हो—जहाँ नजर जायगी—खेत ही खेत होगे, जूट और कपडे की कलो की चिमनियाँ होगी।

तब लोग इन निर्जन वन-प्रदेशो मे आएँगे—जैसे लोग तीर्थों मे जाया करते है। उन अनागत दिनो के लोगो के लिए ये सारे वन अक्षुण्ण रहे।

[दो]

रात को जगरू पन्ना और उसके दादा के मुँह से उन लोगो की बहुतेरी बाते सुनी। महाजन का कर्ज अभी तक चुकाया नही जा सका है, रुपये उधार लेकर दो भैसे खरीदनी पडी, बिना इसके काम नही चल रहा था, गया का एक मारबाडी घी खरीद कर ले जाया करता था, पिछले तीन-चार महीने से उसका भी कही पता नही। आध मन के करीब घी तैयार है, कोई लेने वाला ही नही।

भानुमती आकर एक तरफ बैठ गई। युगलप्रसाद चाय का बहुत आदी है। मुझे पता था कि वह अपने साथ चाय-चीनी ले आया है। यह भी जान रहा था कि सकोच से वह गरम पानी की बात कह नही पा रहा है। मैने कहा—"भानुमती, चाय के लिए थोडा-सा पानी गरम हो सकेगा ?"

राजकुमारी भानुमती ने चाय कभी नही पी। चाय पीने का इधर रिवाज भी नही। उसे बता दिया गया। वह गरम करके पानी ले आई। उसकी बहन कुछ पत्थर के कटोरे ले आई। भानुमती से चाय पीने का आग्रह किया। उसने नही पी। जगरू ने एक कटोरा पीकर थोडी-सी और माँगी।

चाय पीकर और सब तो उठ गए, भानुमती बैठी रह गई। पूछा—"यहाँ कितने रोज डेरा रहेगा बाबूजी ? अबकी बहुत दिनो बाद आए है। कल तो हर्गिज नही जाने दूँगी। कल चलिए, आपको झाटी झरना दिखा लाऊँ। वहाँ और भी घनघोर जगल है। जगली हाथी बहुत है। वन-मयूर भी बहुत है। सुन्दर जगह है—दुनिया मे वैसी दूसरी जगह नही।

बडी इच्छा हुई यह जानने की कि भानुमती की दुनिया कितनी बडी है। पूछा—"कभी कोई शहर देखा है ?"

—"जी नही।"

—"दो-एक शहर के नाम तो बताओ।"

—"गया, मुगेर, पटना।"

—"कलकत्ता का नाम नही सुना?"

—"जी, सुना है।"

—"जानती हो, किधर है?"

—"क्या जानूँ बाबूजी।"

—"हम लोग जहाँ रहते है, उस देश का नाम जानती हो?"

—"हम गया जिले मे रहते है।"

—"भारतवर्ष का नाम सुना है?"

सिर हिलाकर उसने बताया—"नही सुना है। चकमकी-टोला को छोडकर गई भी नही कही। भारत किधर है?"

जरा देर बाद बोली—"बूढे बाबा एक भैंस लाए थे, वह इस बेला तीन सेर और उस बेला तीन सेर दूध देती थी। उस समय हमारी हालत इससे अच्छी थी। उस वक्त आप आए होते, तो आपको खोआ खिलाती। बाबा अपने हाथो से खोआ बनाते थे—क्या ही मीठा खोआ! अब तो उतना दूध ही नही होता, तो खोआ कहाँ हो। उस समय हम लोगो का आदर भी खूब था।

उसके बाद उसने हाथ को चारो तरफ घुमाकर गर्व के साथ कहा—"जानते है बाबूजी, इस तमाम देश मे अपना ही राज्य था! सारी दुनिया मे। जगल मे आप जो गोड और सथाल देखते है, ये सब हमारी जात के नही है। हम है राजगोड। वे सब हमारी प्रजा है, हमे वे अपना राजा मानते हैं।"

उसकी बात पर हँसी भी आई, दुख भी हुआ। कर्ज के रहते हुए महाजन जिसकी भैंसे दोनो शाम खोल ले जाया करते है, वह भी राजवश का नाज करने से बाज नही आता।

मैंने कहा—"मुझे पता है, तुम्हारा राजवश कितना बडा है"—

भानुमती बोली—"उसके बाद की सुनिए, हमारी उस भैंस को बाघ ले गया, जो भैंस बूढे बाबा ले आए थे।"

—"सो कैसे ?"

—"बूढे बाबा चराने ले गए थे। खुद एक गाछ के नीचे बैठे थे। धर दबोचा बाघ ने।"

पूछा—"तुमने कभी बाघ देखा है ?"

अचरज के भाव मे अपनी काली भँवो को ऊपर करती हुई भानुमती ने कहा—"मैंने बाघ नही देखा! जाडे मे कभी आइए चकमकी-टोला—आँगन से बाघ गाय-बछरू पकड ले जाता है।"

यह कहकर उसने आवाज दी—"निछनी-निछनी, सुन तो।"

उसके आने पर बोली—"जरा बता तो दे बाबूजी को, पिछले साल जाडे मे बाघ अपने आँगन मे क्या तमाशा करता था। जगरू ने फंदा डाला था एक दिन। फँसा नही।"

फिर अचानक बोली—"अच्छा एक चिट्ठी पढ देंगे ? कही से कोई चिट्ठी आई थी। पढे कौन ? पडी है। "जा तो निछनी, चिट्ठी ले आ। जगरू चाचा को भी बुलाती आना।"

निछनी को चिट्ठी न मिली। वह खुद गई। खोज-ढूँढ कर ले आई और मुझे दी।

पूछा—"कब आई है यह ?"

भानुमती बोली—"छै-सात महीने हुए होंगे आए। आपके आने की इन्तजार मे रख दिया था इसे। हम तो पढना जानते नही। अरी निछनी, जगरू चाचा को बुला ला। सब को बुला ले, चिट्ठी पढी जायगी।"

छै-सात महीने पहले की चिट्ठी को मै युगलप्रसाद के चूल्हे के उजाले मे पढने बैठा। सुनने के लिए घर-भर के लोग मुझे घेर कर बैठे। राजा दोबरू के नाम थी—कैथी अक्षरो में लिखी हुई। पटना के किसी महाजन ने राजा से पूछा था कि बीडी के पत्ते का जगल इधर है या नही। है तो उसकी बन्दोवस्ती कैसे होती है।

चिट्ठी से इनका कोई ताल्लुक नही था—इनके अख्तियार मे बीडी के पत्ते का जगल ही नही। राजा दोबरू नाम के ही राजा थे—वह खत लिखने वाला अगर यह जानता होता कि चकमकी-टोला मे अपने घर के अतिरिक्त उसके पास गज-भर भी जमीन नही है, तो टिकट खर्च करके यह खत हर्गिज नही लिखता।

बरामदे मे उस तरफ युगलप्रसाद रसोई बना रहा था। चूल्हे की आँच से बरामदे पर थोडा-सा उजाला फैला था। और इधर थोडी दूर तक चाँदनी पडी थी, यद्यपि आज बदी तृतीया थी। जरा देर हुई कि धन-झरी पहाड की ओट मे से चाँद निकला। सामने कुछ दूर पर आधे चाँद की शक्ल की पर्वतश्रेणी चकमकी-टोला के बच्चो का शोर-गुल सुनाई पड रहा था। यहाँ बिताई गई यह रात कितनी भली लग रही थी! बलभद्दर ने उस दिन जो उन्नति करने की बात कही थी, सो याद हो आई।

आखिर मनुष्य क्या चाहता है, उन्नति, या आनन्द? उन्नति करके होगा क्या, अगर उसमे आनन्द न हो? मै ऐसे बहुतो की बात जानता हूँ, जिन्होने जिन्दगी मे उन्नति तो की, मगर आनन्द से हाथ धो बैठे। जरूरत से ज्यादा भोग से मनोवृत्ति की धार घिस-घिस कर भोथरी हो गई—अब किसी बात मे आनन्द नही मिलता, उनका जीवन एकागी, नीरस और अर्थहीन हो गया है। मन के अन्दर रस का प्रवेश ही नही हो पाता।

यही अगर रह पाता मै! भानुमती से ब्याह करता। इस माटी के घर मे चादनी वाले बरामदे पर भोली वन-बाला खाना पकाती हुई ऐसी ही बच्चो की-सी बाते करती और मै बैठा-बैठा सुनता। और सुना करता काफी रात गए वन मे भेडिए की आवाज, वन-कुक्कुट की पुकार, जगली हाथी की चिघाड, हायना की हँसी। भानुमती है तो काली, पर ऐसी तन्दुरुस्त लडकी बगाल मे नही मिलती। और इसका यह तेज, सरल मन! दया है, ममता है, स्नेह है—इसके अनेक प्रमाण मै पा चुका हूँ। ..

सोचते हुए भी अच्छा लगता। कितना सुन्दर सपना! उन्नति करके भी क्या होगा? उन्नति करे जाकर बलभद्दर सेगात। रासबिहारीसिह उन्नति करे।

युगलप्रसाद ने पूछा—"रसोई तैयार हो गई, चौका लगाऊँ?" भानुमती के यहाँ आतिथ्य मे कोई कोर-कसर नही होती। इधर खास कुछ मिलता नही, फिर भी जगरू कही से बैंगन और आलू ले आया था। उडद की दाल, चिडिया का मास, घर का शुद्ध घी, दूध। युगल-प्रसाद की बनाई रसोई भी खूब बनती।

आज जगरू, जगरू के दादा, निछनी—सब मेरे चौके मे खायँगे। मैंने उन्हे खाने को कहा है, इसलिए कहा है कि ऐसी रसोई उन्हे नसीब नही। मैंने कहा—"तुम लोग भी एक ही साथ बैठ जाओ एक तरफ। युगलप्रसाद को परसने मे भी सहूलियत होगी। आज साथ ही खाया जाय।"

मगर वे तैयार नही हुए। जब तक हम लोग खा नही लेते, वे नही खाएँगे।

दूसरे दिन आते वक्त भानुमती गजब कर बैठी। अचानक मेरा हाथ थाम कर बोली—"आज आपको नही जाने दूँगी बाबूजी—"

मै अवाक् हो उसके मुँह की ओर देखता रह गया। दु ख हुआ। उसके आग्रह से सुबह नही चल सका—दोपहर के भोजन के बाद विदा हुआ।

फिर दोनो तरफ छाया-सघन वन-वीथी। राह के किनारे कही जैसे राजकुमारी भानुमती खडी हो, बालिका नही, युवती भानुमती—उसे मैंने कभी नही देखा। उसकी नजर उसके प्रेमी के आगमन-पथ की ओर बिछी है।—शायद वह पहाड के उस पार शिकार को गया है—आने ही वाला है अब। मैंने मन-ही-मन तरुणी को आशीर्वाद दिया। धनझरी पहाड के जुगनू जले निस्तब्ध प्राचीन सप्तपर्ण के वन और अपूरब दूर-च्छन्दा साँझ की ओट मे वन-बाला का गोपन अभिसार सार्थक हो।

अपने स्थान पर लौट आया और हफ्ते भर मे सब से विदाई लेकर लवटोलिया से चल दिया।

आते समय राजू पाडे, गनौरी, युगलप्रसाद, अशर्फी टडेल आदि पालकी को चारो तरफ से घेर कर लवटोलिया की सीमा पर बसी नई बस्ती, महाराज-टोला तक साथ-साथ आए। मटुकनाथ ने सस्कृत का श्लोक पढकर मुझे आशीर्वाद दिया। राजू ने कहा—"हुजूर आपके चले जाने से लवटोलिया उदास हो जायगा।"

'उदास' शब्द का व्यवहार और उसके अर्थ की व्यापकता यहाँ बहुत ज्यादा है, प्रसगवश यह कह दूँ। मान लीजिए भुनी मकई खाने में अच्छी न लगी, तो लोग कहेगें—भुँजा उदास लगता है। मै नही कह सकता, मेरे लिए यह 'उदास' किस अर्थ मे व्यवहृत हुआ।

मैं जब विदा होने लगा, तब एक औरत रोई थी। वह सुबह से ही कचहरी के अहाते मे आकर खडी रही—जब मेरी पालकी चलने लगी, तब मैंने देखा, वह जोरो से रो रही है। वह थी कुता!

कुता को जमीन देकर मैंने बसाया, यह मेरे मैनेजरी जीवन का एक सत्कार्य था। एक उस मची के लिए मैं कुछ नही कर सका। न जाने कौन उस अभागिन को भगा ले गया! आज वह होती, तो मै बिना सलामी लिए उसे जमीन देता।

नाढा बैहार मे नकछेदी के घर पर जो नजर पडी, तो उसकी बात याद हो आई। सुरतिया बाहर कुछ कर रही थी। मेरी पालकी पर नजर पडते ही वह चीख उठी—"बाबूजी, बाबूजी—जरा रुकिए!"

वह पालकी के पास दौडी आई। पीछे-पीछे आई छनिया।

—"कहाँ जा रहे है बाबूजी?"

—"भागलपुर। तेरे बाबूजी कहाँ है?"

—"गेहूँ लाने गए है झल्लू-टोला। आप लौटेगे कब?"

—"मै अब नही लौटूँगा।"

—"हुँ, झूठी बात!"

नाढा बैहार पार हो गया, तो पालकी से गर्दन निकाल कर एक बार उलट कर देखा।

बहुतेरी बस्तियाँ, लोगो की बातचीत, बच्चो की हँसी-किलकारी, चीख-पुकार, गाय-भैंस, फसल के गोले। छै-सात साल मे घने जगल को काट कर यह हँसता हुआ, हरा-भरा जनपद मैंने ही बसाया है। सब कल यही कह रहे थे—"आपके काम को देख कर हम लोग भी दग हो गए है बाबूजी, नाढा और लवटोलिया क्या था और हो क्या गया!"

मैं भी यही सोचता चला—"नाढा लवटोलिया क्या था और क्या हो गया!"

दिगत में खोए हुए महालिखारूप पहाड और मोहनपुरा जगल को मैंने दूर से नमस्कार किया।—

'हे वन के आदिम देवताओ, मुझे क्षमा करना। विदा!'

[तीन]

उसके बाद बहुत दिन बीत गए—पन्द्रह-सोलह साल!

बादाम के पेड के नीचे बैठकर यही सब सोच रहा था।

बेला डूब चली थी।

भूले हुए-से अतीत का जो नाढा बैहार और लवटोलिया का वन-प्रातर मेरे ही हाथो नष्ट हुआ था, सरस्वती-कुड का वह अपूर्व जगल, उनकी स्मृतियो के सपने-से आते और मन को उदास कर देते। साथ ही जी मे होता—कैसी है कुता, कितनी बडी हो गई सुरतिया, मटुकनाथ की पाठशाला अभी भी है कि नही, भानुमती अपने पहाडियो से घिरे जगल मे क्या कर रही है, राखाल बाबू की स्त्री, ध्रुवा, गिरधारीलाल—किसे पता है, इतने दिनो मे कौन किस हालत मे है!

और बीच-बीच में याद आती मची की बात। अनुतप्ता मंची फिर अपने पति के पास लौट आई क्या, या आसाम के चाय बगान मे आज भी चाय की पत्तियाँ ही तोड रही है!

जाने कब से इनकी कोई खोज-खबर नही!